॥ ओ३म् ॥

✻ कृण्वन्तोविश्वमार्यम् ✻

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली

का

सचित्र मासिक मुखपत्र

# "सार्वदेशिक"

## दयानन्द दीक्षाङ्क

वार्षिक मूल्य ६)   विदेश से वार्षिक १२ शिलिङ्ग वा ८)

वर्ष ३५ ]   जनवरी १९६०   पौष २०१६   दयानन्दाब्द १३५   [अङ्क ११

सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५९

### सम्पादक मण्डल

१—श्री प० रघुवीरसिंह शास्त्री वेदवाचस्पति

२—श्री म० म० आचार्य विश्वश्रवाः 'व्यास'

३—श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री

४—श्री प० रघुनाथ प्रसाद पाठक

# विषय सूची



---

सार्वदेशिक प्रेस पाटौदी हाउस, दरियागंज दिल्ली—६ में छपकर रघुनाथ प्रसाद जी पाठक प्रिंटर और पब्लिशर के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित।

सार्वदेशिक
मासिक
का
दयानन्द दीक्षाङ्क
वर्ष ३५
अङ्क ११
जनवरी १९६०
पौष २०१६
दयानन्दाब्द १३५

# वेदमन्त्रों की आर्ष व्याख्या

[ लेखक—आचार्य विश्वश्रवाः 'व्यास' ]

इस स्तम्भ में वेदमन्त्रों की महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वती कृत व्याख्या और उसकी विस्तृत टीका आर्यभाषा में लिखी जायेगी जिससे वेद के अध्ययन करने वाले महर्षि के अर्थ का आनन्द ले सकें। साथ ही हम यह भी दिखाना चाहते हैं कि ऋषि के इतने प्रामाणिक अर्थ के होते हुए भी दूसरे विद्वानों ने ऋषि के अर्थ की उपेक्षा करके अपने अपने अर्थ किये हैं। ऐसा करने के तीन कारण हमें प्रतीत होते हैं।

१—उन विद्वानों ने ऋषि के अर्थ को देखने का कष्ट नहीं किया।

२—या उनकी समझ में ऋषि के अर्थ की संगति नहीं आई।

३—या उनको अपना अर्थ ऋषि के अर्थ की अपेक्षा अधिक अच्छा लगा।

अस्तु अब हम मन्त्रों का आर्ष अर्थ और मनुष्यकृत भी अर्थ यहां दिखाते हैं। इस स्तम्भ को इस समय आर्य जगत् के ऋषिभक्त वेदज्ञ विद्वान् श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी व्यास लिख रहे हैं। हम आर्यजगत् के विद्वानों का ध्यान इस प्रकरण की ओर दिलाते हैं कि वे इसी प्रवाह में इसी शैली से वेदमन्त्रों की व्याख्या लिख कर भेजने की कृपा करें—

सम्पादक—राजेन्द्र

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि व्यदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

ऋ० ८। ८। ४८। १-३ ॥

भाषार्थ—(धाता) सब जगत् का धारण और पोषण करने वाला और (वशी) सब को वश करने वाला परमेश्वर।

( यथापूर्वम् ) जैसा कि उसके सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था, और जिस प्रकार पूर्व कल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी, और जैसे जीवों के पाप पुण्य थे।

उसके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये।

( सूर्याचन्द्रमसौ ) जैसे पूर्वकल्प में सूर्य चन्द्र लोक रचे थे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं।

( दिवम् ) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था वैसा ही इस कल्प में भी रचा है। तथा—

( पृथिवीम् ) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है।

( अन्तरिक्षम् ) जैसा पृथिवी और सूर्य लोक के बीच में पोलापन है।

( स्वः ) जितने आकाश के बीच में लोक हैं,, उनको

( अकल्पयत् ) ईश्वर ने रचा है।

(विश्वस्य मिषतः) उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के

( ※) रात्रि दिवस घटिका पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही

( विदधत् ) रचे हैं।

(अभीद्धात् तपसः) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से.......

( ऋतम् ) सब विद्या का खजाना वेदशास्त्र को प्रकाशित किया...

( सत्यम् ) त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व रज और तमोगुण से युक्त है जिसके नाम अव्यक्त, अव्याकृत, सत् प्रधान, प्रकृति, हैं जो स्थूल और सूक्ष्म जगत का कारण है सो भी।

( अध्यजायत ) अर्थात् कार्य रूप होके पूर्वकल्प के समान उत्पन्न हुआ है।

※ (अहोरात्राणि) यह पद ऋषि के भाषा भाष्य में त्रुटित प्रतीत होता है—संस्कृत भाष्य में यथा स्थान अहोरात्राणि पद है।

( ततो रात्री अजायत ) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है...

( ततः समुद्रो अर्णवः ) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघमण्डल में जो महासमुद्र है सो भी पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है।

(समुद्राद् अर्णवादधि संवत्सरो अजायत) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण मुहूर्त प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है।

( ऋषिभाष्यम् )

## ऋषिभाष्यव्याख्या

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज ने अघमर्षण मन्त्रों की अति स्पष्ट व्याख्या की है जिसमें निम्नलिखित बातों का वर्णन किया है—

१—परमात्मा के तप सामर्थ्य से वेद और जगत् साथ साथ प्रकट हुए हैं (ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसो ऽध्यजायत)।

२—उसी परमात्मा के तप सामर्थ्य से प्रलय होती है और उसी के सामर्थ्य से सृष्टि होती है ( ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः )

नोटः—आरम्भ से लेकर समुद्र तक की सृष्टि ईश्वर करता है समुद्र की उत्पत्ति हो जाने पर दिन रात बनते हैं। समुद्र के बनने से पूर्व सूर्य आदि के बन जाने पर भी दिन रात नहीं बन सकते क्योंकि उस समय पृथिवी भी गरम थी सूर्य के समान चमक रही थी तब सब दिन ही दिन था। जब पृथिवी ठंडी हुई और उस पर समुद्र बना तब पृथिवीके एक ओर प्रकाश और दूसरी ओर अन्धेरा होने से दिन और रात बने। तब सप्ताह मास वर्ष आदि उत्पन्न हुए

इस विषयका विस्तृत वर्णन*पञ्चमहायज्ञ विधि भाष्य में पाठक पढ़ें ।

३—समुद्र तक की सृष्टि जब ईश्वर कर देता है तब संवत्सर ( दिन रात आदि ) बनते हैं (समुद्रादर्णवात् अधि संवत्सरो अजायत)

४--विश्व के दिन रात बनाने वाला भगवान् उन दिन रात को बनाने के लिये सूर्य और चन्द्र को बनाता है (विश्वस्य अहोरात्राणि विदधत् सूर्याचन्द्रमसौ अकल्पयत)

५--उस परमात्मा ने सूर्य चन्द्र के अतिरिक्त द्यौलोक पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष को भी रचा (दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः)

६—उस परमात्मा को सृष्टि रचना करने में कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता जैसे अक्षि के निमेष उन्मेष स्वाभाविक रूप से ही होते रहते हैं वैसे ईश्वर अपने सहजस्वभाव से सृष्टि करता है और प्रलय करता है। (मिषतः)

७--वह प्रभु सब को अपने अधीन नियन्त्रण में लिये हुए है (वशी)

८--यथापूर्वम्—

क. जैसी सृष्टि पूर्व कल्प में थी वैसी ही सृष्टि इस कल्प में और सदा होती है ( यथापूर्वम् )

ख. रचना करने से पहले जो स्वरूप सृष्टि का परमात्मा के ज्ञान में पहले से था वैसे ही रूप वाली सृष्टि उत्पन्न हुई है जैसे चित्रकार के ज्ञान में चित्र का जैसा रूप होता है वैसा ही चित्र सामने आता है।

( यथा पूर्वम् )

ग. सृष्टि से पूर्व प्रलय से पहले की सृष्टि में जैसे जिस जिस योनि के कर्म जीव के थे तदनुसार सृष्टि बनी है ( यथापूर्वम् )

१--श्री पं० सातवलेकर जी इन मन्त्रों का अर्थ नीचे लिखे प्रकार करते हैं--

( अभि-इद्धात् ) प्रदीप्त (तपसः) आत्मिक तप के तेज से ऋत और सत्य ये सार्वकालिक और सार्वभौमिक नियम प्रथम (अधि-अजायत)उत्पन्न हो गये ( ततः ) पश्चात् ( रात्री अजायत ) प्रलय की रात्रि हो गई और तदनन्तर प्रकृति का समुद्र (अर्णवः) अशान्त होगया। इस प्रकृति के प्रक्षुब्ध समुद्र से ( संवत्सरः ) काल (अधि-अजायत ) उत्पन्न हो गया ( विश्वस्य मिषतः ) सब जगत के हलचल को ( वशी ) वश में रखनेवाले ( धाता ) विधाता ईश्वर ने ( यथापूर्वम् ) पूर्व के समान ही आकाश द्युलोक अन्तरिक्ष पृथिवी सूर्य चन्द्र दिन रात आदि सब ( विदधत् ) बनाया और ( अकल्पयत् ) अपने अपने स्थान में सुरक्षित रख दिया है।

( समीक्षा )

पं० सातवलेकर इन मन्त्रों को समझे ही नहीं और ऋषि का भाष्य देखा नहीं।

१--पं० जी ऋत और सत्य को नियम बताते हैं दोनों का अन्तर बताया नहीं। वस्तुतः ऋत का अर्थ वेद है और सत्य का अर्थ प्रकृति । ये दोनों प्रकट हुए यही अर्थ है।

२--प्रकृति के प्रक्षुब्ध होनेसे संवत्सर कैसे उत्पन्न हुआ यह पं० जी ही जानते होंगे। पं० सातवलेकर जी के यहां अधि का कुछ अर्थ है ही नहीं। वस्तुतः अधि का अर्थ है पश्चात्। मन्त्र

---

*पञ्चमहायज्ञविधिभाष्य--इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य विश्वश्रवाः जी हैं। सन्ध्यामन्त्रों के ऋषि कृत अर्थों की यह विस्तृत टीका पहली बार ही मुद्रित हुई है यह पञ्चमहायज्ञविधि के प्रत्येक विषय की विस्तृत टीका है। पृष्ठ संख्या ५००। मूल्य ५) है।

सार्वदेशिक सभा से प्राप्त हो सकती है।

संपादक—राजेन्द्र

में जहां कहीं अधि है सर्वत्र पश्चात् अर्थ है। परमात्मा के ईक्षण के पश्चात् ऋत=वेद और सत्य=प्रकृति ( अधि अजायत ) प्रकट हुई। समुद्र के बनने के पश्चात् संवत्सर पैदा हुआ। (समुद्राद् अधि संवत्सरो अजायत)। और जहां केवल अजायत है अधि नहीं वहां पौर्वापर्य नहीं वर्णनमात्र है जैसे (ततोरात्र्यजायत)=उस परमात्मा के ईक्षण से ही प्रलय होती है और ईक्षण से ही सृष्टि होती है।

( मिषतः ) का अर्थ ऋषि ने कितना सुन्दर किया है कि जैसे निमेष उन्मेष आंख के स्वाभाविक ढंग से चलते हैं वैसे ही परमात्मा से सृष्टि और प्रलय सहजस्वभाव से हो रहा है। सातवलेकर जी ने इस भाव को मन्त्र से समाप्त ही कर दिया। 'यथापूर्वम्' के ऋषि ने तीन अर्थ किये जो पूर्व दिखाये जा चुके हैं सातवलेकर जी ने एक अर्थ करके दो अन्य अर्थों को उड़ा ही दिया जो सृष्टि की उत्पत्ति के आवश्यक अङ्ग हैं।

### २—श्री महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज—

आपने भी 'मिषतः' का अर्थ चेतन कर दिया 'यथापूर्वम्' का एक ही अर्थ कियां कि पूर्व कल्प के समान। विश्वस्य का सम्बन्ध 'अहोरात्राणि' के साथ ऋषि ने किया है जिसका अर्थ है विश्वभर के दिन रातों को। अर्थात् विश्व बहुत बड़ा है सर्वत्र दिन रात हैं यह भाव ही सबने समाप्त कर दिया। ऋग्वेद में लिखा है।

सप्त दिशो नाना सूर्याः ऋ० ९।११४।३॥

सूर्य बहुत हैं।

### ३—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय

आपने ऋतं अर्थ नियम किया वेद नहीं। अर्णवः समुद्रः का अर्थ ऋषि ने आकाश और भूमिस्थ समुद्र किया। उपाध्याय जी 'परमाणुओं की हलचल' अर्थ करते हैं उससे संवत्सर कैसे बना उपाध्याय जी ही जानते होंगे और आप भी 'मिषतः' का अर्थ गतिशील चीज करते हैं ऋषि का भाव उड़ गया। उपाध्याय जी भी यथापूर्वम् का एक ही अर्थ करते हैं कि पहले के समान दो अर्थ जो और ऋषि ने किये वे दोनों अर्थ आर्य समाज के किसी पण्डित को अच्छे नहीं लगे या स्वामी जी का भाष्य देखा नहीं होगा।

### ४—श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी महाराज

आपने रात्री का अर्थ प्रलय नहीं किया। प्रत्युत सर्वसुख दात्री प्राकृत सामग्री और समुद्र का अर्थ 'सब सृष्टि बीजों का भण्डार सर्वत्र प्रसृत प्राकृत तत्त्व' किया है। 'यथापूर्वम्' का एक ही प्रसिद्ध अर्थ किया है। स्वामी वेदानन्द जी के अर्थों में तो ऋषि दयानन्द सरस्वती जी महाराज का अर्थ बिलकुल नहीं आया।

### ५-गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी से अर्थ सहित सन्ध्या छपी है उसमें भी यथापूर्वम् का एक ही अर्थ किया है। इस सन्ध्या में भी 'विश्वस्य' का सम्बन्ध वशी के साथ किया है जो ऋषि के अभिप्राय के सर्वथा प्रतिकूल है, रात्रि का अर्थ गति किया है जो अशुद्ध है उसका प्रलय ही अर्थ है।

### ६—श्री पं० चमूपति जी एम० ए०

आपने भी यथापूर्वम् का एकही अर्थ किया और 'विश्वस्य' का सम्बन्ध 'वशी के साथ जोड़ दिया।'

### ७—महात्मा टेकचन्द (प्रभु आश्रितजी) महाराज

आप तप का अर्थ तपस्या करते हैं और लिखते हैं कि तपस्या किये बिना सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इत्यादि। प्रभु आश्रित जी यह भूल गये कि वे किसी मन्त्र का अर्थ कर रहे हैं और वह अघमर्षण मन्त्र है जिसका देवता भाववृत्त =सृष्टि की उत्पत्ति आदि विषय है। प्रभु आश्रित जी यह समझे कि वे तपस्या पर व्याख्यान दे रहे

# सदाचार

[ लेखक—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ]

श्री नान जी भाई की आत्मकथा में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का यह लेख आर्य महिला मासिक पत्रिका से उद्धृत करके छापा हुआ है, लेख की भाषा, विचार प्रवाह, वाक्या योजना, से ऋषि के ही हृदय के निकले भाव प्रतीत होते हैं। पाठकों को यह महर्षि का नया लेख जीवन सुधार की अभिनव सामग्री प्रस्तुत करेगा जो सामग्री चरित्र निर्माण में परमोपयोगी होगी। अक्षरशः ध्यान से पढ़ने योग्य यह लेख है। —संपादक वि. श्र. व्यास

जो शारीरिक प्रवृत्ति के अनुसार धर्म आता है उसका नाम सदाचार है। विविध शारीरिक क्रियायें जैसा कि व्यायाम-यह तो अपने अङ्गों का संचालन मात्र है। इससे अपना स्थूल देह अवश्य बलवान् तथा हृष्टपुष्ट होता है परन्तु ऐसी क्रिया का आत्मा की उन्नति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे शारीरिक प्रवृतियों को अपने आचार नहीं कह सकते। परन्तु जब ये प्रवृत्तियां किसी धार्मिक हेतु को ध्यान में रखकर करने में आती हैं तो परिणाम यह होता है कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की उन्नति तो होती है साथ ही साथ आत्मोन्नति भी शक्य बनती है। इसी से ही धर्मानुसारी क्रिया को आचार कहने में आता है। इस प्रकार आचार और धर्म के मध्य की समता को लेकर ही आर्यशास्त्रों में आचार को प्रथम धर्म ही तरीके नहीं परम धर्म तरीके पर भी दर्शाया गया है।

---

हैं। महात्मा लोगों को सब माफ है।

## ८—स्वा० विद्यानन्द विदेह जी महाराज

आपकी तो लीला ही निराली है आप कहते हैं कि मैं सिद्ध शिला पर बैठ कर भाष्य करता हूँ अब जरा पाठक शिलाभाष्य भी देखें—

इस शिलाभाष्य में 'अर्णवः समुद्रः' का अर्थ है प्रक्षुब्ध समुद्र विराट् पिण्ड और मिषतः का अर्थ विदेह जी करते हैं संपर्कमात्र। विदधत् अर्थ है 'विधारण किया करता है।'

विदेह जो वैदिक कोष या वेद वेदाङ्ग के आधार पर अर्थ नहीं करते अतः यदि वे गौ का अर्थ गधा और गधे का अर्थ गौ करदें तो उनके सिद्धशिला भाष्य में कोई दोष नहीं आ सकता क्योंकि उनसे समाधि में कोई कह जाता है उसका पता तो उन जैसा ही कोई या उनके भक्त ही लगा सकते हैं।

हम विस्तार भय से अन्य विद्वानों की समीक्षा छोड़ते हैं पर यह कटु सत्य है कि आर्य विद्वान् ऋषि के भाष्य को देखते नहीं अपने अपने काल्पनिक अर्थ करने में सन्तुष्ट हैं जब परीक्षा पर ऋषि का अर्थ रखा जाता है तब वह अर्थ अत्यन्त भावपूर्ण जंचता है और ये पण्डितों के किये अर्थ खिलवाड़मात्र प्रतीत होते है। आशा है अब आर्य समाज के विद्वान् किसी भी मंत्र का अर्थ करने से पूर्व ऋषि के अर्थ को देखेंगे।

—आचार्य विश्वश्रवाः 'व्यास'

मनुसंहिता में कहा गया है" श्रुतिस्मृति आचार के प्रथम धर्म माने गये है, इसलिए हे द्विज, नित्य आचार शील बनकर आत्मशील भी बन।"

इस प्रकार श्रुति स्मृतियों द्वारा उपदेश किया गया आचार प्रथम धर्म है। ब्राह्मणों को सदा उन्नतिशील बनकर आत्मा की उन्नति सिद्ध करनी चाहिए। इसीके अनुसार काशी खण्ड में भी लिखा है कि आचार अर्थात् परम धर्म और तप। आ-से पाप का विनाश और आयुष्य की वृद्धि होती है।

अपने जीवन के प्रमाण रूप में अपना स्थूल देह है तथा आचार और स्थूल शरीर के बीच सीधा सम्बन्ध है, स्थूल शरीर पवित्र हो तो सूक्ष्म देह भी आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करने में साधन रूप बनता है--इसी से भगवान मनु ने आचार को प्रथम धर्म कहा है। आत्मोन्नति के लिए प्रयास करें परन्तु आचारशील न हों तो फल मिलता नहीं—इसीलिए आर्य शास्त्र में आचार को परम धर्म कहा गया है, मनुसंहिता में एक श्लोक है--

आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग् भवेत ॥
एवमाचरतो दृष्टवा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम ॥

"आचारभ्रष्ट ब्राह्मण वेदज्ञान का फल पा नहीं सकता। केवल आचार वाला ही उसे प्राप्त करता है। इस प्रकार आचार से धर्म प्राप्ति हो सकती है ऐसा जानकर ही मुनियों ने आचार को तप का मूल तथा परम धर्म गिना है। इस प्रकार आचार परम धर्म है—यह सिद्ध हुआ। ऐसा होने का कारण क्या है? इसको तो आचाररूपी वृक्ष की संपूर्णता तथा फल देने की शक्ति पर विचार करें तभी जान सकते हैं। आचार वृक्ष के सम्बन्ध में शास्त्र में वर्णन है कि—

धर्मोऽस्य मूलान्यसवः प्रकाण्डो
वित्तानि शाखाच्छदनानि कामाः।
यशांसि पुष्पाणि फलञ्च पुण्यम्
असौ सदाचारतरुर्महीयान् ॥

सदाचार रूपी महान् वृक्ष का मूल है धर्म, प्राण धड़ है, शाखा धन है और पत्ते काम है, फूल यश है और फल है पुण्य। इस प्रकार यह कल्पवृक्ष महान् है। अब इस वर्णन की सार्थकता को देखना चाहिए।

धर्मानुसारी शारीरिक क्रिया को सदाचार कहें तो सदाचाररूपी वृक्ष का मूल धर्म ही माना जावेगा। प्रत्येक जीवधारी व्यक्ति की प्रवृति सहज रीति से अधर्माचरण की तरफ होती है। प्रत्येक को बिना रोक टोक खाने करने की इच्छा है। यह प्रवृति यदि चालू रही तो मनुष्य में देवांश विकसित न होकर, वह पशु के समान बनकर जीवन को बरबाद कर देगा। सदाचार रूपी अंकुश के कारण मनुष्य की निरंकुश वृत्तियां काबू में रहती है और वह यथेच्छ आहार विहार में ही मस्त नहीं बनता। प्रत्येक कार्य को नियमित रीति से धर्मानुसारी बनाने का प्रयत्न करें तो अपने आप संयम प्रकट होगा। मनुष्य में देवभाव की प्रकटता हो जाने पर वह स्वयं भगवान् के प्रति प्रगति करेगा, उसका जीवन शतदल कमल के समान विकसित होकर ईश्वर के चरणों में समर्पित होगा और उसके यशका सौरभ चारों दिशाओं को प्रफुल्लित बनावेगा। इसी से धर्म को सदाचार का मूल कहा गया है। सदाचार रूपी वृक्ष का धड़ आयुष्य है। अर्थात सदाचार के पालन से आयुष्य बढ़ता है। आयुष्य बढ़ाने के अनेक उपायों में संयम मुख्य है। अपनी इन्द्रियों और मन की इच्छाओं के निग्रह करने से आयुष्य बढ़ता है। अपनी जीवन यात्रा में विविध प्रकार की उच्छंखलतायें आती हैं उनको संयत करके सदाचार, तपस्या और संयम का उपदेश देता है तथा इस प्रकार आयुवृद्धि में सहायक रूप होता है। इसी

कारण सदाचारी स्त्री पुरुष दीर्घायु होते हैं।

सदाचार वृक्ष की शाखायें धन और पत्तियां अपनी वासनायें हैं। सदाचार सर्व प्रकार से धन संग्रह में अनुकूल बनता है। सामान्यरीति से धन लाभ को तीन विभागों में बांटा जा सकता है। धन प्राप्ति, उसकी रक्षा करना तथा उसमें वृद्धि करना। यदि शरीर बलवान् काम कर सकने योग्य तथा संगठित हो, बुद्धि प्रत्येक वस्तु को योग्य रीति से पकड़ सकती हो, मन स्थिर और उत्साही हो, स्वभाव विश्वास वाला तथा लोक प्रेमी हो, धन प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं। सदाचार के पालन से शरीर, बुद्धि और स्वभाव में उपर्युक्त गुण प्रकट होते हैं। तथा धन प्राप्ति करना सरल बनना भोगने की वृद्धि को काबू में रखकर विलासी वृद्धि को दबाने से, तथा मिथ्या रोब देखाव छोड़ने से धन का रक्षण होता है। सदाचार के पालन से धन का रक्षण भी सुन्दर तरीके से होता है। मितव्ययिता के साथ खर्च परिणाम का ज्ञान तथा सामाजिक व्यवस्था हो तो धन की वृद्धि हो सकती है। सदाचार के पालन से ये गुण बढ़ते हैं और धर्म वृद्धि संभव बनती है। सदाचार वृक्ष के पत्ते कामनायें हैं। इन कामनाओं का स्वरूप ऐसा है कि जैसे अग्नि डालते ही वह प्रज्वलित हो उठता है-- विषय वासनाओं की वृद्धि से संसार में जीव को दुःख भोगना पड़ता है। वासनाओं पर अंकुश रखने से ही सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है। सदाचार के पालन से वासनायें काबू में आती है-- इसी से उन्हें सदाचारतरु का पत्ता कहा गया है।

सदाचार वृक्ष का फूल यश है अर्थात सदाचारी की कीर्ति संसार में फैलती है। नम्रता, पवित्रता, सत चारित्र्य सुशील संयम आदि गुणों से ही कीर्ति मिलती है। जिनमें ये गुण हैं वे सब को अपनी तरफ आकृष्ट करेंगे। सदाचारी मनुष्य में उपर्युक्त गुण स्वयं प्रकट होते हैं और सदाचारी विशेष कीर्तिमान् बनता है। जो गुण सब के लिए इष्ट हैं उनका पालनकर्ता प्रशंसापात्र बने इसमें क्या आश्चर्य ? विद्यालय में सुन्दर अभ्यास करने वाले को इनाम मिलता है उसी की तरह इस का भी है। सदाचारी को कीर्तिलाभ रूपी इनाम मिलता है तथा यश से तो मानव अमरत्व का वरण करता है। यह कौन नहीं जानता ? शास्त्र के सिद्धान्तानुसार जिसकी कीर्ति जीती है वह जीवित है यह ही सदाचार वृक्ष के पुष्प का फल है।

सदाचारतरु का फल पुण्य है। सदाचारी अपने आप पुण्य प्राप्त करता है। पुण्य से पवित्रता, निर्मलता निष्पापता, मन की शुद्धि, रजस और तमस् से वंचित सात्विकता, आसुरी स्वभाव से वंचित देवत्व और पशुभाव रहित वैसे ही आत्मा की उन्नति के समान अनेक लाभ होते हैं। शरीर की जड़ता,बुद्धि की मन्दता,मन की चंचलता और छः दुश्मनों की प्रबलता से ऊपर दिखलाई गयी वृत्तियां भी नष्ट हो जाती हैं। (छः दुश्मन--काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद तथा मत्सर) प्रगति में बाधा करने वाले दुर्गुणों को सदाचार दूर करता है। इस प्रकार शास्त्र में सदाचार रूपी वृक्ष का कितना, सुन्दर वर्णन है।

राष्ट्रीय जीवन का तो सदाचार मेरु दण्ड ही माना जाना चाहिए। सदाचार पालन बिना कोई भी जाति निज जीवन को विशुद्ध और सदैव विकासशील रख सकती ही नहीं। मनुष्य की आन्तरिक और बाह्य प्रवृत्तियों के मध्य क्या सम्बन्ध है इसका निरूपण करने बैठें तो पता चलेगा कि बाह्य प्रवृत्ति आन्तरिक प्रवृत्ति का विकास मार्ग ही है। जैसी अपनी अन्तर की भावना, वैसी ही अपनी बाह्य प्रवृत्ति। इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को लेकर ही सामुद्रिक शास्त्री लोग बाहर के लक्षणों को देख मनोव्यापार भी कह देते हैं। इस प्रकार आन्तर प्रवृत्ति और बाह्य प्रवृत्ति के बीच इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि

मनुष्य की बाह्य प्रवृत्ति उसके आन्तरिक भावों को दर्शाये बिना रहती नहीं। प्रत्येक मनुष्य की खाने पीने, करने फिरने बैठने उठने, सुनने बोलने, मन की विचार करने की और आचरण की क्रियाओं को देखते ही उनकी किस्म के लक्षण भी स्पष्ट हो जाते हैं। अफ्रीका, मध्य एशिया तथा योरोप, अमेरिका तथा भारत के निवासियों की भाषा, वेशभूषा, रहन सहन आदि में बहुत फर्क है और इन सब को देखें तो उस देश की मानसिक वृत्ति का ख्याल भी मिलता है। हरएक देश में अपने लोग और अपने धर्म के बीच में पर्याप्त सामंजस्य होने से सदाचारी आर्य को पश्चिमी लोगों का बालकशाही लगेगा और पश्चिमी निवासी आर्य रीति रिवाजों के प्रति ठट्टा उड़ावेंगे। यदि ऐसा हो तो अपने राष्ट्रीय भावों की रक्षा करना तो अपना फर्ज है। कारण यह है कि जिस प्रकार आन्तर प्रकृतिका परिणाम बाह्य प्रकृति पर पड़ता है उसी प्रकार बाह्य प्रकृति द्वारा आन्तर प्रकृति का संघठन होता है। अपना आचार छोड़कर दूसरे का लेने जावेंगे तो अपनी हस्ती ही दुनियां में नहीं रहेगी अथवा जिस देश का रिवाज अपनावेंगे उसी देश में अपने को मिल जाना पड़ेगा और ऐसा करने से एक नयी प्रजा का सर्जन होगा सामान्यत: हरएक प्रजा में दीर्घ दृष्टि का अभाव होता है और कालबल के कारण कोई देश दूसरे देश का अनुकरण से राष्ट्रीय जीवन नष्ट बनता है। मनुष्य की प्रवृत्ति नवी नता की ओर बहुत खिंचती है और अपनी उत्तम चीज भी अपने उससे खूब परिचित है फिर भी दूसरे की नवीन वस्तु देखकर अपनी वस्तु फीकी मालूम पड़ने लगती है। ऐसा हो तो विचारशील मनुष्यों को समझना चाहिये कि जो बहुत पूर्व से चला आ रहा है वही टिकेगा। हर रोज, अनेक सुन्दर नयी वस्तुयें पैदा होती हैं और नष्ट होती हैं, उस पर मोहित होने से क्या फायदा? परन्तु दुःख की बात है कि जो देश पराधीन है उसकी सामान्य जनता इस बात को विचारती नहीं और अपने स्वभाव के अनुसार दूसरे देश के तावे में हो जाती है। जब कोई देश दूसरे देश को जीत लेता है, तो पराजित देश विजेता के रीतिरिवाजों का अनुकरण करने लगता है। दुनिया में दोप्रकार की शक्ति है-बड़ी और छोटी, बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को सदा तावे में कर लेती है। इसी से ही सत्वगुण सम्पन्न गुरु शिष्य को अपना बना देता है, धर्मगुरु को अनुयायी लोग ईश्वर का अवतार समझते हैं और पराजित देश पर विजेता अपने रीतिरिवाजों को लाद सकता है।

इतिहास के अध्ययन से पता चलेगा कि विजेता की महती शक्तियों ने पराजित की न्यून शक्तियों को हमेशा दबा लिया है तथा अन्ततोगत्वा न्यून शक्तिवाला देश अधिक शक्तिवाले देश में समा जाता है और निजी राष्ट्रीयता को खो बैठता है। ऐसे ही यूनानी प्रजा रोमन प्रजा में मिलकर नष्ट हुई। तथा कालचक्र के प्रभाव में यह रोमन प्रजा भी दूसरे देश से हार खाकर अन्त में इटैलियन जाति में परिणत हो गई। केवल एक आर्य प्रजा ऐसी है कि अन्तिम दो हजार वर्षों में अनेक विदेशी प्रजाओं से पराजित बनने पर भी अपने स्वरूप को संपूर्णत: भूली नहीं, संसार भले ही अपना मजाक करे, हमें अधम गिने परन्तु अभी तक अपने निज स्वत्व को भूले नहीं हैं-यह गौरव की बात है। इसका कारण इस प्रजा का सदाचार पालन है। यदि अपनी राष्ट्रीयता टिकी रखनी हो तो अपने सदाचारों के पालन में अपने को अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि भारत की सन्तानें सदाचार पालन के लिए जागरूक रहेंगी तो उनकी राष्ट्रिय-उन्नति को यह कलिकाल भी नहीं रोक सकेगा।

आर्य शास्त्रों में परंपरा से सदाचार और परमतत्व-इनमें ब्रह्म का सम्बन्ध निर्दिष्ट हुआ है। इस पर से सिद्ध होता है कि जीव सदाचारी

हो तो ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर आसानी से बढ़ सकता है-यह बिल्कुल ठीक है। सदाचार के पालन के प्रभाव से मनुष्य निज ज्ञान मार्ग को स्वच्छरूप में देख सकता है। इस कथन का शास्त्रोय प्रमाण देखना चाहिए।

आचारमूला जातिः स्यादाचारः शास्त्रमूलकः।
वेदवाक्यं शास्त्रमूलम्, वेदः साधकमूलकः॥
क्रियामूलः साधकश्च क्रियापि फलभूमिका।
फलमूलं सुखं देव सुखमानन्दमूलकम्॥
आनन्दो ज्ञानमूलश्च ज्ञानं ज्ञेयस्यमूलकम्।
तत्वमूलं ज्ञेयमात्रं तत्वं हि ब्रह्ममूलकम्॥
ब्रह्मज्ञानं त्वैक्यमूलं ऐक्यं स्यात्स्वमूलकम्।
ऐक्यं हि परमेशान भावतीतं सुनिश्चितम्॥
भावातीतमिदं सर्वं प्रकाशो भावमात्रकम्॥

किसी भी जाति का मूल आचार है। स्वभाव, प्रवृत्ति, गुण और कर्म के भेदों से प्रजा की उत्पत्ति हुई है।

विभिन्न जातियों का सदाचार भी भिन्न २ है। आर्य जाति का सदाचार वेद हैं। सनातन धर्मियों की श्रद्धा है कि वेद कोमल है। जीव के कल्याण के लिए ही ईश्वर ने वेद प्रकट किया है। सनातन धर्म के समस्त शास्त्र वेद के अनुयायी हैं और त्रिकालज्ञ मुनियों ने निज निर्मल बुद्धि की सहायता से वेदमत के प्रतिपादन के लिए विविध शास्त्रों की रचना की। इससे वेदानुयायियों के सर्व शास्त्रों के मूल में श्री वेदरूपी ईश्वर विराजमान है। जिस प्रकार मलय पर्वत चन्दनवासित वायु से सभी वृक्षों में चन्दन की सुगन्धि पैदा होती है परन्तु बांस में वैसी सुगन्ध उत्पन्न होती नहीं। उसी प्रकार साधन का जिसको ज्ञान नहीं उस जड़ हृदय में ईश्वर की निर्मल ज्योति के समान वेद का प्रकाश उत्पन्न होता नहीं। असाधारण तपस्वी और योग जानकार साधकों के निर्मल दिल में ही वेद का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है। साधन न करें तो केवल ईश्वर दर्शन की इच्छा से ही उसका दर्शन होता नहीं। असाधारण तप तथा योगसाधन से ही साधकों में श्रेष्ठ महर्षियों में वेदज्ञान प्रकट हुआ था। इससे वेदों का मूल साधक है। अमुक क्रियायें करने से मनुष्य को साधक का पद मिलता है। इसी से योग और तपरूपी क्रियाओं को साधकों का मूल गिना गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चार फलों को अथवा इनमें से किसी की इच्छा रखकर मनुष्य क्रियायें करता है। इससे क्रियाओं का मूल फल है, परन्तु जीव इस फल की इच्छा क्यों करता है? इस प्रश्न पर विचार करते हुये मालूम पड़ता है कि जीव सुखप्राप्ति की आशा से इन चार फलों के लिए प्रयत्नशील बनता है। इससे फल का मूल हुआ सुख और वासनागत सुख से परे वह जो अद्वैत ब्रह्मानन्द है वही सच्चा आनन्द है: और जीव इस आनन्द की खोज में भटकता हुआ भ्रम के वश में पड़कर सांसारिक सुखों में मशगूल हो जाता है। इससे सुखों का मूल आनन्द है। जीव अपनी ज्ञानशक्ति से पहचान लेता है कि माया-मूलक विषयसुख खरा सुख नहीं? क्योंकि क्षणभंगुर पदार्थों से प्राप्त होने वाला सुख भी क्षणभंगुर ही होता है। परमात्मा का आनन्द ही सच्चा आनन्द है।

इस प्रकार के विचारों का कारण ज्ञान है और इससे आनन्द का कारण भी ज्ञान ही समझना चाहिए। लक्ष्य एवं ज्ञातव्य को जानने के लिए जीव के अन्तः करण में ज्ञान अंकुर उगता है, इससे ज्ञान का मूल हुआ लक्ष्य अथवा ज्ञेय और ज्ञेय का अन्त आता है परमतत्व में, अर्थात्

---

क्यों कि बांस भीतर से पोला सार हीना होता है। उसी प्रकार सार हीन जीवन में वेद का प्रकाश नहीं होता। उपमा का भाव है। सम्पादक

परमतत्व का साक्षात्कार होने के बाद कोई वस्तु जानने योग्य नहीं रह जाती है। इसलिए ज्ञेय वस्तु के मूल तत्व का अनुभव कर जानना चाहिए। तत्व भी जिसका पार न दे सके वैसा परमतत्व अर्थात सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्वरूप इससे सभी तत्वों का मूल ब्रह्म हुआ। प्रत्येक शास्त्र, मत क्रिया और साधन में एकता लाना अथवा उनके सामंजस्य की रक्षा करना चाहिए, तथा उसे ही सब का मूल कहने में आया है। ऐसा एकता पूर्ण सर्वदेशीय ज्ञान ही ब्रह्म ज्ञान का मूल है। यह परब्रह्म मानव भाव से पर बनकर सकल विश्व का प्रकाशक बन रहा है। इस भांति आर्य शास्त्र सदाचार मूलक प्रजा धर्म और ब्रह्मसद्भावपद के मध्य जो परम्परा सम्बन्ध है वह दर्शाया गया है। ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि सदाचार के साथ परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप में आधिभौतिक उन्नति, आधिदैविक उन्नति-, आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एवं राजनैतिक उन्नति-इस तरह सर्व प्रकार की उन्नति अटूट रूप से बंधी हुई है और इसी से मनु आदि महर्षियों ने आर्य शास्त्रों में सदाचार की इतनी प्रशंसा की है। उदाहरणत:—

आचारो भूतिजननः आचारः कीर्त्तिवर्धनः।
आचाराद् वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम्॥
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।
आचाराल्लभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेह च॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद् धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान् भवेत्।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥

"आचार वैभव का उत्पादक, कीर्ति और आयु का बढ़ानेवाला और बुरे लक्षणों का नाश करने वाला है। सभी शास्त्रों में आचार को ही श्रेष्ठ वस्तु मानने में आया है। धर्म आचार से उत्पन्न होता है और धर्मपालन से आयुष्य बढ़ता है। आचार पालन से मनुष्य को यह लोक तथा परलोक में आयुष्य, कीर्ति और धन मिलता है। आचार पालन से आयु, चाही सन्तान और पुष्कल सम्पत्ति मिलती है और बुरे लक्षणों का विनाश होता है। दुराचारी मनुष्य संसार में सब की निन्दा बटोरता है। हमेशा दुःखी रोगग्रस्त और न्यून आयु वाला होता है। मनुष्य में अन्य उत्तम गुण न हों परन्तु वह सदाचारी, शास्त्रों में श्रद्धा रखने वाला, और दूसरे से ईर्ष्या न करने वाला हो तो वह सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है। इस भांति आर्य शास्त्रों में आचार की प्रथम और परम धर्म के रूप में प्रशंसा करने में आयी है।

# परम योगी देव दयानन्द की योग साधना

[ लेखक—श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती ]

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी परम योगी थे उनके वेदभाष्य तथा उनके अन्य ग्रन्थों के उपासना प्रकरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन बातों को कोई उच्च कोटि का योगी ही जान सकता है। ऋषि का वेदभाष्य केवल पाण्डित्य के आधार पर नहीं वह योगज साक्षात्कार पर भी आधारित है क्योंकि वेदभाष्य का कार्य परमयोगी जो उच्चकोटि का वेदवेदाङ्ग का विद्वान् हो वही कर सकता है। पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा जी के मन्दिर में एकबार जाने का अवसर हुआ। मेरे साथ स्वर्गीय पं० रामदत्त जी शुक्ल, स्व० स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ तथा डाक्टर मङ्गलदेव जी रजिस्ट्रार बनारस, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि अनेक विद्वान् थे। मन्दिर के तत्कालीन महन्त जी ने हमको वह स्थान दिखाया जहां श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी मन्दिर में रहे थे। वहां एक बरामदा है उसके दोनों ओर कमरे हैं। महन्तजी ने बताया कि एक कमरे में स्वामी दयानन्द जी की पुस्तकें रहती थीं और दूसरे कमरे में कुछ नहीं। वेदभाष्य का कार्य बरामदे में बैठकर स्वामी जी करते थे कभी कभी बीच में रुक जाते और उस खाली कमरे में चले जाते थे वहां क्या करते पता नहीं। कुछ देर बाद उसमें से निकलते और प्रसन्न होते हुए फिर वेदभाष्य का कार्य कर चलते। ऋषि का यह वेदभाष्य और सिद्धान्त निर्णय विद्या और योग दोनों के बल पर किया हुआ है।

श्री आनन्दस्वामी जी महाराज ने अपने इस लेख में कुछ ऋषि के जीवन चरित्र से और कुछ स्वयं अपनी यात्रा में मालूम किये समाचारों से ऋषि की योग साधना यात्रा का सुन्दर वर्णन किया है जिसको पढ़कर पाठक आश्चर्य से गदगद हो उठेंगे। हम ऋषि का यह स्वरूप अभी संसार के सामने धरने में पिछड़े हुए हैं यह लेख ऋषि की योग विद्या योग्यता पर अच्छा प्रकाश डालता है हम इस लेख के लिये श्री आनन्दस्वामी जी महाराज के आभारी हैं— संपादक—वि० श्र० व्यास,

सच्चे शिव के दर्शन कैसे होते हैं और मृत्यु पर विजय पाने का क्या साधन है ? इन दो प्रश्नों का उत्तर लेने के लिये मूल शंकर अपने बाल्यकाल में जब कभी अपने विद्वान् बन्धुओं से पूछा करते तो मूलशंकर को एक ही उत्तर मिलता, कि इसका साधन योगाभ्यास ही है। इसलिये गृह-त्याग करते ही वह योगियों की खोज में चल पड़े। पूर्व ही मूल जी ने सुन रखा था कि 'शैला नगरी' के 'लाला भक्त' बड़े योगी हैं अतः सबसे पूर्व २१ वर्ष का युवक मूल शंकर लाला भक्त के पास पहुँचा। परन्तु लाला भक्त मूल जी को सन्तुष्ट न कर सके, शैला ही में ब्रह्मचारियों का पहनावा धारण कर

लिया और नाम शुद्ध चैतन्य हो गया। तब सुना कि अहमदाबाद के निकट 'कोटगङ्गारा' में योगी मिल सकेंगे, शुद्ध चैतन्य जी वहीं जा पहुँचे, तीन मास वहां निवास करके देखा कि मनोकामना पूर्ण नहीं होरही, तब वहांसे भी चलना पड़ा। 'सिद्धपुर' के मेले पर योगी मिल सकेंगे, ऐसा सुन कर शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर पहुंच कर साधुओं और योगियों की कुटियाओं में पहुंचने लगे, सारा दिन सत् संग तथा योग सम्बन्धी वार्ता में व्यतीत हो जाता। तब अकस्मात एक दिन मूल शंकर (शुद्ध चैतन्य) के पिता श्री कर्शन जी वहां आ पहुँचे और शुद्ध चैतन्य को पकड़ कर घर ले जाने लगे, सिपाहियों का कड़ा पहरा दिन रात शुद्ध चैतन्य पर रहने लगा, परन्तु यहां तो न घर के सुख आराम की, न पिता माता के स्नेह तथा प्यार की, और न कड़े पहरे की परवाह थी, वहां तो सच्चे शिव के दर्शन पाने की उत्कट इच्छा की अग्नि प्रचण्ड हो चुकी थी, कड़े पहरे की तीसरी रात थी, कि शुद्ध चैतन्य अवसर पाकर बाहिर निकल गये और फिर सम्बन्धियों के हाथ कभी नहीं आये, पूर्ववत योगियों की खोज में तत्पर हो गये।

सिद्धपुर से निकल कर अहमदाबाद होते शुद्ध चैतन्य 'बड़ोदा' पहुंच कर 'चेतनमठ' ठहरे, वहां कोई योगी न मिला, तब नर्मदा नदी के तट पर रहने वाले योगियों की खोज में 'चरणोद कर्णाली पहुंचे, वहां शुद्ध चैतन्य को कितने ही योगदीक्षित साधु महात्माओं के दर्शन हुए और निरन्तर डेढ़ वर्ष नर्मदा नदी के तट पर रह कर योग क्रियायें सीखते रहे, वहीं शुद्ध चैतन्य ने स्वामी 'पूर्णानन्द जी' से संन्यास की दीक्षा ली और इन का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती रखा गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती को ज्ञात हुआ कि 'व्यासाश्रम' में योग-विशारद योगी 'श्री योगानन्द जी' का निवास है, अतः दयानन्द व्यासाश्रम जा पहुंचे और योगानन्द जी से योग की शिक्षा प्राप्त करके योग क्रियायें भी करने लगे। व्यासाश्रम से 'छिनूर' या 'सिनोर' होकर दयानन्द फिर चाणोद जा पहुंचे, वहा 'शिवानन्द गिरी' और 'ज्वालानन्द पुरी' के साथ मिलकर योगकी क्रियाओंका अभ्यास करने लगे, इन दोनों ने स्वामी दयानन्द से कहा कि एक महीना पश्चात् 'अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में आ जाना तब योगविद्या के रहस्य और चरम प्रणाली के विषय में शिक्षा देंगे। दयानन्द वहीं पहुंच गये, वहां इन दोनों योगियों से दयानन्द ने योग-रहस्य प्राप्त किया. स्वामीजी इसके सम्बन्ध में स्वयम् लिखते हैं कि:—

"योग विद्या की जो कुछ भी शिक्षा थी वह मैंने उन्हीं दोनों साधुओं से पाई है और मैं उन के कृतज्ञता-पाश में बद्ध रहा हूं"

परन्तु इन योग क्रियाओं को सीखकर भी अभी दयानन्द की प्यास बुझी न थी, इसी लिये वह अहमदाबाद से 'आबू पर्वत' पर अधिक योग निष्ठ महात्माओं की खोज में जा पहुंचे। गृह त्याग किये अब ६-७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, पर्याप्त योग-अनुभव कर लिया था, परन्तु दयानन्द तो ब्रह्म प्राप्ति की मञ्जिल के यात्री थे, अतः और आगे बढ़े, आबू पर्वत के 'भवानी गिरि नामक' एक शृङ्ग पर एक महात्मा से योग-क्रिया के विषय में कुछ शिक्षा प्राप्त की, परन्तु प्यास की तृप्ति यहां भी न हुई, आबू पर्वत के सभी प्रकार के साधु सन्तों के द्वार खटखटा कर देख लिये, यहीं से पता चला कि 'उत्तराखण्ड' और 'हिमालय पर्वत' में अधिक ऊंचे योगी रहते हैं, अब दयानन्द हिमालय की ओर चल पड़े।

## उत्तराखण्ड में

यह आज से एक सौ चार वर्ष पूर्व की बात है, जब सम्वत १९११ में स्वामी दयानन्द योगियों की खोज में, सच्चे शिव के दर्शन की चाह हृदय में लिये 'हरिद्वार' पहुंचे तब हरिद्वार एक साधारण

सी बस्ती थी, हरिद्वार में पहुंचने वाले यात्री तब रात्रि को हरिद्वार में नहीं सोते थे, ज्वालापुर चले जाते थे, विख्यात यह था कि हर की पैड़ी पर रात को शेर पानी पीने आते हैं, स्वामी दयानन्द ने तब चण्डी के जंगल' में डेरा जा लगाया, यह जंगल शेरों, रीछों हाथियों से भरपूर था, परंतु दयानंद अब मृत्यु से डरते नहीं थे, तब कुम्भ का मेला भी था; कितने ही तत्वदर्शी, त्यागी योगियों का आपने सत्संग लाभ उठाया और मेलेके पश्चात 'ऋषिकेश' चले गये, आज से १०४ वर्ष पूर्व ऋषिकेश एक नन्हा सा साधारण पड़ाव था, कोई बाजार नहीं था, न धर्मशालायें थीं हां भरत मन्दिर और उसके कुछ मकान थे, काली कमली वालों का भी कोई भवन न था झोंपड़ियां सी थीं, एक दो दुकानें अवश्य थीं या जंगल विभाग वालों की झोंपड़ियां थीं, तब साधु सन्त महात्मा योगी या तो "झाड़ी" में रहते थे, या लछमण झूला के पास रहते थे।

सम्वत १९११ के अंत से लेकर १९१२ के अंत तक स्वामी दयानंद हरिद्वार से चल कर ऋषिकेश, 'टीहरी श्रीनगर' (गढ़वाल) 'देव प्रयाग, रुद्र प्रयाग, केदार घाट, तुंगनाथ, ओखीमठ, जोषीमठ, अलखनंदा-वसुधारा, गौरी कुण्ड, भीम गुफा-त्रियुगी नारायण-बद्रीनारायण, संतपथ, आदि उत्तराखण्ड के स्थानों पर योगियों की तलाश में भ्रमण करते रहे, भयंकर बीहड़ जंगलों में, हिमाच्छादित पर्वत शिखरोंपर महाराज यही उद्देश्य लेकर पहुंचे कि किसी सिद्ध योगी की संगति मिल जाये। उत्तराखण्ड से नीचे आकर 'कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर, काशी' होकर महाराज 'नर्मदा नदी के स्रोत' की ओर चल पड़े, ताकि उधर अच्छे योगियों का पता मिल सके। इस भयंकर कठिनयात्रा में भी लगभग एक वर्ष व्यतीत हो गया, और इसके पश्चात सम्वत १९१६ तक के तीन वर्ष की घटनाओं का कुछ भी पता महर्षि के किसी भी जीवन चरित्र से नहीं मिलता—उत्तराखण्ड तथा नर्मदा भ्रमण के दो वर्षोंकी यात्रा का थोड़ा बहुत पता स्वामी जी के अपने लिखे जीवन चरित्र से मिलता है, परंतु सम्वत १९१३ से सम्वत १९१६ तक का कुछ भी समाचार प्राप्त करने का अभी तक कोई ठीक यत्न नहीं हुआ।

मैंने सम्वत २००५ में संन्यास की दीक्षा ली और सम्वत २००६ के प्रारम्भ में पहली बार गंगोत्री की ओर प्रस्थान किया तो जहां योगनिष्ठ महात्माओं का सत्संग करने की मेरे मन में भारी अभिलाषा थी, वहां देव दयानन्द के तपस्या स्थानों के देखने की भी उत्कट इच्छा थी। महर्षि दयानन्दने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "उत्तर काशी आदि स्थान ध्यानियों के लिये अच्छा है" परंतु स्वयम् लिखित जीवन चरित्र में महाराज ने उत्तराखण्ड में एक वर्ष (१९११ से १२) के भ्रमण का जो वर्णन लिखा है उसमें उत्तर काशी का कहीं जिकर नहीं, ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज टिहरी से श्रीनगर रुद्र प्रयाग की ओर प्रस्थान कर गये और वह टिहरी से उत्तर काशी की ओर नहीं गये, परन्तु नर्मदा नदी के स्रोत के अनुसन्धान के पश्चात् सम्वत १९१३ में वह एक बार फिर ऋषिकेश पहुँच कर टिहरी होते 'उत्तर काशी' पहुंचे, और वहां के 'शांत' गम्भीर गंगा तट को, ध्यान के लिये सहायक समझ कर उत्तर काशी का वर्णन सत्यार्थ प्रकाश में कर दिया।

सम्वत २००८ में मैं जब उत्तर काशी पहुंचा तब महाराज दयानन्द को वहां पहुंचे ९४ वर्ष बीत चुके थे, मैंने यत्न किया कि कोई सौ वर्ष से अधिक आयु वाला मिले तो कुछ पूछ ताछ करूं, परन्तु ८०-९० से अधिक आयु वाला कोई मिला नहीं, हां कुछ वयोवृद्ध महानुभाव मिले जिन्होंने बतलाया कि उन्होंने यह अवश्य सुना है कि आर्य समाज की स्थापना करने वाले स्वामी दयानन्द 'गंगा पार चील के जंगल में एक जल प्रपात' के किनारे तपस्या करते रहे हैं, यह बात गंगोत्री के

पण्डा पं० भूमानन्द जी ने तथा श्री स्वामी तपोवन जी ने बताई, इससे अधिक कुछ मालूम न हो सका

उत्तरकाशी से गंगोत्री ५६ मील ऊपर है, पहली बार जब गंगोत्री पहुंचा तब स्वामी दयानन्दजी केसम्बन्ध में कुछ ज्ञात न होसका, दूसरीवार गंगोत्री जाते भारत के अंतिम ग्राम धराली में ठाकुर नारायणसिंह के मकान पर ठहरने का अवसर मिला तो उनसे बातचीत करने पर मालूम हुआ कि स्वामी दयानन्द 'धराली' ग्राम से लगभग १॥ मील आगे एक पर्वत गुफा में तपस्या करते रहे हैं, ठा० नारायण सिंह अगली प्रातः मुझे उस गुफा की ओर ले गये, गंगोत्री के मार्ग पर पर्वत की ओर कुछ ऊपर चढ़ कर दो गुफायें हैं, उनमें से एक गुफा की ओर संकेत करके ठा० नारायणसिंह ने कहा यही वह गुफा है जिसमें योगी 'दयानंद ने एक बार तीन महीने की समाधि लगाई थी, और एक २ सप्ताह की कितनी ही बार समाधियां लगाईं।' मैंने पूछा—आपने योगी दयानंद को देखा है? उत्तर मिला—नहीं—मेरे पिता ठा० शिवसिंह स्वामी जी की सेवा किया करते थे, और पिता जी मुझे स्वामी जी के सम्बन्ध में बातें सुनाया करते थे; जब स्वामी जी समाधि में होते थे तो पिता जी वहीं उनकी रक्षा के लिये दिन रात रहते थे, जब समाधि में नहीं होते थे तो धराली से उनके लिये भोजन तय्यार करा कर लाया करते थे, मेरे पिता जी की सेवा भावना को देखकर योगी दयानंद ने पिता जी को आशीर्वाद दिया था, कि तुम्हें सदा साधु महात्माओं द्वारा लाभ ही होता रहेगा, और योगी दयानंद का यह आशीर्वाद निरन्तर फलीभूत हो रहा है; मैंने पूछा आपके पिता जी ने और क्या बतलाया।

(ठा० नारायणसिंह) एक घटना पिता जी ने यह सुनाई कि एक बार एक अंग्रेज बन्दूक लेकर भूरे रीछ का शिकार खेलने आया तो स्वामी दयानंद ने उस अंग्रेज के साथियों से कहा कि इस जंगल के रीछ किसी को हानि नहीं पहुंचाते अतः इन को मारना नहीं चाहिये, परंतु अंग्रेज ने यह बात नहीं मानी और गोलियां चलाता रहा, रीछ कोई मरा नहीं, अंग्रेज क्रोधित होकर बहुत ऊपर पर्वत पर चढ़ गया, जहां हिम से फिसल कर गिरा और मर गया?

(मैं) कोई और घटना?

(ठा० नारायणसिंह) पिता जी बतलाया करते कि जब योगी दयानंद समाधि से उठते तो यही कहते मैं मोक्ष के लिये तप नहीं तप रहा, अपितु आत्मिक बल प्राप्त करने के लिये कर रहा हूँ, क्योंकि आत्मिक बल के बिना अज्ञान का अंधकार जो जगत् में बहुत घना फैल रहा है दूर नहीं हो सकता।

(मैं) क्या तब योगी दयानन्द कोई वस्त्र पास रखते थे,

(ठा० जी) नहीं, पिता जी ने यही बतलाया था कि केवल कोपीन पहनते थे, वह भी भोजपत्र की, एक करमण्डलु और कुछ पुस्तकें उन के पास थे।

धराली की जिस गुफा में योगी देव दयानन्द ने महीनों तपस्या की, इसे राजगुरु श्री पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द जी) भी देख आये हैं?

गंगोत्री समुद्र तट से साढ़े दस हजार फिट ऊंचा है, वहां सर्वथा नग्न रहने वाले दो तीन महात्मा हैं, उन में से स्वामी कृष्ण आश्रम जी ३५-३० वर्ष मौन रहे हैं, उन का शरीर अब छूट गया है, बहुत बड़ी आयु के वह बतलाये जाते थे, बड़े वृद्ध पण्डा पण्डित भी यही कहते कि हम इन्हें बाल काल से ऐसा ही देखते आये हैं, स्वामी कृष्ण आश्रम जी बोलते तो थे नहीं मौन थे। हां जमीन पर या हाथ पर लिख कर बात कर लेते थे, उन से एक बार स्वामी दयानन्द जी

का जिकर हुआ तो उन्हों ने बतलाया कि धराली की गुफा में, भटवाड़ी के ऊंचे पर्वत के जंगल में स्वामी दयानन्द योग साधना करते रहे हैं,।

सम्वत २००८ में ज्येष्ठ मास में जब मैं गंगोत्री पहुंचा तो वहाँ केवल दो ही सप्ताह रह कर उत्तर काशी लौट आया, और तीन मास वहीं गंगा तीर निवास किया, उन्हीं दिनों एक गुजराती साधु द्वारा यह पता मिला, कि मल्ला चट्टी के रास्ते बूढ़े केदार को जावें तो १½ दो दिन के मार्ग पर एक स्वामी धौल गिरी या धवल गिरी रहते थे, उन के पास स्वामी दयानन्द रहे हैं और योगाभ्यास करते रहे हैं। तब मैं उत्तर काशी से १० मील ऊपर मल्ला चट्टी को चल दिया, रात वहीं विश्राम कर के अगली प्रातः बूढ़े केदार की ओर प्रस्थान किया, एक कुली मेरे साथ था, तीन चार घण्टे की यात्रा के पश्चात ही बड़े घने जंगल में से जाना पड़ा, दिन होते हुए भी जंगल में अन्धकार ही था, दिन भर चलते २ थक गया तो एक टूटा सा मकान दिखाई दिया, उसी के बाहर आग जला कर सो गया, अगले दिन प्रातः ही फिर यात्रा शुरू हो गई, सायं चार बजे एकवृद्ध साधु से भेंट हो गई, मैंने उन से पूछा यहां कोई स्वामी धौल गिरी भी रहते हैं क्या? उत्तर मिला कि "उन का बैकुण्ठ वास हुए तो बहुत वर्ष हो गये, मैं उन्हीं का शिष्य हूँ और उन्हीं की कुटिया में रहता हूँ परन्तु आप गुरु जी की खोज क्यों कर रहे हैं।"

मैंने कहा मैं आज आप ही की कुटिया में रहूंगा और वहीं चल कर वार्तालाप करूँगा,। तब वह साधु महात्मा मेरे साथ चल पड़े, थोड़ा ही चले होंगे तो एक साधारण सी झोंपड़ी में हम जा पहुँचे, पास ही छोटा सा जल प्रपात था, मैंने उस महात्मा से उन का नाम पूछा तो कहने लगे मुझे शेर वाला बाबा कहा जाता है।

मैंने कहा, मेरा यहां आने का प्रयोजन यह है कि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती (जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की) के सम्बन्ध में कुछ पता लगाऊं, (साधु) हां स्वामी दयानन्द गुरु जी के पास रहे थे, गुरु जी बहुत पहुंचे हुए योगी थे, मुझे गुरु जी ने ही बतलाया था कि स्वामी दयानन्द पहले हठ योग की बहुत क्रियायें किया करते, परन्तु इन क्रियाओं को बाद में उन्होंने छोड़ दिया और अष्टांग योग की विधि से योगाभ्यास करने लगे। मैंने पूछा "आप के गुरु जी ही का नाम धौलगिरि था? कितनी आयु में उनका शरीर छूट गया और वह स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में क्या बतलाते थे।

साधु) गुरु जी का यही नाम था। १३५ वर्ष आयु में उन्होंने ब्रह्म लोक को प्रस्थान किया। स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध में कभी २ बड़ा लम्बा श्वास लेकर कहा करते कि ऐसा नैष्ठिक ब्रह्मचारी और अपनी धुन का पक्का, सर्वथा निर्भय तथा आत्म दर्शन के लिए जीवन की बाजी लगा देने वाला युवक उन्होंने कभी नहीं देखा। जल प्रपात के पास वह बड़ा सा पत्थर देख रहे हो, इसी पर बैठ कर स्वामी दयानन्द समाधिस्थ हुआ करते, यह जंगल शेरों रीछों से पूर्ण है, परन्तु स्वा० दयानन्द जंगल में निर्भय घूमा करते"—इतना सुनकर मैं उसी पत्थर पर जा बैठा—गायत्री जप करने लगा, एक दम निस्तब्ध घना जंगल, जल प्रपात के अतिरिक्त और कोई ध्वनि नहीं, उस ध्वनि में मेरी चित्त वृत्ति लय हो गई, कितना समय इस अवस्था में रहा कह नहीं सकता, परन्तु जब आंख खुली तो अंधेरा हो रहा था, आंख खुलते ही अपनी बांई ओर के जंगल से एक बड़ा शेर निकलते देखा जो टहलता हुआ आ रहा था, मैंने आवाज दी स्वामी जी शेर आया वह साधु झोंपड़ी से बाहिर आकर बोले--"डरो नहीं, शांत बैठे रहो" तब वह शेर उस साधु के पास जा पहुंचा, अपने शरीर को साधु के साथ लगाकर खड़ा हो गया, साधु ने शेर को गर्दन

से लेकर पूंछ तक हाथ फेर कर प्यार करना शुरु किया, १५-२० बार हाथ फेरा गया होगा, तब शेर को थपकी देकर कहा "जाओ आराम करो ? और शेर मस्तानी चाल से जिधर से आया था, उधर ही चला गया—तब मैं उठकर उस महात्मा के पास जा बैठा और कहा—यह मैंने क्या देखा है ? साधु ने कहा----लगभग प्रति दिन यह प्यार लेने आता है, इसी लिए मुझे शेर वाला बाबा कहते हैं।" मैं ने पूछा क्या आप के गुरु जी के पास भी शेर आते थे, (साधु) हां उनके पास तो कितने ही शेर तथा रीछ आया करते थे।

(मैं) स्वामी दयानन्द को योग साधना का उत्कट प्रेम कहां कहां ले आया।

(साधु) जिन्होंने आत्म दर्शन पाने होते हैं, उन के लिए कोई बात कठिन नहीं रहती"—तब मैं उठकर फिर जल प्रपात के निकट चला गया, मेरे नेत्रों में जल बह रहा था--धन्य हो परम योगी कहां कहां पहुंच कर योग साधना में लगे रहे, ठीक ही तो किसी ने कहा है:—

तलाशे यार में जो ठोकरें खाया नहीं करते।
वह मंज़िले मकसूद को पाया नहीं करते॥

रात उसी झोंपड़ी में काट कर मैं अगले दिन उत्तर काशी को चल पड़ा और तीन दिन पश्चात फिर नाथ कुटीर—गंगा तीर जा पहुंचा—केदार घाट के सम्बन्ध में भी कुछ लिखना आवश्यक है। केदार घाट का वर्णन महर्षि ने अपने स्वयम् लिखित जीवन चरित्र में किया है। स्वामी दयानन्द जब पहली बार उत्तराखण्ड की ओर चले तो टिहरी से गढ़वाल वाले श्रीनगर होते हुए केदार घाट पहुंचे थे, केदार घाट में रहने वाले स्वामी गंगा गिरि का वर्णन भी स्वामी जी ने किया है जिस के साथ मिलकर वह योगाभ्यास किया करते थे। इस योगी गंगा गिरि के शिष्य के शिष्य (पोता शिष्यों के साथ मेरी भेंट हुई, इस का नाम सुन्दर गिरि है, उस ने बतलाया कि उस के गुरु यमुनागिरि स्वामी गंगा गिरि के बहुत प्यारे शिष्य थे, उन के द्वारा गुरुजी को यह ज्ञात हुआ कि स्वामी दयानन्द और स्वामी गंगा गिरि हठ योग की क्रियायें किया करते थे, एक दो क्रियायें स्वामी दयानन्द ने स्वामी गंगा गिरि को सिखलाई थीं,उनमें से एक क्रिया सम स्वर कर के शरीर तथा मनमें सत्वगुण प्रधान करने की है। बायें हाथ की मुट्ठी बन्द करके दाईं बगल में रख कर दाईं ओर झुक जाने से सूर्य स्वर बन्द होकर चन्द्र स्वर चलने लगता है, तब सीधा बैठ कर आंखें आधी खुली आधी बन्द, ध्यान नासिका की नोक पर रखकर ५-१०-१५-२० श्वास लम्बे लम्बे लेने से सम स्वर हो जाता है, सम स्वर में प्रभु भजन करने से चित शान्त हो जाता है। सुन्दर गिरि ने बतलाया कि स्वामी दयानन्द को केदार घाट बड़ा प्रिय था, वह घन्टों पर्वत—माला की ओर एक टक देखते रहते।

महर्षि योगी दयानन्द ने सच्चे शिव के दर्शन पाने के लिए कठिन से कठिन और निर्जन स्थानों पर पहुंचकर भरसक यत्न किये और अपना मनोरथ सिद्ध किया, प्रभु कृपा से तथा अपने घोर तप से देव दयानन्द ने अपने आप को जान लिया, हृदय की ग्रन्थियां खुल चुकी थीं, मन निर्मल, बुद्धि प्रकाशित हो चुकी थी, हर प्रकार के योग की लगभग सारी क्रियाओं को महाराज भली भांति क्रियात्मक रूप से जान चुके थे। परन्तु पूर्ण योगी बन कर भी आपने अपने आप को छिपाये रखा, क्यों कि वह सिद्धियों में पड़कर अपनी शक्ति का ह्रास करना नहीं चाहते थे,—एक बार समाचार पत्र पायोनियर के अंग्रेज सम्पादक मि० सिनट ने महर्षि से योग के चमत्कार दिखाने के सम्बन्ध में बात की थी, उसी का वर्णन करते हुए योगी दयानन्द ने एक करनल अलकाट तथा मैडम बलेविस्टकी को १४ जुलाई सन् १८८० में लिखा था, जिसके यह शब्द

ध्यान देने योग्य हैं :—

"जो मैंने सिनट साहब से कहा था वह ठीक है। क्योंकि मैं इन तमाशे की बातों का देखना दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वह हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों। क्योंकि योग के किए कराये बिना किसी को भी योग का महत्त्व वा इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन् सन्देह और आश्चर्य में पड़कर उसी तमाशा दिखलाने वाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं, और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सिनट साहब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूं, चाहे वह राजी रहें चाहे नाराज हों क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊं तो सब मूर्ख और पण्डित मुझसे यही कहेंगे कि हम को भी कुछ योग के आश्चर्य काम दिखलाइये, जैसा उसको आपने दिखलाया, ऐसे संसार की तमाशे की लीला मेरे साथ भी लग जाती जैसी मैडम एच० पी० ब्लेविस्टकी के पीछे लगी है। अब इनकी जो विद्या धर्मात्मता की बातें हैं कि जिनसे मनुष्यों के आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं उनका पूछना और ग्रहण करने से दूर रहते हैं। किन्तु जो कोई आता है मैडम साहब आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्त नहीं करता न कराता हूँ। **किन्तु कोई चाहे तो उसको योग रीति सिखला सकता हूं कि जिससे वह स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों को देख ले।**"

एक और पत्र में जो मैडम ब्लेविस्टकी को महाराज ने लिखा। योगी दयानन्द लिखते हैं:—

"आत्मा मनुष्य शरीर में अद्भुत कार्य कर सकती है, संसार में (ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त) सभी पदार्थों के स्वरूप और गुणों को जान कर **मनुष्य अत्यन्त दूर के पदार्थों के दर्शन श्रवण आदि की शक्ति प्राप्त कर सकता है।**

इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि परम योगी दयानन्द को योग सिद्धियों का निजी अनुभव हो चुका था। महाराज के जीवन चरित्र से भी ऐसा ही ज्ञात होता है :—

"एक दिन आगरा निवासी श्री ब्रह्मानन्द जी ने पं० ज्वालादत्त जी से पूछा—क्या आप कोई वर्तमान समय में आत्मज्ञानी जन भी बतला सकते हैं। श्री ज्वालादत्त जी ने उत्तर दिया—इस समय सबसे बड़े आत्मदर्शी तथा योगी ऋषि दयानन्द जी महाराज हैं। उनको हमने अनेक बार अचल ध्यानावस्था में लीन देखा है। उनको योग की सब सिद्धियां प्राप्त हैं। हमें वेद भाष्य लिखाते समय जब भी कोई कठिन विषय उपस्थित हो जाता है तो वे कई बार उठ कर एकान्त कोठरी में चले जाया करते हैं और कोठरी बन्द करके देर तक अन्तर्ध्यान होकर बैठे रहते हैं, और फिर बाहर आकर पूर्व लिखे मन्त्रार्थ में से कई वाक्य और पंक्तियां कटवा कर और उनके स्थान पर नवीन वाक्यों की योजना लिखा देते हैं। उनका अन्तःकरण इतना विमल और विशुद्ध है कि सातवीं कोठरीमें भी कीगई वार्ता का आभास उनके अन्तःकरण में पड़ जाता है। उन्होंने कई बार हमारे मनोगत प्रछन्न मनोरथों को हमारे सम्मुख वर्णन किया है। वे हमें उपदेश दिया करते हैं कि—जब मनुष्य के हृदय की सब ग्रन्थियां खुल जाती हैं तो उसे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तिलों में तेल की भांति आत्मा में ही परमात्म देव रमे हुए हैं। अतः आत्म-साक्षात्कार होते ही प्रभु के भी उस समय दर्शन हो जाते हैं।"

"एक नवाब ने महाराज से पूछा—क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे यहां बैठा मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले—महाराज ने उत्तर में कहा—

# लौंगें—(लवङ्गें)

[ रचयिता—श्री रविदत्त गौतम, व्याकरण शास्त्री, साहित्याचार्य ]

( महामानव देव दयानन्द की स्वर्लोक से आई अनोखी लवङ्गें )

( १ )

जन-मानस को जब अन्ध-निशा भ्रम के तम में भटकाए हुए।
अति घोर भयंकर तम-पथ पर अविराम लिए भरमाती रही ॥
जब स्नेह की शीतलता से भरे ध्रुव धर्म सुकर्म महीतल के।
उन मानवता के ग्रहों को सदा भ्रम-राहु से ही ग्रसवाती रही ॥
जब अन्धी बनी सब मानवता ध्रुव धर्म से भी पथभ्रष्ट हुई।
महा पाप व तामस के तम में दुःख दैत्य की ठोकर खाती रही ॥
नव जीवन आशा की रेखा सी वे सद्ज्ञान की भानु-विभा से भरी।
महामानव देव-दयानन्द की किस लोक से आई अनोखी लवङ्गें ॥

( २ )

उस श्वेत शरीर में कृष्ण हृदय छलछद्म भरे महादानव के।
अति क्रूर कुशासन के भय से जनता जड़ हो मृत सो सी रही ॥
तब लेके सन्देश सुनहरी नया, नव जीवन जागृति बेला लिए।
महामानव देव दयानन्द की किस लोक से आई अनोखी लवङ्गें ?

---

योगी लोग इच्छा नहीं करते। सब से गुप्त विद्या ब्रह्म विद्या है, योगी को उसी को जानने का उद्देश्य है, अतः यदि योगी चाहे तो योग विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।"

"महर्षि मथुरा से आगरा पधारे तो बाबू सुन्दर लाल के बाग़ में ठहरे। वहां ही योगाभ्यास हुआ करता था। देखने वालों ने बतलाया कि १८—१८ घण्टे समाधि में बैठे रहते।" इसी प्रकार की अनेक घटनायें योगी दयानन्द के जीवन चरित्र में मिलती हैं। और वेद भाष्य में भी कतिपय मंत्रों का भाष्य करते हुए देव दयानन्द ने योग सिद्धियों का वर्णन किया, विस्तार भय से वह स्थल यहां नहीं दिये जा रहे, स्वाध्याय शील महानुभाव स्वयम् वेद भाष्य पढ़ कर लाभ उठायें। परम योगी दयानन्द का यह दृढ़ विश्वास था कि योगाभ्यास के बिना कोई मानव पूर्ण विद्वान् नहीं हो सकता। महाराज यजुर्वेद ७-२८ का भाष्य करते लिखते हैं! "बिना योग विद्या के कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न ही पूर्ण विद्या के बिना अपने स्वरूप तथा परमात्मा का ज्ञान कभी हो सकता है, और न ही इस के बिना कोई न्यायाधीश (जज इत्यादि) सत्य पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है। इस लिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का सेवन निरन्तर किया करें।"

वह शुभ घड़ी कब आयेगी जब आर्य समाज देव दयानन्द के इस आदेश को पूरा करने के लिये कोई पग उठायगा।

( ३ )

जब धर्म, समाज व शासन की सब नीति विपन्न थी भारत की।
जब दम्भ व द्वेष, पराश्रितता से सुभारत मां अति आरत थी।।
तब सत्य के अर्थ-प्रकाश के चन्द्र की शान्त कलाएं समाए हुए।
महामानव देव दयानन्द की स्वर्लोक से आई अनोखी लवङ्गें।।

( ४ )

जन जीवन नीरसता से भरा मधु छोड़ के ज्यों विष पीता रहा।
उस जीवन हीन से जीवन में बिन ज्योति ही नाम को जीता रहा।।
मृत जीवन में अति दीव्य अमोघ रसायन सिद्ध सुधा सी लिए।
महामानव देव दयानन्द की किस लोक से आई अनोखी लवङ्गें ?

( ५ )

जब द्वेष की दुर्दम ज्वाला महा मन-पुष्प को थी झुलसाए हुए।
जब मानव देव का रूप भुला, पशु था, अति कुत्सित भाव लिए।।
उस ज्वाल पै शीत प्रलेप बनी, मृदु दैवी समृद्धि दया से भरी।
महा मानव देव दयानन्द की किस लोक से आई अनोखी लवङ्गें ?

( ६ )

कलि-सिन्धु की क्रूर कुलहर से कुत्सित कर्म का क्षुब्ध जो ज्वार उठा।
इस पावन ज्ञान की प्राङ्गण भारत भू पै महा अन्धकार डटा।।
जब धर्म के देव को पाप-पिशाच महातम में नित खाते रहे।
वनिता, विधवा, शिशु हो के अनाथ जो क्रन्दन करुण मचाते रहे।।
चहुं ओर था सागर घोर, थी नौ मंजधार, व नाविक निद्रित थे।
प्रलयानिल की बस एक थपेड़, था नाश महा, सब केन्द्रित थे।।
तब शक्ति भरी करुणा प्रभु की "रवि" तेज की ज्वाल प्रचण्ड लिए।
महा मानव देव दयानन्द की स्वर्लोक से आई अनोखी लवङ्गें।।

( ७ )

जब दीव्य गुरु, जब दीव्य यजन, जब कारज दीव्य महा प्रभु का।
ध्रुव धर्म की दीव्य ध्वजा लहरे, महा नाश करे जग के अघ का।।
ब्रह्मचारी महाव्रतधारी दयानन्द लाए महा फल नन्दन का।
महा प्राण की शक्ति समाए हुए सब सार समृद्ध सुजीवन का।।
नर रूप धरे प्रभु का सुत जो तब कौन नहीं यह कह सकता।
महा तेज की ज्योति जगाने मनो चली परम पिता की महा क्षमता।
सब देवों की दीव्य विभा को समेट, ले जीवन भेंट चली जग को।
महा मानव देव दयानन्द की स्वर्लोक से आई अनोखी लवङ्गें।

# —: दयानन्द का महत्त्व :—

## "शिक्षक, समीक्षक और चिकित्सक"

[ ले०—श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, प्रधान सार्वदेशिक सभा ]

महर्षि के महत्व को समझने के लिये हम महर्षि को तीन रूपों में अपने सन्मुख रख सकते हैं। शिक्षक, समीक्षक, और चिकित्सक। शिक्षा की दृष्टि से महर्षि का एक निराला स्थान है। अज्ञान के निराकरण के लिये ऋषि दयानन्द ने वेदों को अपना आधार बनाया है। वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, इस का प्रचार किया और यह कहकर कि सत्य विद्या का आदि मूल परमेश्वर है और वेद सत्य विद्या की पुस्तक है, वेदों को ईश्वर प्रदत्त सिद्ध किया। सब से प्राचीन ज्ञान का श्रोत संसार में वेद है।

ऋषि ने सत्य ज्ञान के प्रचार और विस्तार का आरम्भ इस शताब्दी में सब से पूर्व वेदों से किया। महर्षि के समय में वेदों की मान्यता थी परन्तु न वेदों का ज्ञान था और न उन के स्वरुप का अनुभव था। वेदों के आधार पर ही महर्षि ने सारी शिक्षा की पद्धति का निर्माण किया इस का प्रयत्न किया कि वेदों के विरुद्ध या विपरीत जो विचार प्रचलित है उन को न माना जाये। न केवल वेद प्रचार परन्तु बालक और बालिकाओं के लिये सम्पूर्ण शिक्षा की योजना अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में भी निर्धारित की।

महर्षि ने शिक्षा को माता के गर्भ से आरम्भ होना आवश्यक बताया। शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो इस पर बल दिया और राष्ट्र के हित के लिये शिक्षा का निशुल्क और अनिवार्य होना आवश्यक बताया, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा को आवश्यक अंग सिद्ध किया। महर्षि की शिक्षा की विधि सर्वांग पूर्ण है। वर्तमान समय में देश में शिक्षा के सम्बन्ध में जो सफलता है वह सब महर्षि के प्रतिपादित कुछ ही सिद्धान्तों के अपना सकने का परिणाम है।

महर्षि ने बालक और बालिकाओं की पृथक् पृथक् शिक्षा होने पर बहुत बल दिया है। आज सह-शिक्षा का प्रचार है और जिस अंश में शिक्षा के जगत में स्वामी दयानन्द के आदेश की अवहेलना हो रही है उसी अंश तक देश रसातल को जा रहा है। यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि वेदों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों को उसी दशा में प्रमाण माना गया है जहां तक वह वेदों के अनुकूल है। भेद होने पर वह मान्य नहीं। आज ज्ञान का बहुत विस्तार है। विज्ञान का बोलबाला है परन्तु ज्ञान का असली उद्देश्य ईश्वर के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के स्थान में केवल प्रकृति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है और उस का ही प्रचार है और जितना प्रकृति के सम्बन्ध में प्रचार है उतना ही मनुष्य प्राकृतिक जगत् के बन्धन में फंसता जा रहा है। ज्ञान के साथ साथ दूसरे शब्दों में अधूरे ज्ञान के कारण मनुष्यों का दुःख बढ़ता जा रहा है। यदि ऋषि के वास्तविक रूप से शिक्षक के रूप में जगत् के सन्मुख रहें तो आज जो अनुशासन-हीनता का दृश्य दिखाई दे रहा है दूर हो जायेगा।

समीक्षा के रूप में भी महर्षि दयानन्द आदर्श हैं। जब ज्ञान का विस्तार करना है तो अज्ञान का निराकरण आवश्यक है। जिसे खण्डन समझा जाता है वह खण्डन नहीं समीक्षा है। मण्डन का आरम्भिक और मौलिक रूप है। ऋषि ने केवल दूसरों के सिद्धान्तों की ही समीक्षा नहीं की है परन्तु अपने प्रतिपादित सिद्धान्तों के सम्बन्ध में समीक्षा की भावना को उत्तेजित करने के लिये सत्यार्थप्रकाश को प्रश्न और उत्तर के रूप में लिखा। शिक्षा का जितना सम्बन्ध प्राचीनता से है उतना ही तर्क से है। प्राचीनता के दृष्टिकोण से उस का सम्बन्ध वेदों से है और तर्क के दृष्टिकोण से सब मत मतान्तर भ्रम मूलक विचारों के निराकरण से है। यदि महर्षि दयानन्द समीक्षक न होते तो उन का शिक्षा का कार्य पूरा न होता। ऊपर से सब की पुष्टि करना और उन की भ्रममूलक बातों को प्रकट न करना प्रेम और सहनशीलता का द्योतक नहीं है। परन्तु अज्ञान की वृद्धि का साधन है। जो शिक्षक अपने विद्यार्थी की अशुद्धि नहीं पकड़ता और उस को ठीक नहीं करता वह सफल अध्यापक नहीं। इस प्रकार हर जीवन के क्षेत्र में भूल और अशुद्धि का निराकरण अनिवार्य है।

शिक्षा और समीक्षा दोनों आवश्यक होते हुए भी क्रियात्मिक दृष्टि से चिकित्सा की भी आवश्यकता शेष रह जाती है। शिक्षा और समीक्षा दोनों का सम्बन्ध विचार के जगत् से है। आचार और व्यवहार के लिये चिकित्सा की भी आवश्यकता है। व्यक्तियों का जीवन, समाज का जीवन, और राष्ट्र का जीवन सब महर्षि के आगमन के समय त्रुटिपूर्ण और रोग ग्रस्त थे। व्यक्तियों के रोग के निराकरण के लिये और व्यक्तियों के निर्माण के लिये महर्षि ने शिक्षा, संस्कार, यज्ञ और योग पर बल दिया। शिक्षा से ज्ञान ठीक होता है, संस्कारों से चरित्र निर्माण होता है। योग से आस्तिकता आती है और यज्ञ से त्याग की शिक्षा मिलती है। जिस प्रकार व्यक्ति का निर्माण पूर्ण रूप से उपर्युक्त विधि से हो सकता है और उस के सब रोगों का उपचार हो जाता है, इसी प्रकार सामाजिक रोगों का उपचार वर्ण और आश्रम की मर्यादा के प्रचार से होता है।

चार वर्ण और चार आश्रमों में समाज की एक सुन्दर व्यवस्था का समावेश है। असली उपचार अर्थ और काम की वासना का मर्यादित करना है। ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्थ और काम की वासना को मर्यादित करने का विधान है।

ग्रहस्थ आश्रम में अर्थ और काम की वासना के मर्यादित हो जाने से मनुष्य विवाह और व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश करता हुआ, दुराचार और बेईमानी से बचा रहता है। इसी प्रकार संन्यास आश्रम में प्रवेश से पूर्व वानप्रस्थ, तप और त्याग के जीवन बिताने के लिये एक विशेष अभ्यास की विधि है। और इस विधि के अनुसार यह प्रथा बनी रहती है कि व्यक्तियों का निर्माण होता रहता है और जिन व्यक्तियों का जीवन मर्यादित होता है उन के समुदाय का समाज भी मर्यादित रहता है और ऐसे समाज में सम्पर्क और संघर्ष दोनों मर्यादित रहते हैं। समाज सुधारक कहें या सामाजिक रोगों के चिकित्सक। महर्षि का सारा प्रचार नैतिक और सामाजिक स्वास्थ्य की व्यवस्था के लिये ही था। महर्षि बाल ब्रह्मचारी थे, न उन का विवाह से कोई सरोकार और न ग्रहस्थ आश्रम से, फिर भी सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में काम वासना की मर्यादा पर पूरा बल दिया और व्यवहार के जगत् के सुधार के लिये व्यवहार भानु नाम की पुस्तक लिखकर जो व्यवहार और व्यवसायों में अर्थ के नाम पर अनर्थ हो रहा है उस के निराकरण के लिये बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। सारा प्रचार महर्षि का एक आदर्श चिकित्सक के रूप में है और महर्षि आदर्श शिक्षक, आदर्श समीक्षक और आदर्श चिकित्सक थे। उन का अनुकरण हमें करना चाहिये।

दीक्षा शताब्दि का यही अनुपम सन्देश है जो हमें सुनकर, समझ कर हमें अपने जीवन का आधार बनाना चाहिये।

❀

गुरु विरजानन्द का प्रसाद—

# आर्ष सम्पदा

[ रचयिता—विद्याभास्कर श्री रमेशचन्द्र शास्त्री ]

( १ )

गुरु ने गुरु ज्ञान - लालसी,
यति को जान कहा तभी मुदा।
प्रिय ! त्याग अनार्ष-ज्ञान को,
तुम ले लो अब आर्ष सम्पदा॥

( २ )

लघु - शेखर - आदि ग्रन्थ हैं,
मनुजों से जितने लिखे गये।
भ्रम से सब वे सु-पूर्ण हैं,
उन में जाल बिछे नये नये॥

( ३ )

उन से गुरु ग्रन्थियां सभी,
उलझी हैं, सुलझी न एक भी।
पढ़ता उनको सदैव जो,
उसने जीवन खो दिया सभी॥

( ४ )

इस मानव ग्रन्थ जाल ने,
सब मेटी वर-आर्ष-प्रक्रिया।
इसमें जन जो फंस रहा,
कुछ भी तो उसने नहीं किया॥

( ५ )

यदि है इस जन्म में तुम्हें,
महती ही गुरु-ज्ञान-एषणा।
ऋषि-निर्मित-ग्रन्थ-तत्त्व की,
तब तो नित्य करो गवेषणा॥

( ६ )

तुम को यदि लेश मात्र भी,
अब कोई नर ग्रन्थ याद है।
उसको मन से निकाल दो,
बस मेरा यही प्रसाद है॥

# वेदों का पुनरुद्धार

[ लेखक—दीक्षा शताब्दी पर अभिनन्द्यमान माननीय श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए०, रिटायर्ड चीफ जज, जयपुर]

वेदों का प्रामाणिक, प्रचार, प्रसार, संस्करण, सर्वोपलब्धि जो भी कुछ आज देश में विदेश में उपलब्ध है इन सबके मूल में ऋषि का परिश्रम ही है।

सम्पादक—राजेन्द्र

दयानन्द दीक्षा का बड़ा महत्व है। दीक्षा देते समय गुरुवर विरजानन्द जी ने किन शब्दों का प्रयोग किया था। वे ऋषि दयानन्द के स्वरचित जन्म चरित्र में नहीं मिले। पर यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि जब स्वामी दयानन्द एक सेर लवंग लेकर गये तो गुरुवर दण्डी जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा था। "मैं तुम्हारे जीवन की दीक्षा चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो कि जब तक जीवित रहोगे तुम आर्ष ग्रन्थों का प्रचार करोगे और अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे। ऋषि दयानन्द ने तथास्तु कह कर शिर झुका दिया। स्वरचित जन्म चरित्र में ऋषि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द जी के विचारों के सम्बन्ध में ये लिखा है—"उनकी आधुनिक कौमुदी शेखर आदि ग्रन्थों पर बड़ी अश्रद्धा थी। भागवत आदि पुराणों का बहुत ही तिरस्कार करते थे। समस्त आर्ष ग्रन्थों पर उनकी अत्यन्त भक्ति थी।"

ऋषि मयानन्द ने अपने गुरु से यह दीक्षा प्राप्त की कि पौराणिक मत का खण्डन करके वे शुद्ध प्राचीन वैदिक धर्म का प्रचार करें।

(२) ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में जो सबसे बड़ा कार्य्य किया वह वेदों का पुनरुद्धार था। वेदों को लोग बिल्कुल भूल गये थे। वेद समस्त हिन्दू धर्मों के मूल माने जाते हैं। पर ऋषि दयानन्द से पहिले हिन्दू नामधारी साधारण लोग वेदों के नाम तक नहीं जानते थे। वेदों का दर्शन तक दुर्लभ था। वे भारत में छपते नहीं थे। स्वयं ऋषि दयानन्द ने भाष्य करने के लिये मूल ऋग्वेद इंगलेण्ड से मंगाया था। गिने चुने शिक्षित ब्राह्मणों के घरों में वेदों के पुस्तक रहते थे, और पर्वादि अवसरों पर निकाले जाते थे। उनका अध्यापन नहीं करते थे। दक्षिण के वेदपाठी प्रसिद्ध थे। पर वे केवल पाठ मात्र करना जानते थे। अर्थों को नहीं! अर्थों के विषय में यह कहा जाता था कि कलियुग में वेदों के अर्थ कोई नहीं समझ सकता, जब ऋषि दयानन्द शास्त्रार्थ करने के

विचार से काशी गये तो वहां के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द व श्री बाल शास्त्री जी ने महाराजा साहब बनारस से कह दिया के वे वेदों के आधार पर शास्त्रार्थ नहीं कर सकेंगे क्योंकि वेदों का अध्ययन होता ही नहीं। महाराजा साहब ने कहा कि "दयानन्द तो केवल वेदों ही का प्रमाण मानता है।" दोनों विद्वानों ने समय मांगा। महाराजा साहब ने १५ दिन का समय दिया। पर १५ दिन में क्या हो सकता था, शास्त्रार्थ हुआ जो एक इतिहास की बात हो गई। आर्यसमाज के इतिहास में लिखा गया। अन्य लोगों ने भी लिखा और छपवाया शास्त्रार्थ में ऋषि दयानंद की विजय हुई।

(३) सम्वत् १९२९ में ऋषि दयानन्द ने **पूना** में एक प्रसिद्ध व्याख्यान दिया। जिसका उल्लेख स्वरचित जीवनी में भी इस प्रकार किया गया है।

"गत वर्ष भाद्रपद में मैं काशी में था। आज तक चार बार काशी गया हूं। जब जब काशी जाता हूँ तब किसी को वेदों में मूर्त्ति पूजन मिला हो तो लावे," ऐसा विज्ञापन देता हूँ। परन्तु अबतक कोई बचन नहीं निकला।"

काशी प्राचीन समय से भारतवर्ष में वेदों, शास्त्रों व संस्कृत शिक्षा का मुख्य गुरू माना जाता है। वहाँ भी ऋषि को कोई वेदों का ज्ञाता नहीं मिला। इसका जो प्रभाव होना था सो हुआ। ऋषि दयानन्द के वेद ज्ञान की धाक भारत भर में जम गई। अन्य स्थानों पर भी ऋषि के बहुत शास्त्रार्थ हुए। पर ऋषि की सदा विजय ही होती रही।

(४) पौराणिक लोगों ने शूद्रों के लिए वेद बिलकुल वर्जित कर रक्खे थे। उनकी व्यवस्था थी कि यदि कोई शूद्र वेद का उच्चारण करे तो उसकी जिह्वा काट ली जाय, यदि सुने तो कानों में तपा हुआ सीसा या लाख डाल दिया जाय। पौराणिकों ने कुम्हार, लुहार, सुनार, धोबी, बढ़ई आदि सब शिल्पकारों (जिनकी गणना वैश्यों में होनी चाहिये थी) शूद्र बना दिया था। इस प्रकार द्विजों की संख्या से शूद्रों की संख्या बहुत अधिक थी। वैश्य और क्षत्रियों को भी वेदों का नाम मात्र का अधिकार था। ऋषि दयानन्द ने **यजुर्वेद** के नीचे लिखे मन्त्र का प्रमाण दिया।

**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय ॥ य० २६ । २ ॥**

(अर्थ) बंगाल के सुप्रसिद्ध वेद विद्वान् श्री सत्यव्रत सामश्रमी ने इस मन्त्र का उल्लेख ऋषि के ग्रन्थों में ऋषि का नाम लेकर किया है।

(५) ऋषि दयानन्द के प्रचार के बाद वेदों को सनातनी लोग भी छापने या छपवाने लगे। अब हर कोई मनुष्य अल्प मूल्य में चारों वेदों के पुस्तक ले सकता है। आर्य समाज के गुरुकुलों पाठशालाओं में व अन्य स्कूल आदि में भी विद्यार्थी वेदों को पढ़ते हैं। पुस्तकादि में सनातनी पंडित भी वेद मन्त्रों के प्रमाण देते हैं। **श्री पं० दामोदर सातवलेकर** जी ने अपने **स्वाध्याय मंडल** द्वारा वेदों के कई प्रकार के संस्करण तथा **ऋषि व देवता**

# *:— महर्षि दयानन्द सरस्वती —:*

[लेखक—श्री प्राध्यापक भीमसेन शास्त्री, विद्याभूषण एम०ए०एम०ओ०एल०]

### टंकारा

सौराष्ट्र (काठियावाड़) में टंकारा एक समृद्ध नगर था। उसकी जनसंख्या ७-८ सहस्र के लगभग थी। बहुत अच्छा साहूकारा था। टंकारा मौरवी राज्य में था। पर कुछ ऋण निर्यातन सम्बन्ध से सं० १८६६ में मोरवी के ठाकुर साहब जिया जी बाघजी ने टंकारा तालुका सेठ सुन्दर जी शिवजी को सौंप दिया था। इन सेठ ने सं० १८६८ में टंकारा गोपाल मेडेल नारायण भाऊ को दे दिया था।

### पिता श्री कर्षणजी

सं० १८६९ में भाऊ की ओर से टंकारा के मुख्य अधिकारी नागर निर्भयशंकर थे और कर्षन जी लाल तिवारी उनके आधीन थे। नागरजी सं० १८६९ में मियाणों से लड़ते हुए स्वर्ग वासी हुये।

---

के अनुसार संग्रह अर्थ सहित प्रकाशित करके वेदों के **अनुसंधान** के लिये भी मार्ग सुगम कर दिया है। वेदों के अध्ययन मनन, आदि में कितना बड़ा परिवर्तन हो गया है, इस सब का श्रेय ऋषि दयानन्द को है।

(६) दीक्षा के विषय में ऋषि दयानन्द ने पूनाके उस व्याख्यान में जिसका कुछ उद्धरण ऊपर दिया गया, इस प्रकार कहा—

"आर्य धर्म की उन्नति हो इस लिये मेरे सदृश बहुत से धर्मोपदेशक अपने इस देश में उत्पन्न होने चाहिये। एक व्यक्ति द्वारा यह कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता, फिर भी अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल **जो दीक्षा मैंने ली है, उसे चलाऊंगा।** ऐसा संकल्प किया हुआ है। आर्य समाज की सर्वत्र स्थापना होकर मूर्ति पूजा आदि दुष्ट आचार कहीं न हो, वेद शास्त्र का सत्यार्थ प्रकाशित हो और उसके अनुकूल आचरण होकर देश की उन्नति हो, ऐसी ही ईश्वर से प्रार्थना है। तुम्हारी सबकी सहायता से अन्तःकरण पूर्वक मेरी यह प्रार्थना सिद्ध होगी, ऐसी पूर्ण आशा है। और मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है जहां तक बन सकेगा **आमरण तक** करूंगा पुनर्जन्मान्तर में भी।"

(७) गुरुवर दण्डी विरजानन्द जी से ऋषि दयानन्द जी ने **दीक्षा** प्राप्त की थी उसको १०० वर्ष व्यतीत हो रहे हैं मथुरा में उत्तरप्रदेश सभा के उद्योग और सार्वदेशिक सभा के सहयोग से उस **दीक्षा की शत को** इसी दिसम्बर मास के अन्त में मनाई जा रही है। आर्य्यों को चाहिये उस अवसर पर उपस्थित होकर दीक्षा कार्य में भाग लेवें और अपने लिये दीक्षा प्राप्त करें।

❀

सं० १८८१ से पूर्व से श्री कर्षन जी टंकारा के जमेदार (वैभटदार) थे। वे राजस्व उघाते थे और सब प्रकार शासन व्यवस्था, अभियोगों का निर्णय आदि भी करते थे। उनकी अपनी पैतृक जमींदारी भी पर्याप्त थी और लेन-देन का कार्य भी उच्च स्तर पर करते थे। वे एक-एक बार में १०-१० सहस्र मुद्रा ऋण दिया करते थे। वे पूर्ण निष्ठावान शैव थे।

### माता श्री यशोदा बाई

इस परम धार्मिक वैभवशाली घर में पुनीत पतिव्रता रमणी माता श्री यशोदा बाई की कुक्षि से।

### जन्मतिथि

**सं० १८८१ फाल्गुन वदि १० शनिवार (१२-२-१८२५)**

को मूल नक्षत्र में एक भव्य आत्मा मूलशंकर का जन्म हुआ। उनके नाम व जन्म नक्षत्र के विषय में उनके सुशिष्य महावैयाकरण पं० ज्वालादत्त जी ने यह ललित मन्दाक्रान्ता लिखी थी—

**क्षोणी माहीन्दुभिरयुते वैक्रमे वत्सरे यः**
**प्रादुर्भूते द्विज-वर कुले दक्षिणे देशवर्ये।**
**मूलेनासौ जनन-विषये शंकरेणापरेण,**
**ख्याति प्रापत् प्रथम वयसि प्रीतिदां सज्जनानाम् ।।***

अर्थात (स्वामी दयानन्द सरस्वती) उत्तम देश दक्षिण में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में सं० १८८१ में प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने जन्म कालिक नक्षत्र के कारण बाल्यावस्था में "मूल-शंकर" नाम पाया जो सत्पुरुषों को अतीव हर्ष प्रद है।

शिवभक्त कर्षन जी ने हर्षित हो, टंकारा के बाहर कुबेर नाथ का मन्दिर बनवाया।

पांचवे वर्ष (सं० १८८६) बसन्त में बालक मूलशंकर का विद्यारम्भ हुआ और देवनागर अक्षरों का अभ्यास कराया गया। अनेक धर्मशास्त्र के श्लोक व सूत्रादि कण्ठस्थ कराए जाने लगे।

आठवें वर्ष (सं० १८८९) बसन्त में उपनयन होकर गायत्री संध्या आदि सिखाई गई। शैव पिताने हस्तस्वर सहित यजुर्वेद पहले पढ़वाया।

कर्षन जी ने दशम वर्ष (सं० १८९०) से मूलशंकर से पार्थिव पूजन प्रारम्भ करा दिया था।

चौदहवें वर्ष के प्रारम्भ में (१८९४) में शिवरात्रि आई (गुरुवार-२२-२-१८३८)। वे इस समय तक यजुर्वेद संहिता पूर्ण कर चुके थे। सामवेद तथा अन्य वेदों के भी कर्मकाण्डों-पयोगी भाग पढ़ चुके थे। कुछ व्याकरण का भी अध्ययन हो चुका था। इस बार उन्होंने शिवरात्रि का व्रत रखा व जागरण किया। यह

---

* श्रीयुत स्वामी दयानन्द की कुछ दिनचर्या "भारत सुदशा प्रवर्तक में छपी थी। इस पत्र का नामकरण महर्षि की सम्मति से हुआ था। इस पत्र से उद्धृत कर यह पुस्तिका प्रथम बार न जाने किस वर्ष में छपी थी। इस मासिक पत्र के सम्पादक थे श्री पं० गणेशप्रसाद। द्वितीय बार यह १८८७ में फतहगढ़ में छपी थी। इस 'दिनचर्या' के अन्त में यह श्लोक है।

जागरण पितृ-निर्मित कुबेरनाथ के मन्दिर में हुआ। अर्धरात्रि तक सब लोग सोगए थे केवल मूलशंकर जाग रहे थे। चूहों को शिवपण्डी पर यथेच्छ दौड़ते देख विवेकी बालक मूल जी की मूर्तिपूजा पर से आस्था सदा को जाती रही। पितृदेव को जगाकर पूछा। उनके उत्तर से समाधान न हुआ। पिता जी की आज्ञा लेकर घर आगये और भूख मिटाकर सो गए। अब माता और चाचा के समझाने से पिता जी ने पार्थिव पूजन से छुट्टी देदी और मूलशंकर ने निघण्टु-निरुक्त-मीमांसादि शास्त्र व कर्म काण्ड पढ़े।

मूल शंकर ने सोलहवां वर्ष पूर्ण कर (सं० १८९८ ग्रीष्म में) अपनी चतुर्दश वर्षीया भगिनी की मृत्यु देखी। इस प्रथम मृत्यु दर्शन ने उनके मन में तीव्र वैराग्य उद्भूत कर दिया। तीन वर्ष पश्चात् (सं० १९०१ ग्रीष्म में) वात्सल्य पूर्ण चाचा की मृत्यु ने इनके वैराग्य को चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

मूलशंकर ने पितृगृह पर अश्वारोहण का उत्तम अभ्यास किया था। अपने पितृदेव के घोड़े को जल पिलाने डेमी नदी पर वे स्वयं जाते थे। वे शस्त्रास्त्र विद्या में भी प्रवीण हो गए थे। एक बार उनकी भूमि पर पड़ौसियों ने अधिकार कर लिया, पिता जी से वृतान्त सुन वे अकेले ही तलवार लेकर खेत पर पहुँच गए। पड़ौसी खेत वाले भयभीत हो भाग गऐ।

मूलशंकर के वैराग्य को देखकर पिता ने जमींदारी के काम में लगाना चाहा पर इन्होंने स्वीकार न किया। इनके पिता आदि बीसवें वर्ष में विवाह करने को कटिबद्ध हो गए तो मूल जी ने बड़े प्रयत्न से एक वर्ष के लिए विवाह को टलवाया।

ब्रह्मचारी मूल शंकर ने वि[illegible] काशी जाना चाहा पर आज्ञा न मि[illegible] वाँ वर्ष पूर्ण हो गया। टन्कारा से [illegible] पर पिता जी की वैभटदारी के एक [illegible] एक समर्थ पण्डित थे। पिताजी से आज्ञा ले[illegible] वहां जाकर पढ़ने लगे। पूरा एक वर्ष भी [illegible] पढ़ पाए थे कि घर पर बुला लिए गए। घर आने पर इक्कीसवां वर्ष पूर्ण हो गया। (सं० १९०२ फलगुन वदी १०)। एक मास में विवाह की तैयारी हो गई। विवाह-तिथि संनिकट जान, विवाह से छुट्टी पाने को, एक सायं घर से भाग गये। (सं० १९०३)। इस समय तक सं० १९०३ का एक पूरा सप्ताह भी सम्भवतः न बीता था।

तपस्वी मूलशंकर घर से भागने पर योगियों को खोजते लगभग एक मास में सायला पहुँचे। वहां कुछ समय योगाभ्यास करते रहे। यहां नैष्ठिक ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य वन गये। वहां से अनेक स्थानों पर घूमते कोठगोंगड़ गए। वहां चातुर्मास्य करके कार्तिक पूर्णिमा के मेले पर सिद्धपुर गये। एक परिचित वैरागी से समाचार पाकर उनके पिता जी ने कुछ सिपाहियों के साथ आकर उन्हें पकड़ लिया। पर चौथी रात ये पुनः भाग निकले।

मुमुक्षु शुद्ध चैतन्य अनेक स्थानों पर वि. चरते हुये सं० १९०४ के आरम्भ में नर्मदा तट पर चाणोद कर्णाली पहुँचे। इस प्रदेश में पर्याप्त समय रहकर अध्ययन व योगाभ्यास करते रहे। व्याकरण, वेद, दर्शन योगग्रन्थ यहां खूब पढ़े और योगाभ्यास परायण रहे। सं० १९०५ आषाढ़ शुक्ल में यहां स्वामी पर-

[illegible]। दयानन्द करते हुए, यहाँ उन्होंने [illegible], वेदान्त [illegible]करण व [illegible]लोचना [illegible] में [illegible] के

सं० १ टंकारा के राजस्व उ व्यवस्था थे । थी

...ती से संन्यास दीक्षा ली और ...स्वती नाम पाया । इन संन्यास ...ोद में चातुर्मास्य किया था । इस दयानन्द उनके साथ रहकर पढ़ते व करते रहे । उनके प्रस्थान से पूर्व उनसे ...श प्राप्त कर दण्ड विसर्जन कर दिया ।

चाणोद में मुमुक्षुवर्य दयानन्द को दो उत्कृष्ट योगी ज्वालानकपुरी व शिवानन्द गिरि मिले (सं० १९१० का प्रारम्भ) । वे इनको अधिकारी समझ अहमदाबाद बुला गए । दयानन्द आदेशानुसार एक मास पश्चात् वहां पहुँचे । उन्होंने इन्हें योग क्रियाओं को उत्तम शिक्षा दी ।

सं० १९११ में दयानन्द आबू पर्वत पर गए । वहां और भी ऊंचे योगतत्त्व प्राप्त हुए । यहां से वे जयपुर, अलवर, देहली मार्ग से हरिद्वार के कुम्भ पर चल पड़े । सं० १९११ के अन्त में वहां पहुँचे । १ मास वहां रहे । यहां से पर्वत यात्रा पर चले (सं० १९१२) । इस वर्ष का चातुर्मास्य शिवपुरी में किया । तदनन्तर केदारनाथ की यात्रा की । योगियों की खोज मुख्य लक्ष्य था । बदरीनाथ जाते हुए ओखीमठ के समृद्ध महन्त ने अपनी लाखों की सम्पत्ति का प्रलोभन देते हुए चेला बनाना चाहा । निस्पृह दयानन्द वहां से चल दिए । ज्योतिर्मठ में कुछ दिन (सं० १९१२ मार्गशीर्ष शुक्ल) में रहे । वहां के शंकराचार्य हरिद्वार के स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य थे । उन्होंने स्वामी पूर्णानन्द से पढ़ने की सलाह दी । वहां से बदरीनाथ गए । यहां कुछ समय गायत्री का जपानुष्ठान किया । सर्वत्र घोर शीत में योगियों को खोजते रहे । कई स्थानों पर कुछ लाभ प्राप्त हुआ भी । घोर तपस्यापूर्ण जीवन रहा । कष्टों की कोई सीमा न थी । एक बार मरते २ बचे ।

अब वे उत्तरापथ से लौटे । रामनगर व काशीपुर होते हुए द्रोणसागर पहुँचे । यहां सं० १९१२ की शीतऋतु में लगभग १॥ मास रहे । यहां से वे गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे । गंगा में एक शव बहता देखकर किनारेपर खींच लाये । एक चाकू से काट कर हृदय आदि अङ्गों को देखा और योग के नवीन ग्रन्थों को अतीव भ्रमपूर्ण पाया । उन्होंने वे ग्रन्थ भी शव के साथ बहा दिए । यहां से पुनः हरद्वार गए और कनखल के दक्ष मन्दिर में स्वामी पूर्णानन्द से पढ़ाने की प्रार्थना की । इस समय पूर्णानन्द जी की अवस्था लगभग १०८ वर्ष होगी । शरीर पढ़ाने योग्य न था । उन्होंने मौन धारण किया हुआ था । उन्होंने लिखकर उत्तर दिया "मथुरा में स्वामी विरजानन्द के पास जाओ । तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा ।"

मुमुक्षुवर्य के हृदय में संभवतः विदुष्मती काशी को देखने की इच्छा थी । वे गंगा के तटानुतट देशाटन करने लगे । सं० १९१३ के आरम्भ में कानपुर पहुँचे । लगभग ५ मास कानपुर व प्रयाग के मध्यवर्ती क्षेत्र में विचरण किया । इस समय अंगरेजों को देश से निकालने की तैयारियां आरम्भ हो गईं थी । साधु-संन्यासी विदेशियों के निष्कासन में पुराकाल में भी भाग लेते रहे हैं । वे इस समय भी सहयोग कर रहे थे । मुमुक्षुवर्य को इस परिस्थिति का ज्ञान हो गया प्रतीत होता है । सं० १९१३ में वे बम्बई में वैदिक धर्म-प्रचारार्थ गए थे । वहां वे नाना जी (धूंधूपन्त)

के आदमी के रूप में प्रसिद्ध थे। अनुमान होता है कि देशभक्त दयानन्द ने भी आन्दोलन व प्रचार में सहयोग किया था। स्वा० दयानन्द की सं० १६१३ कार्तिक से सं० १६१७ कार्तिक तक की दिनचर्या के विषय में हम प्रायः कुछ भी नहीं जानते। वे स्वयं इस कालके विषय में प्रायः मौन रहे है। उनका सं० १६१३ के अन्त व सं० १६१४ में राजनीतिक महान उद्योग में प्रेरक, प्रवर्तक रूप में कुछ सहयोग रहा अवश्य अनुमित होता है।

दयानन्द भाद्रपद के आरम्भ में मिर्जापुर पहुँचे। यहां वे एक मास से अधिक रहे और वस्ती क्रिया का अभ्यास किया। तदुपरांत वे काशी गए। वहां वे १२ दिवस रहे यहां से उन्होंने नर्मदा के स्रोत की यात्रा की। बड़े बड़े बीहड़ वनों में होकर निकले। हिंस्रपशुओं ने भी उन्हें न सताया। उनकी यह यात्रा प्रायः कार्तिकान्त तक समाप्त हो गई।

दयानन्द का अगले ४ वष का वृत्तान्त हमें ज्ञात नहीं। इसका आरम्भिक १ वर्ष तो सम्भवतः कुछ नाना जी के सहयोग में बीता हो। अगले तीन वर्ष भारत के उत्तर से दक्षिण व पश्चिम से पूर्व के देशाटन में व्यतीत हुए होंगे। कुछ समय उन्होंने काशी में व्याकरण व योग का अध्ययन भी किया था। योगाभ्यास तो नैत्यिक चर्या थी ही। बीच बीच में योगियों व विद्वानों से सम्पर्क होता ही रहता था। उनका विरजानन्द से अध्ययन का संकल्प चिरपूर्व बन चुका था, पर देश की घोर अशान्ति की अवस्था में वे उधर मनो योगी न हो सके थे।

सं० १६१७ कार्तिक शु० २ बुध (१४-११-१८६०) को वे दण्डी जी के पास अध्ययनार्थ पहुँचे। दयानन्द को ऐसा गुरु न मिला था और विरजानन्द को ऐसा शिष्य न मिला था। दयानन्द ने आदर्श गुरु की भक्ति-भाव से सेवा करते हुए, २॥ वर्ष पर्यन्त अध्ययन किया। यहाँ उन्होंने शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी)-महाभाष्य, वेदान्त दर्शन और सम्भवतः निरुक्त पढ़ा। व्याकरण व वेदान्त पढ़ते हुए अन्य सब दर्शनों की समालोचना भी हुई। आदर्श गुरु शिष्य कई बार एकान्त में वार्तालाप करते थे। उस समय विरजानन्द के अन्य प्रियतम शिष्य भी न रह पाते थे। ऐसे अवसरों पर सम्भवतः देश के राजनैतिक उद्धार सम्बन्धी चर्चाएँ होती हों।

सं० १६१६ के अवसान के लगभग दयानन्द का अध्ययन समाप्त हुआ। देशभक्त आदर्श गुरु ने गुरु दक्षिणा के अवसर पर उन से देश में फैले घोर अज्ञान को दूर करने की प्रतिज्ञा चाही। आदर्श शिष्य ने सहर्ष इस आदेश को शिरोधार्य किया। देश-सेवा उनके जीवन का गौण लक्ष्य प्रबल रूप में अवरतः १० वर्ष पूर्व ही बन चुका था। अब आत्म-चिन्तन गौण और देश-सेवा प्रधान लक्ष्य बन गया। आगरे में उन दिनों ग्रन्थों का कोई उत्तम भाण्डागार था। दयानन्द स्वाध्यायार्थ लगभग पौने दो वर्ष आगरा रहे। साधारण प्रचार, उपदेश, अध्यापन भी चलता था योगाभ्यास नित्य चर्या थी ही। बीच बीच में गुरु दर्शनार्थ मथुरा भी जाते थे। वे ३५ मील तीन घन्टे में चल लेते थे। देशभक्त विरजानन्द असन्तुष्ट थे कि दयानन्द देश के अज्ञान-तिमिर को दूर नहीं कर रहे। दयानन्द ने उत्तर दिया सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर लेने पर ही यह कार्य सम्यक् निर्वाह हो सकेगा।"

सं० १६२१ पौष में वे गवालियर गए। वहाँ नरेश ने बड़े सज धज से भागवत् सप्ताह बैठाया था। यहाँ से वैष्णव मत का खण्डन आरम्भ हुआ। भारत भर के सर्वश्रेष्ठ भागवत पाठी एकस्थ थे। सब को भागवत पर शास्त्रार्थ के लिये

ललकारा और भागवत का तीव्र खण्डन किया।

सं० १९२२ में जयपुर गए। वहाँ शैव, वैष्णव शास्त्रार्थ में शैवों की सहायता की। देहली के प्रसिद्ध पण्डित हरिश्चन्द्र को परास्त किया। जयपुरीय विद्वानों ने व्याकरण में मुंह की खाई। सं० १९२३ में पुष्कर व अजमेर गए। अजमेर में शैव मत का खण्डन भी प्रारम्भ किया। अजमेर में ईसाई पादरियों को परास्त किया। राजस्थान के गवर्नर जनरल -एजैन्ट (A. G. G.) से गो-रक्षा पर बात हुई।

यहाँ से आगरा गए। यहाँ वायसराय का दरबार था। राजा महाराजा आए हुए थे। यहाँ पाखण्ड-खण्डन" (भागवत-खण्डन) पुस्तक छपवा कर खूब बाँटी। यहाँ मथुरा में गुरु जी के दर्शन करते हुए कुम्भ हरद्वार पहुँचे। पाखण्ड-मर्दन ध्वजा अपनी कुटिया पर लगाई और भागवत व अन्य पुराणों का तीव्र खण्डन किया। विशुद्धानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ हुआ।

अब ऋषि ने पुस्तक वस्त्रादि सर्वस्वत्याग दिया। कोपीन लगा ली। शरीर पर भस्म लगानी आरम्भ की सो सं० १९३१ तक बम्बई जाने तक लगाते रहे। कौपीन धारी ऋषि गङ्गातट पर घूमते हुए प्रचार करने लगे। सं० १९२४ आषाढ़ शुक्ल में रामघाट पहुँचे वहाँ कृष्णानन्द से शास्त्रार्थ हुआ। इसके पश्चात् कर्णवास में पं० अम्बादत्त से शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने स्वीकार कर लिया–'मूर्तिपूजा अवैदिक व त्याज्य है। ऋषि कर्णवास में मार्ग शीर्ष में पुनः आए। तब छः दिन तक पं० हीरावल्लभ से शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में पं० हीरावल्लभ ने अपनी मूर्तियां गङ्गार्पित कर दीं।

ऋषि दयानन्द इसी प्रकार गङ्गातट पर विचरते हुये संध्या, अग्नि होत्र, यज्ञोपवीत, गायत्री का प्रचार करते रहे। वे एक कौपीन से अधिक अपने पास कुछ न रखते थे। एकान्त स्थान में स्नान करके कौपीन सूखने डाल देते थे और ध्यान-मग्न हो जाते थे। जब उठते थे तो सूखी हुई कौपीन को पहन कर निवास-स्थान पर आजाते थे और उपदेश करने लगते थे। निवास सदा ग्राम से बाहर होता था। स्त्रियों को आने की आज्ञा न थी। रात में गङ्गातट पर ही रेत में सो जाते थे। ईंट का व रेत का ही सिरहाना होता था। ओढ़ते कुछ न थे। कोई भक्त कम्बल डाल जाते थे तो जब करवट बदलते थे तो उसे उतार कर परे कर देते थे। जहाँ योग्य छात्र मिलते थे, उनको गुरु जी के पास मथुरा पढ़ने भेज देते थे।

इसी प्रकार विचरते सं० १९२५ में ज्येष्ठ में वे पुनः कर्णवास पहुँचे। यहाँ बरौली के राव कर्ण सिंह ने क्रुद्ध होकर उन पर खड्ग से प्रहार किया ऋषि ने तलवार छीन कर तोड़ दी। यहां से वे सोरों पहुँचे। यहां बदरिया के पण्डित अङ्गदराम से मूर्तिपूजा व भागवत पर शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने इन सबकी सदोषता स्वीकार की और ऋषि के अनुगत हो गए। इस महान् विद्वान् ने अनेक ग्रंथ रचे हैं। उनमें एक राष्ट्र विप्लव काव्य भी है। ये ग्रन्थ अभी देखे नहीं जा सके।

पीलीभीत के अहंकारी पं० अङ्गदराम भी सोरों आये थे। वे स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ के इच्छुक हुए। उनको बदरिया के अंगदराम ने परास्त कर दिया। धर्मान्ध लोग ऋषि के प्राण-हरण का स्थान २ पर उद्योग करते थे। पर भगवद्दया से वे दुष्ट सफल न हो सके।

ककोड़े के कार्तिक गंगा स्नान के मेले पर पं० उमादत्त से शास्त्रार्थ हुआ। ऋषि उनकी उच्चारण-विशुद्धि से प्रसन्न हुए। यहाँ अंगरेज पादरी व कलक्टर से भी बात हुई। कायमगंज में पादरी अनलान, हरप्रसाद आदि परास्त हुए। सं० १९२५ पौष में ऋषि फरुखाबाद पहुंचे। वहां पं० श्री गोपाल से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। वे

परास्त हुए। कृष्णलाल वणिक् ने व्यय करके मूर्तिपूजा के पक्ष में काशी के पण्डितों की व्यवस्था मंगवाई। कृष्णलाल ने उसे ऋषि दयानन्द को भी दिखाया। वे उस असम्बद्ध प्रलाप को देख कर बहुत हंसे। फर्रुखाबाद में ऋषि ने संस्कृत पाठशाला स्थापित की और अपने सतीर्थ्य पं० व्रजकिशोर को अध्यापक नियुक्त किया।

फर्रुखाबाद में सं० १९२६ ज्येष्ठ शुक्ल १० शनिवार (१९-६-१८६९) को अगले दिन प्रसिद्ध विद्वान् हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ। वे परास्त होने पर मूर्च्छित से हो गये।

आषाढ़ मास में कन्नौज में पं० हरिशंकर से शास्त्रार्थ हुए। उन्होंने पराजय स्वीकार कर संन्यास दीक्षा की प्रार्थना की। ऋषि ने कहा हार जीत की प्रतिज्ञा पर संन्यास लेना उचित नहीं। संन्यास वैराग्य से होता है।

ऋषि यहाँ से कानपुर पधारे! वहाँ हलधर ओझा से श्रावण कृष्ण ८, (३१-७-१८६९) को पुनः शास्त्रार्थ हुआ। असिस्टेन्ट कलक्टर थेन संस्कृतज्ञ थे। वे सभापति थे। उन्होंने निर्णय दिया कि दयानन्द विजयी रहे। इस अवसर पर अन्य भी कुछ अंगरेज उपस्थित थे। बहुत लोगों ने मूर्तियां गंगा में फेंक दीं।

कानपुर से ऋषि प्रयाग में प्रचार करते काशी पहुंचे। सं० १९२६ कार्तिक शुक्ला १२, भौम (१६-११-१८६९) को काशी नरेश के सभापतित्व में शास्त्रार्थ हुआ। सम्पूर्ण काशी के पण्डितों का घोर पराजय हुआ।

इसके पश्चात् हुगली (कलकत्ता) में पं० ताराचन्द्र तर्क रत्न को शास्त्रार्थ करना पड़ा। वे अन्त में स्वयं ही मूर्तिपूजा का खण्डन करने लग पड़े।

कलकत्ते में ऋषि को पता चला कि उनके संस्कृत उपदेश का देशभाषा में अनुवाद सुनाते समय पण्डित गण उलटी बातें कह देते हैं। अतः उन्होंने हिन्दी में व्याख्यान देने का विचार किया। हिन्दी बोलने का सर्वथा अभ्यास न था। कुछ अभ्यास हो जाने पर हिन्दी में पहला व्याख्यान काशी में सं० १९३० में दिया। अब वे रेल पर भी चढ़ने लगे थे। इस प्रकार स्त्रियों के सामने भी होना पड़ता था, अतः वे वस्त्र भी पहनने लगे थे।

लोगों के प्रार्थना करने पर उन्होंने अपने विचारों को लेखबद्ध भी करना स्वीकार किया और सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ लिखे। कुछ समय पश्चात् वेदभाष्य का कार्य भी हाथ में लिया पर हमारा दुर्भाग्य है कि यह कार्य पूरा न हो सका।

राष्ट्र भाषा
गो रक्षा
मातृ शक्ति से मानव उन्नति।
विधवाओं का उद्धार, अछूतोद्धार
राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली गुरुकुल ब्रह्मचर्य
देश भक्ति, राष्ट्रीय भावना, स्वराज्य

देश की औद्योगिक उन्नति का प्रयत्न, जर्मनी के प्रिन्सिपल वीस से पत्र व्यवहार, विरजानन्द से पाई और हमें दी अमूल्य निधि, आर्ष ग्रन्थाध्ययन सिद्धान्त, षड्दर्शन समन्वय, दयानन्द ने विरजानन्द से जो कुछ पाया था उसे सहस्र गुणा बना कर हमें दे गये हैं। महर्षि राजा महाराजाओं को सुधार कर उनको संघटित करने के लिए प्रयत्नशील थे। वे राजा और प्रजा दोनों को सुधार कर देश स्वातन्त्र्य के लिए पूर्णतया यत्नवान् थे।

# * दर्शन में दयानन्द की देन *

[ लेखक -- मंगलाप्रसाद पुरस्कार विजेता श्री उदयवीर जी शास्त्री विद्यावाचस्पति ]

"अनेक शताब्दियों से दार्शनिक क्षेत्र में यह विचार धारा प्रचलित रही है कि षड्दर्शनों में पारस्परिक विरोध है। महर्षि दयानन्द ने वर्त्तमान युग में सर्वप्रथम इस अशुद्ध विचार धारा का खण्डन कर दार्शनिक जगत् में एक क्रान्ति उत्पन्न की। ऋषिवर के विचारों को जानने के लिये पाठक इस लेख का गम्भीरता पूर्वक मनन करें। प्रस्तुत लेख के लेखक श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री विद्यावाचस्पति दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपके अद्भुत ग्रन्थ "सांख्य दर्शन का इतिहास" पर पिछले दिनों हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने मंगला प्रसाद पारितोषिक से पुरस्कृत किया है। माननीय लेखक आज कल गाजियाबाद में वैदिक अनुसन्धान कर रहे हैं।

—सम्पादक

भारतीय दर्शन वैदिक और अवैदिक इन दो भागों में विभक्त कहा जाता है। अवैदिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन, अर्हत्त दर्शन तथा बौद्ध दर्शन हैं। वैदिक दर्शनों में छः की गणना की जाती है-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। इनके यथाक्रम दो-दो के युगल को समान शास्त्र कहा जाता है, जो प्रतिपाद्य विषय की समानता अथवा सहयोगिता पर आधारित है। इनको वैदिक दर्शन इस आधार पर कहा जाता है कि इनमें आत्म-सम्बन्धी तथा अनात्म-सम्बन्धी वैदिक सिद्धान्तों का दार्शनिक रीति पर विवेचन एवं प्रतिपादन किया गया है। इन सब ही दर्शनों में वेदों को समान रूप से प्रमाण माना गया है, जब कि अवैदिक दर्शनों में ऐसा नहीं है।

दर्शनों के विभाग का यह आधार माने जाने पर वैदिक एवं अवैदिक दर्शनों के प्रतिपाद्य विषय, विचार प्रणाली तथा तत्त्व प्रतिपादन आदि में परस्पर विरोध हो यह स्वाभाविक है, पर वैदिक कहे जाने वाले दर्शनों में भी मुख्य विषयों तक में विरोध हो, तो यह अत्यन्त विचारणीय हो जाता है। प्रक्रिया के साधारण या छोटे मोटे विरोध की उपेक्षा की जा सकती है, अन्यथा दर्शनों की छः संख्या ही निराधार हो जाय, पर मुख्य विषय का भेद एक समस्या खड़ी कर देता है, यदि ऐसा भेद वास्तविक है, और यह प्रतिपादन वेद-मूलक है, जो कि वैदिक दर्शन में होना चाहिए, तो वेद तक भी यह भेद सूत्र जा पहुंचता है। यदि वहां पर भी इतने भेदों के मूल विद्यमान हैं, तो वेद अमान्यता की कोटि में प्रवेश पा सकते हैं। विरुद्धार्थक प्रतिपादक शास्त्र की मान्यता कैसे सम्भव हो सकती है।

बौद्ध दर्शन के अभ्युत्थान काल में वैदिक दर्शनों में पारस्परिक विरोधी भावनाओं को उभारने का प्रयत्न किया गया, जो प्रचार की प्रबलता से अवसर पाकर दृढ़ मूल हो गया और अनन्तर वर्त्ती आचार्यों द्वारा उसी छाया में दर्शनों के व्याख्यान होते रहें! इन व्याख्या कारों ने उन विचारों को काफी हवा दी, वह एक ऐसा रूप खड़ा हो गया,

जिसके प्रतिकूल कुछ भी कहने का कोई आचार्य उस समय साहस नहीं कर सकता था। कुमारिल, शंकर, रामानुज सदृश मुनिकल्प प्रकाण्ड विद्वानों ने भी खुंदी हुई पद्धति का ही अनुगमन किया। अब ऐसा अनुभव होता है कि कदाचित् ये आचार्य उस क्रान्तदर्शिता के उच्च स्तर पर पहुंचने से वञ्चित रह गये, जिसकी प्रशस्त पथ-निर्माण के लिए अपेक्षा रहती है। यद्यपि इन महान् आत्माओं ने अपने समय में वैदिक धर्म की सेवाओं के लिए अपना जीवन तक अर्पण कर अत्यादरणीय प्रयत्न किये हैं।

पिछली अनेक शताब्दियों में सब से पहला महामानव महर्षि दयानन्द हुआ है, जिसने दर्शनों की इस दिशा पर दृष्टिपात किया, और घोषणा की, कि वैदिक दर्शनों का तथाकथित पारस्परिक विरोध सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। सत्यार्थ-प्रकाश के अष्टम समुल्लास में एक स्थल पर लेख है—'विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्धवाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है। मीमांसामें—ऐसा कोई भी कार्य जगत में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाय। वैशेषिक में—समय न लगे विना बने ही नहीं। न्याय में—उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता। योग में—विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय, तो नहीं बन सकता। सांख्य में—तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता और वेदान्त में—बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके; इसलिए सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं।'

यह एक दिग्दर्शन मात्र है, इस लेख द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय, तो कोई भी विद्वान् यह समझ सकता है, कि वैदिक दर्शनों की रचना परस्पर विरोधी अर्थों का प्रतिपादन करने के लिए नहीं हुई। प्रक्रिया भेद भले ही हो, पर किसी एक विषय के प्रतिपादन में भी विभिन्न दर्शनों का अनुपेक्षणीय भेद नहीं देखा जाता। इस दृष्टि से निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किया जाता है—वेद प्रामाण्य, ईश्वर का अस्तित्व, प्रमाण, सत्कार्यवाद।

**वेद प्रामाण्य**—छहों दर्शनों में वेद के प्रति अत्यन्त आदरपूर्ण भावना प्रकट की गई है। कोई दर्शन ऐसा नहीं, जहां वेद का निर्भ्रान्त प्रामाण्य स्वीकार न किया गया हो। 'स्वतः प्रामाण्य' और 'परतः प्रामाण्य' इन पदों की व्याख्या में भले ही प्रक्रिया में अन्तर हो, पर वेद के प्रामाण्य के लिये अन्य किसी के सहयोग या सहारे की अपेक्षा है, यह किसी को अभिमत नहीं है, किसी सिद्धान्त को वेद के आधार पर प्रकट कर देने पर वह उसका परिनिष्ठित स्तर मान लिया जाता है। लेख के विस्तार भय से इस विषय के दर्शन सूत्रों का यहां उल्लेख नहीं किया गया।

**ईश्वरास्तित्व**—ईश्वर के अस्तित्व को भी सब ही दर्शनों ने स्वीकार किया है। इस विषय में सब से अधिक डिण्डिम घोष सांख्यदर्शन के लिये किया जाता है कि वहां ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया। यह कहने वाले विद्वानों का विचार है कि ईश्वर का अस्तित्व जगत् के निर्माण व नियन्त्रण की दृष्टि से स्वीकार किया जाता है। पर सांख्य में जगद्रचना के लिये प्रकृति को स्वतन्त्र मान कर ईश्वर की उपेक्षा कर दी गई है।

इस विषय में सब से पहली बात तो यह है कि कपिल के किसी सूत्र या कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि प्रकृति स्वतन्त्र है, सांख्य षडध्यायी और तत्त्व समास सूत्रों में कोई ऐसा पद नहीं, जो उक्त अर्थ को प्रकट करता हो। कतिपय व्याख्या-कारों ने सांख्य सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए

ऐसा लिखा है कि सांख्य में प्रकृति को स्वतन्त्र माना गया है। यदि उनका 'स्वतन्त्र' पद से यह अभिप्राय है कि जगद्रचना में प्रकृति चेतन की अपेक्षा नहीं रखती, और इस प्रकार ईश्वर चेतन की प्रेरणा के बिना ही वह जगद्रचना किया करती है; तो यह कहना होगा कि उन विद्वानों को कापिल सिद्धान्त समझने में भ्रम हुआ है। यदि 'स्वतन्त्र' पद का यह तात्पर्य समझा जाता है कि प्रकृति उपादान कारण की सीमा में और किसी के अस्तित्व को सहन नहीं करती, केवल मात्र वही उपादान तत्त्व है, इतने अंश में उसका और कोई सहयोगी नहीं, और इसी दृष्टि से उसे स्वतन्त्र कहा गया है, तो ठीक है। कपिल ने जगत् के उपादान रूप में प्रकृति के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व को स्वीकार नहीं किया। फलतः ईश्वर चेतन की प्रेरणा के बिना ही प्रकृति जगत् का निर्माण करती रहती है, और यही उसकी स्वतन्त्रता है, यह कापिल सिद्धान्त प्रकट करना सर्वथा निराधार है।

सांख्य परम्परा में—चेतन निरपेक्ष प्रकृति, प्रवृत्ति किया करती है—यह विचार वार्षगण्य आचार्य का है, जिसको बौद्ध काल में बौद्ध विद्वानों द्वारा—कापिल सिद्धान्त को निरीश्वरवादी प्रकट करने और उस आधार से अपने विचारों की पुष्टि के लिये कपिल पर आरोपित किया गया, और इतना अधिक प्रचारित किया गया कि कालान्तर में इस अपसिद्धान्त ने ही सिद्धान्त का रूप धारण कर लिया, तथा शंकर जैसे अप्रतिभ विद्वान् भी इससे अभिभूत हो गये। अनन्तरवर्त्ती व्याख्याकारों के लेख शंकर आदि का ही अनुगमन करते रहे।

कहा जाता है कि 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र द्वारा कपिल ने स्वयं ईश्वर को असिद्ध बताया है, फिर यह कैसे माना जाय कि वह ईश्वरवादी था और उसने ईश्वर प्रेरणा द्वारा ही प्रकृति में प्रवृत्ति को माना है? इस विषय में निवेदन है कि उक्त सूत्र में जगत् के उपादान भूत ईश्वर को असिद्ध बताया गया है, अधिष्ठाता एवं नियन्ता ईश्वर को नहीं। ऐसे ईश्वर का होना कपिल ने स्वयं अनेक सूत्रों [ १। ९६ ॥ ३। ५६, ५७ ] में स्वीकार किया है, और पञ्चमाध्याय के प्रारम्भ में ईश्वर की उपादानता का प्रत्याख्यान करते हुए बारहवें सूत्र में प्रकृति को ही जगत् का उपादान कारण स्वीकृत किया है, और इस विषय में वेद को आधार बताया है। केवल प्रकृति की उपादानता को निश्चित करने के लिए जिन अन्य विरोधी विचारों की इस विषय में सम्भावना हो सकती थी, उनकी कल्पना कर कपिल ने पर्याप्त विवेचन इस विषय का किया है। उसी के अन्तर्गत सांख्य में ईश्वर की उपादानता का प्रत्याख्यान उपलब्ध होता है।

कतिपय आधुनिक व्याख्याकारों का विचार है कि 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र प्रत्यक्ष लक्षण के प्रकरण में है, वहां जगदुपादान का प्रसंग कैसे? ऐसी आशंका उठा कर उन व्याख्याकारों ने सांख्य सिद्धान्तों की उपेक्षा कर तथा पूर्वापर प्रसंग का गम्भीरता पूर्वक विचार न करते हुए अनेक प्रकार की निराधार कल्पना की हैं। जो जिज्ञासु जन इस विषय में विवेचना पूर्ण जानकारी चाहते हैं, वे वाराणसी से प्रकाशित 'वेद-वाणी' मासिक पत्रिका के १० वर्ष के ११ वें अंक में 'ईश्वरासिद्धेः' शीर्षक लेख देख लेने का कष्ट करें।

उक्त सूत्र में कपिल ने जगत् के उपादान भूत ईश्वर को असिद्ध बताया है, इस विषय का संकेत ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में स्वयं किया है। सप्तम समुल्लास के ईश्वर प्रकरण में पूर्व पक्ष की ओर से सांख्य के उक्त सूत्र [ १। ९२ ] का उल्लेख कर उसका अर्थ किया है—'प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती।' इस पूर्व पक्ष का उत्तर देते हुए आगे लिखा है—'यहां ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है।' इसी प्रसंग

में ऋषि दयानन्द ने सांख्य का एक और सूत्र [५।८] उद्धृत करते हुए उसकी व्याख्या में लिखा है—'इसलिए परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है।' इसी के उपसंहार में उद्धृत किये एक उपनिषद् सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए लिखा है—'प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर होती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थांतर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है, इसलिए जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है, जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य नहीं।'

इस प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि दयानन्द ने उक्त सांख्य सूत्र का यह अभिप्राय स्वीकार किया है कि इस सूत्र में ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण होने का कोई उल्लेख नहीं है, प्रत्युत ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं है, इस बात का प्रतिपादन है। इसलिए जगत् के उपादानभूत ईश्वर की असिद्धि का ही यह सूत्र निर्देश करता है। फलतः ईश्वर के अस्तित्व के विषय में दर्शनकारों का अविरोध स्पष्ट है।

**प्रमाण**—प्रमाण से अर्थ की सिद्धि होती है, इस मूल सिद्धान्त के स्वीकार करने से प्रमाण के अस्तित्व में किसी को नकार नहीं। पर प्रमाणों की संख्या में विरोध का उद्भावन किया जाता है, विभिन्न दर्शनों में एक से लेकर आठ प्रमाण तक माने गये हैं। चार्वाक दर्शन में केवक एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया है। वैशेषिक और बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण हैं, सांख्य-योग में शब्द प्रमाण को पूर्वोक्त दो में और जोड़ कर तीन प्रमाण माने हैं। न्याय दर्शन में उपमान को जोड़ कर चार संख्या बताई। मीमांसा और वेदान्त में इनके अतिरिक्त अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ये दो प्रमाण और बता कर छः माने गये। कुछ प्राचीन नैयायिक ऐतिह्य और सम्भव ये दो अधिक बता कर आठ प्रमाण मानते थे।

इस विषय में यह निश्चित मत है कि वस्तु-सिद्धि में किसी भी उपयुक्त प्रकार को अस्वीकार नहीं किया जाता, फिर प्रवक्ता और बोद्धा रूप में अनेक प्रकार के अधिकारी होते हैं, उनके स्तर एवं परिस्थिति के अनुसार वस्तु तत्व को स्पष्ट करने के लिए तदुपयोगी प्रक्रियाओं को मान लिया जाता है, यद्यपि वे प्रकार अधिक व्यवस्थित प्रक्रियाओं के अन्तर्गत ही होते हैं। इसलिये जिन दर्शनों में प्रमाणों की संख्या न्यून मानी गई है, वे भी शेष को प्रमाण माने जाने का विरोध नहीं करते, उनका कहना है कि इनको अतिरिक्त प्रमाण मानने की आवश्यकता नहीं। वैसे यदि उनका उपयोग कहीं अपेक्षित है, तो इसमें उन्हें कोई आपत्ति न होगी। ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में जहां-तहां आठ प्रमाणों का उल्लेख कर इसी अर्थ को स्पष्ट किया है। फलतः इस विषय के आधार पर भी जो परस्पर विरोध की भावना प्रकट की जाती है, उसे निराधार ही समझना चाहिये।

**सत्कार्य-असत्कार्यवाद**—इन वादों के आधार पर मध्य कालीन व्याख्याकारों ने बड़े कड़े संवाद प्रस्तुत किये हैं, पहला वाद सांख्य का और दूसरा न्याय-वैशेषिक का समझा जाता है, योग-सांख्य से बाहर नहीं, तथा वेदान्त भी उसका साथ देता है, यद्यपि नाम उसका अन्य रख लेता है। फलतः यह अखाड़ा न्याय और सांख्य का रह जाता है।

यह वाद वस्तुओं के कार्य-कारण भाव पर आश्रित है, जो वस्तु कार्य है, उसका कोई कारण अवश्य होगा, कार्य वह वस्तु है, जो अपने कारणों से उत्पन्न होती या जनी जाती है। प्रश्न यह है—वह वस्तु जो अपने कारणों से जनी गई है, उस जन्म से पहले भी अपने कारणों में वह है, या नहीं? 'है' यह सत्कार्य सिद्धान्त है, इसका

अभिप्राय है, कोई भी कार्य वस्तु अपने जन्म से पहले भी अपने कारणों में विद्यमान रहती है। 'नहीं' यह असत्कार्य वाद है, अर्थात् कोई भी कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपना अस्तित्व नहीं रखता। स्पष्ट ही ये वाद परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं।

असत्कार्य वाद का अपने विषय में यह तर्क है कि यदि कपड़ा बुने जाने से पहले ही धागों में विद्यमान है, तो फिर बुने जाने की आवश्यकता ही नहीं रहनी चाहिये और कि जो काम कपड़े से लिया जाता है, वह धागे से ले लिया जाना चाहिये। पर ऐसा व्यवहार में नहीं देखा जाता, धागे को बिना बुने काम नहीं चलता, और कपड़े का काम भी धागे से नहीं लिया जाता, स्पष्ट है बुने जाने से पहले कपड़ा नहीं था, बुने जाने पर बना, इसलिये उत्पत्ति से पहले कार्य को असत् माना जाना युक्त एवं व्यवहार के अनुकूल है।

सत्कार्यवाद का तर्क आगे चलता है। वह कहता है, यदि धागों में कपड़ा नहीं है, तो जैसे धागों में नहीं है, वैसे मट्टी के डलों में भी नहीं है, धागों और डलों में कपड़े का समान रूप से अभाव है, तो जैसे धागों से कपड़ा उत्पन्न होता है, वैसे डलों से क्यों नहीं होता? यदि डलों से नहीं होता, तो धागों से भी नहीं होना चाहिये। पर व्यवहार में ऐसा नहीं देखा जाता, हम जानते और देखते हैं, कपड़ा धागों से बनता है, डलों से नहीं। स्पष्ट है, जहां जो वस्तु है वहीं से निकलेगी, जहां नहीं है वहां से नहीं। क्योंकि धागों से ही कपड़ा निकलता है. तो समझना चाहिये, वह पहले से वहां विद्यमान है, इसलिये अपने प्रकट होने से पहले भी कार्य सत् होता है।

यहां असत्कार्य वाद का कहना है, यदि पहले ही से कार्य की सत्ता है, तो उसके लिये प्रयत्न क्यों किया जाता है? इसका उत्तर दिया जाता है कि प्रकट होने से पहले कार्य छिपा रहता है, अपने कारणों में अन्तर्हित रहता है, उसे प्रकट में लाने के लिये ही प्रयत्न किया जाता है, परन्तु असत्कार्य वाद में इसका क्या उत्तर है कि कपड़ा बनाने के लिये धागों का ही संग्रह क्यों किया जाता है, डलों का क्यों नहीं किया जाता, और घड़ा बनाने के लिये डलों का संग्रह क्यों किया जाता है, धागों का क्यों नहीं? जब दोनों जगह कार्यों का अभाव समान रूप से रहता है? इसका उत्तर महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन के एक सूत्र में इस प्रकार दिया है—

'बुद्धिसिद्धन्तु तदसत्'

वह कार्य जो उत्पत्ति से पूर्व असत् कहा जाता है, वस्तुतः उसका अस्तित्व बुद्धिसिद्ध रहता है। इसका अभिप्राय है कि हम एक व्यवस्था देखते हैं कि नियत कारणों से ही कोई कार्य विशेष उत्पन्न होता है, प्रत्येक कार्य प्रत्येक कारण से उत्पन्न नहीं होता, इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि कार्य का निर्माता अपनी बुद्धि द्वारा इस स्थिति को जानता है कि इन कारणों में से ही अमुक कार्य बन सकता है, कार्य की आकृति लम्बाई चौड़ाई गोलाई छोटाई बड़ाई आदि प्रत्येक स्वरूप का उसे ज्ञान है कि इस कारण से मैंने इस-इस प्रकार का कार्य बनाना या प्रकट करना है। वह उस कार्य के नियत स्वरूप को उन कारणों में अन्तर्हित समझता है, और एक नियत धारणा के साथ अपना प्रयत्न करता है, उसी के अनुसार वह कार्य प्रकट में आ जाता है।

कार्य कारण की इस परिस्थिति को गम्भीरता से समझने पर यह परिणाम स्पष्ट होता है कि गौतम के विचार के अनुसार भी कारण में कार्य का अस्तित्व 'स्व'रूप से तो नहीं, पर निर्मातृ बुद्धि द्वारा उसकी रूप रेखा का निश्चय कारणों के रूप में अवश्य रहता है। यदि यह वर्णन यथार्थ है,

(शेष पृष्ठ ५२४ पर)

# ऋषि जीवन के कुछ अप्रकाशित वृत्त

[लेखक—शास्त्रार्थ केसरी श्री पं० अमरसिंह जी आर्य पथिक]

महर्षि के जीवन चरित्र लेखक जितना संग्रह कर सके उतना जीवन वृत्त जीवन चरित्रों में प्रकाशित हुआ अन्य सहस्रों घटनाए अभी अप्रकाशित ही हैं। हमारे बरेली नगर में एक चौधरी तालाब है उसके समीप की कोठी में स्वामी जी बरेली वास के दिनों ठहरा करते थे। एक बार बरेली के एक दिग्गज विद्वान ने स्वामी जी को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया। सभा मण्डप में सब पधारे, उस पण्डित ने ऋषि पर पचास प्रश्न किये जो एक कागज में लिखकर वह पण्डित ले गया था स्वामी जी ने कहा कि सब प्रश्न सुना दीजिये उस ने सुना दिये। स्वामी जी ने कहा कि ये प्रश्न आप के हैं या किसी और के। पण्डित ने कहा कि मैं स्वयं पण्डित हूं। स्वामी जी ने कहा कि यदि ये प्रश्न आप के हैं तो कागज बन्द करके सब प्रश्न अपने सुना दीजिये। पण्डित बिना देखे सब प्रश्न न सुना सका। तब स्वामी जी ने कहा कि अपना कागज अपने हाथ में रखिये मैं आप के प्रश्नों को सुनाता हूं। ऋषि ने उस पण्डित के सब प्रश्न जो पचास थे जिस क्रम से कागज में लिखे उस पण्डित ने बोले थे सब उसी क्रम से सुना दिये। उस दिग्गज विद्वान ने स्वामी जी को प्रणाम किया और कहा कि महाराज मैं आप से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। यह घटना प० देवदत्त जी द्विवेदी जो बरेली हमारे मकान के पास वाले मकान में रहते थे उन्होंने सुनाई थी। ऐसी अनेक घटनाए सत्य हैं जो अप्रकाशित हैं। हमारे मित्र श्री प० अमरसिंह जी ने इस विषय में जो संग्रह किया है उस को पाठक लेख में पढ़े।

संपादक—वि० श्र० व्यास

## दाढ़ी मूछों वाले बच्चे

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज कर्णवास जिला बुलन्दशहर में कई बार आये और देर तक रहे भी। हमारे ग्राम के (अरनियां) लोग उन दिनों गंगा स्नान के लिये कर्णवास ही अधिक जाया करते थे अब अनूपशहर (बुलन्दशहर) अधिक जाते हैं। मेरे पूज्य पिता श्री ठा० टीकम सिंह जी गंगास्नान के लिये कर्णवास गये उन दिनों ऋषि का कर्णवास में गंगा के किनारे निवास था और

महाराज का भाषण हो रहा था अच्छी खासी भीड़ हो रही थी। पूज्य पिता जी ने ऋषि दयानन्द जी का नाम सुना हुआ था दर्शन नहीं किये थे न भाषण कभी सुना था। जब पता लगा कि स्वामी जी का भाषण हो रहा है तो पिता जी ने उनका भाषण सुनने और दर्शन करने की उत्कट इच्छा से उनके भाषण स्थान पर पहुँच देर तक भाषण सुना। पूज्य पिता जी बतलाया करते थे कि स्वामी जी का लम्बा और सुडौल शरीर था बहुत गंभीर घोरघर गूंजने वाली और ऊंची तथा मधुर आवाज थी। व्याख्यान दूर दूर तक भी स्पष्ट सुनाई देता था। व्याख्यान समाप्त होने वाला था कि २ या ३ गंवारों ने स्वामी जी महाराज के ऊपर धूल फेंक दी। धूल फेंकते ही भीड़ में हल्ला हो गया और ऋषि भक्तों की ओर से धूल फेंकने वालों को पकड़ो और मारो की आवाजें आने लगीं। पिता जी सुनाया करते थे कि ऋषि ने गर्ज कर के कहा जो दूर दूर तक स्पष्ट सुनाई दिया कि ये बच्चे हैं इनको कुछ मत कहो। इस पर ऋषि जी के भक्तों ने कहा कि—महाराज ! ये बच्चे नहीं हैं दाढ़ी मूछों वाले है। इस पर स्वामी दयानन्द जी ने फिर उसी स्वर में कहा कि "जिन को बुद्धि थोड़ी होती हैं वह दाढ़ी मूछों वाले भी बच्चे ही होते हैं। इन को कुछ भी नहीं कहना चाहिये।"

मेरे पिता जी के हृदय पर स्वामी जी के इन शब्दों का सारी आयु भर प्रभाव रहा और उन्होंने स्वयं ही मुझको ऋषि दयानन्द जी का जीवन चरित्र और सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की प्रेरणा की थी। कर्णवास की इस कहानी को पिता जी ने बहुत बार हमको सुनाया था।

### स्वामी जी हुक्का नहीं पीते थे

मैं झेलम (पंजाब) गया था वहां श्री मास्टर बोधराज जी एक वृद्ध पुरुष आर्यसमाज के परम भक्त थे। स्वामी दयानन्द जी जब २ झेलम में आये श्री मास्टर बोधराज जी प्रायः उनकी सेवा में ही रहा करते थे। भक्तराज महता अमीचन्द जी जिनके ईश्वर भक्ति के भजन अबतक भी प्रेम के साथ गाये जाते हैं उनके जीवन को सुधारने वाला ऋषि दयानन्द जी का उपदेश प्रद प्रसिद्ध वाक्य (अमीचन्द जी ! हो तो आप रत्न पर कीचड़ में पड़े हुये हो)उनके सम्मुख ही कहा गया था। मेरे साथ स्वर्गीय मास्टर जी का बहुत प्रेम था। मैंने उनसे पूछा कि मास्टरजी आप ने तो ऋषि दयानन्द जी महाराज को बहुत निकट से और बहुत देखा था आप का क्या विचार है स्वामी जी के जीवन चरित्र में जो यह लिखा गया है कि—वह हुक्का पीते थे क्या यह सत्य है ? मेरा यह प्रश्न सुनकर श्री मास्टर जी को बहुत दुःख हुआ और कहने लगे कि यह बात मैंने जीवन चरित्र में भी पढ़ी है पर मैं कहता हूं कि यह सर्वथा असत्य है इस में भी कुछ सत्य नहीं है।

मैंने यह बात स्वर्गीय श्री स्वामी वेदानन्द सरस्वती जी महाराज को सुनायी उन्होंने उसी समय मुझसे लिखवाकर लेली। स्वामी जी का विचार इस प्रकार की बहुत सी ऋषि जीवन सम्बन्धी बातों को प्रथक पुस्तक रूपमें छपाने का था पर हमारे दुर्भाग्य से स्वामी जी का वह संग्रह

बिना छपा ही रह गया। पता नहीं अब वह है या पाकिस्तान में ही रह गया।

श्रीस्वामी वेदानन्दजी महाराज ने स्वर्गीय श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के समक्ष ही मुझसे कहा कि–जिन लोगों ने ऋषि के हुक्का पीने की झूंठी कहानी घड़ी उनको इतना भी पता नहीं था कि संन्यासी लोग जो धूम्र पान करते भी हैं वह तम्बाकू या सुलफा चिलम में रखकर चिलम को एक कपड़े के साथ लपेट हाथ में लेकर पीते हैं चिलम को हुक्के पर रखकर नहीं पीते हैं। यह कोई सिद्धांत की बात नहीं पर परिपाटी सर्वत्र यही है कि संन्यासी और वैरागी आदि अपने पास हुक्के नहीं रखते हैं केवल चिलम ही रखते हैं यदि स्वामी जी भी पीते होते तो चिलम ही पीते हुक्का नहीं यद्यपि दोनों में तम्बाकू ही का धूंआ पिया जाता है पर हुक्का लिखने और कहने वालों की बनावट का इस शब्द से अधिक पता लगता है। ये दोनों महात्मा भी यही मानते थे कि हुक्का पीने की कहानी झूंठी है।

## ऋषि दयानन्द जी का आकार प्रकार

दीपालपुर जिला मिण्टगुमरी पन्जाब (अब पाकिस्तान) में एक बड़े विद्वान सनातन धर्मी पण्डित थे उनके लिये यह प्रसिद्ध था कि उन्होंने स्वामी दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ किया था। दुर्भाग्य से मुझ को अब उन पण्डित जी का नाम स्मरण नहीं रहा है। मैं उनके पास सन् ४० या ४१ में गया था तब उनकी आयु लगभग ९० वर्ष की होगी और उस समय उनको दोनों आंखों से कुछ भी नहीं दीखता था।

मैंने उन को नमस्ते की उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक नमस्ते का उत्तर नमस्ते से ही दिया मैं यह देख कर चकित सा रह गया।

उन्होंने मुझ से पूछा कि आप आर्य समाजी हैं मैंने कहा–जी हां! उन्होंने कहा कहिये! कैसे आगमन हुआ? मैंने कहा-- मैं आर्य समाज का उपदेशक हूं मैंने सुना कि--आप ने स्वामी दयानन्द जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ किया था मैं यह जानने के लिये आया हूं कि स्वामी जी से आप का वार्तालाप क्या हुआ था और स्वामी जी के विषय में आप के क्या विचार हैं।

मेरा परिचय और मेरे आने का प्रयोजन जानकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई मेरा बहुत सम्मान उन्होंने किया और फिर उन्होंने मुझ को यह कहा----

"प्यारे पण्डित जी! स्वामी दयानन्द जी का और मेरा शास्त्रार्थ क्या होना था पढ़ने को मैंने पूर्ण व्याकरण पढ़ा है फिर भी वह सूर्य थे और मैं जुगनू था। मैंने अनेक शास्त्रों को पढ़ा है पर मुझको उनकी विद्या का पार नहीं मिला। स्वामी जी मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे इसलिए मूर्तिपूजक हमारे भक्त लोग हमको उभाड़कर और भड़का कर स्वामी जी महाराज के सामने ले गए। मैंने स्वामी जी से कहा कि हम आप के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करेंगे स्वामी जी ने मुस्कराकर कहा कि---बहुत अच्छा! बताइये वेद में मूर्तिपूजा या मूर्ति कहां है? पांच मिनट में आप बताइये फिर पांच मिनट में मैं उत्तर दूंगा इसी प्रकार पांच पांच मिनट बोला जायगा।

स्वामी जी की बात सुनकर मैंने कहा कि मैं मूर्तिपूजा और मूर्ति शब्द वेद से दिखलाऊंगा पहिले आप मिनट शब्द वेद में बताइए कहां है।

मेरे साथ सनातन धर्मियों और विशेषकर हुल्लडों की भीड़ भी उन्होंने यह समझकर इस का उत्तर कुछ होगा ही नहीं तालियां बजादी और सनातन धर्म की जय बोलती हुई वह भीड़ हम को बड़े सम्मान के साथ उठाकर ले आई। सनातन धर्मियों ने अपनी विजय और स्वामी जी की पराजय की घोषणा की हमने "जान बची और लाखों पाये" कहकर अपने भाग्य को सराहा। उस समय तो हमने विजय के नाम से लाभ उठाया। अब तो अपने उस फक्कड़पन को शास्त्रार्थ कहते हुये बहुत लज्जा आती है।

पीछे छुप छुप कर स्वामी जी के अनेक व्याख्यान मैंने सुने और उनको वेदों और शास्त्रों के ज्ञान का अथाह सागर पाया।

उन वृद्ध पण्डित जी ने कहा कि---स्वामी जी को मैं ने निकट से देखा था और उनके चित्र भी अनेक देखे पर उनमें साम्य कम दिखाई दिया। स्वामी जी की सी खोपड़ी सुन्दर सुडौल और गुम्बद के आकार उभरी हुई किसी और की नहीं देखी। डील डौल ऐसा था शरीर ठिगना नहीं था लंबा था रंग गोरा था पेट बिल्कुल निकला हुआ नहीं था सारा शरीर हथोड़ों का सा घड़ा हुआ था। चित्रों में आँखें छोटी दिखाई गई है पर आंखें बड़ी २ थी मुख मण्डल बहुत सुन्दर था। आवाज बहुत घोरदार थी। मेरे चलते समय उठकर मुझको उन्होंने विदा किया और कहा आज का दिन धन्य है।

---

( पृष्ठ ५२० का शेष )

तो विरोध की परिस्थिति यहां आकर सांस तोड़ जाती है। सांख्य भी कार्य के प्रकट होने से पहले सर्वात्मना कार्य स्वरूप के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, प्रत्युत कार्य रूपों को कारण रूप में रहना मानता है। इस प्रकार वस्तु तत्व के वर्णन करने की रीति में भले ही कुछ अन्तर हो, पर मन्तव्य अर्थ लगभग एक स्तर पर आ जाता है।

अन्य भी अनेक दार्शनिक विषयों पर प्रकाश डाल कर ऋषि दयानन्द ने उनकी यथार्थ दिशा को समझाने का पूरा प्रयत्न किया है, जीवात्मा परमात्मा का भेद, जगत् के उपादान और निमित्त कारणों का एक न होना, सांख्य की प्रकृति एवं वैशेषिक के परमाणु का जगत्सर्ग में स्थान, मोक्ष से पुनरावर्त्तन आदि ऐसे ही विषय हैं। ऋषि प्रदर्शित दार्शनिक विचारों की छाया में दर्शन शास्त्र का अध्ययन, दर्शनों के तथाकथित विरोध की भावना को अपास्त कर उनके पारस्परिक सहयोग की भावना को उभारता है। दर्शन विषय में ऋषि की यह एक अपूर्व देन है।

# ऋषि के नाम पर क्या ? और क्या नहीं ?

[लेखक--आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, पञ्चवटी नासिक]

श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री व्याकरणादि समस्तशास्त्रों के उच्चकोटि के विद्वान् हैं आपने सामवेद पर भाष्य किया। आप अंग्रेजी आदि भाषाओं के भी ज्ञाताहैं। आप वेदप्रचारार्थ विदेश भी गयेहैं। महर्षि के सिद्धांतों और उनके वेदभाष्यादि के अक्षरशः पोषक हैं। आप जैसे ऋषिभक्त वेदज्ञ विद्वान् से आर्य विद्वन्मण्डली की शोभा है—

—सम्पादक

आर्यसमाज एक क्रान्तिकारी संघटन है। यह सदा ही क्रान्ति के पथ पर अग्रसर रहा। परन्तु थोड़े समय से क्रान्ति की दिशा उल्टी हो गयी है। यदि यह दिशा ऐसी ही रही तो आगे समाज क्या बनेगा—कहा नहीं जा सकता है। आर्यसमाज के प्रवर्तक महान् आचार्य जगद्गुरु दयानन्द सरस्वती हैं। उनका नाम स्मरण करते ही हम श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं कि भारतभूमि ने ऐसे महामानव को जन्म देकर अपने को गौरव का पात्र बनाया। ऋषि की प्रतिभा अप्रतिभ थी और तथ्य तो यही है कि जैमिनि के बाद ऋषि संज्ञा को अलंकृत करने वाले दयानन्द ही हुये। उनके सिद्धाँतों की विशेषता को संसार आगे की शताब्दियों में समझेगा और उन्हें साधुवाद देगा। अभी तक लोग उनको समझ नहीं पाये हैं।

आर्यसमाज का इतिहास यह बतलाता है कि दयानन्द के नाम पर गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय, कन्या विद्यालय और अनेक संस्थायें श्रद्धा और सम्मान व्यक्त करने के लिए खोली गयीं। इनका उद्देश्य अच्छा था और अब भी अच्छा ही रहेगा यदि समुचित रीति से ऐसा किया जावे। परन्तु कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि वर्तमान में उनके नाम का कई स्थानों पर दुरुपयोग किया जा रहा है। अजमेर में एक **दयानन्द कुक्कुटाण्ड-शाला*** भी खुली हुई है। यदि ऐसा ही रहा तो कल कोई दयानन्द सुरागृह भी खोलकर बैठ जावेगा और भी बहुत से बुरे कार्य दयानन्द के नाम पर किये जाने लगेंगे।

ऋषि के सिद्धांतों के विषय में भी उनका नाम लेकर बहुत ही अनुचित लाभ उठाया गया। नाम तो दयानन्द का लिया गया और

---

*हमें इसका ज्ञान नहीं है राजस्थान सभा को लिख कर पूछा गया है कि क्या अजमेर में ऐसी कोई शाला है। —सम्पादक

बातें विपरीत कही गयीं। ऋषि के सिद्धांतों के प्रचार को महत्व देते हुये अनुसंधान की एक होड़ सी कुछ व्यक्तियों ने चलायी। यद्यपि वह अनुसंधान अनुसंधान नहीं केवल कल्पना मात्र रहा। लोगों ने पाश्चात्यों और उनके अनुयायियों के पदचिह्नों पर चलकर इतिहास को ठीक करने की धारणा प्रकट कर इतिहास लिखने प्रारम्भ किये। कई इतिहास लेखकों ने तो दयानन्द के सिद्धांत को निभाया। परन्तु कई अपने को महा अनुसंधान कर्त्ता समझ कर ऋषि दयानन्द के विरुद्ध लिख गये और उसे रिसर्च का नाम दे रखा है। इन लोगों ने धर्मग्रंथों और ज्योतिष आदि में प्रचलित युगों की अवहेलना करके नया युग हो कल्पित कर डाला*। जब कि ज्योतिषग्रंथों, मनुस्मृति और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में युगों की संख्या पुरानी ही मानी गयी है। इन लोगों ने नयी कल्पना खड़ो करके ऋषि के माने मंतव्य में भी एक पूर्वपक्ष ही उपस्थित किया है। इसी के साथ साथ कुछ शास्त्रों के इतिहास भी लिखे गये। जिनमें अनेकों बातें ऐसी हैं जो ऋषि और आर्यसमाज के सिद्धांतों के विपरीत हैं।

इसी प्रकार संस्कृत व्याकरण शास्त्र के इतिहास× ग्रंथ में जहां कई खोजें की गयो हैं वहां ऐसी भी बातें प्रथम प्रकरण में भाषा के विकास ह्रास आदि सम्बन्ध में लिखीं गयी हैं जो वेद को अपौरुषेयता और उसके ईश्वरीय ज्ञान होने की विरोधी और पूर्वपक्ष के रूप में हैं। वहाँ पर कुछ वेदमंत्रों के अर्थ भी उल्टे पुल्टे कर लिए गये हैं। दिये गये सभी प्रमाण अर्थ की दृष्टि से विचारणीय से हैं।

अभी थोड़े समय पूर्व श्री पं० राजेन्द्रनाथजी शास्त्री का एक लेख था कि ऋषि के शब्द को हटाकर श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट की छपी एक पुस्तक में अपना शब्द दे दिया गया है। ऐसा ही मेरठ सम्मेलन के समय में यजुर्वेद विवरण+ के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने कहा था। परोपकारिणी सभा ने भी एक घोषणा निकलवायी थी। तात्पर्य यह है कि ऋषि के ग्रंथों में भी अपना संशोधन लोग करने लगे हैं। स्वर्गीय श्री स्वामी वेदानन्द जी ने विवरण की कुछ त्रुटियां भी अपने लेख में प्रकट की थीं जिनका अभी तक कोई उत्तर नहीं दिया गया। ऐसी चीजें यदि होती रही ऋषि का नाम लेकर और रिसर्च का शब्द प्रयोग कर तो कितना अनर्थ भविष्य में खड़ा हो जावेगा।

एक बात देखकर तो बड़ा आश्चर्य होता है कि कुछ लोग केवल अपना विज्ञापन करना चाहते हैं और गुट बनाकर अपनी बातों को ही रिसर्च की वस्तु और ऋषि के सिद्धाँत बताते

---

* आशा है श्री पं० भगवत्‌दत्तजी बी.ए. रिसर्चस्कालर इसका प्रतिवचन देगें।

—संपादक

× इस ग्रंथ के लेखक पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक हैं आशा है वे इसका प्रतिवचन देंगे।

—संपादक

+ इस ग्रंथ के लेखक श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु हैं। परोपकारिणी सभा ने जिज्ञासुजी पर कमीशन बैठाया था। कमीशनने जिज्ञासुजी के विरुद्ध निर्णय दिया था। —संपादक

हैं। इनमें एक बड़ा भारी गुण यह है कि ये सदा अपने परिश्रम और पढ़ाई एव स्वाध्याय का ही प्रचार किया करते हैं। ऐसे व्यक्ति तीन चार ही हैं जो किसी भी लेख एवं व्याख्यान के अवसर पर यही कहा करते हैं कि हमने इतनी पुस्तकें पढ़ी हैं। हमने गुरुचरणों में बैठ कर इतने वर्ष तक अध्ययन किया है, हमने अमुक समय तक इस विषय में परिश्रम किया है। आर्यदार्शनिक श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के एक लेख के जवाबमें ऐसे ही उल्टे पुल्टे पदों का प्रयोग किया गया था। अभी थोड़े दिन हुये स्वर+ मीमांसा की समालोचना करने वाले होशियारपुर के एक विद्वान् × के उत्तर में यह लिखा गया कि "मैंने अमुक समय तक गुरुचरणों में बैठकर इस विषय का अध्ययन किया है। जब समालोचनार्थ पुस्तक प्रस्तुत होती है तो अनुकूल प्रतिकूल दोनों प्रकार की समालोचनायें होती हैं। उस पर यह रोष प्रकट करने और डींग मारने की आवश्यकता ही क्या? आप अपनी बात को कहें समझने वाले स्वयं समझेंगे। उस पर व्यर्थ का बल देने की क्या आवश्यकता है। कोई यह भी तो कह सकता है कि अधिक वर्ष लगाने वाले भी ज्ञानशून्य रह सकते हैं और कम वर्ष वाले ज्ञानी भी हो सकते हैं। जिन गुरुओं से पढ़ने का तुर्रा जमाया जाता है, कोई कह सकता है कि उन्हें भी कुछ नहीं आता। फिर ऐसी बातों का सहारा लेने की क्या जरूरत है? वस्तुतः जब कागज में अपना वजन नहीं होता तो उस उस पर पेपरवेट देना पड़ता है। जो भारी वस्तु है उस पर इस पेपरवेट की जरूरत नहीं होती। इसी प्रकार जब अपनी बातों में कोई तत्व नहीं होता तभी उस पर इस प्रकार का भार देकर जनता को दिखलाने की कोशिश की जाती है। अनुसंधानकर्त्ता अपनी बात को कहे। उसका औचिती और महत्ता उसी पर निर्भर करेगी।

वेद के स्वरों के विषय में भी ऐसी ही कुछ अपनी बातें कही जाती हैं। स्वर उपयोगी हैं और अर्थ में वे सहायक हैं परंतु सूक्ष्म विवरणों को बतलाने में उनसे ही कार्य नहीं चलता है। मान लिया क्रिया पद "कर्त्ता" और नाम पद "कर्त्ता" के भेद का ज्ञान स्वर से हो जाता है। परंतु क्या समस्त विस्तरों का ज्ञान कोई भी स्वरों से करने की योग्यता रखता है। नाम आख्यातों में भी तो बहुत बड़ा विस्तार है। ऐसे भी अनेक शब्द पाये जाते हैं जहां पर अर्थ करने में स्वर पर बल देनेवाले को भी "बहुलं छन्दसि ×" के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। स्वरज्ञ कहे जाने वालों के ग्रंथों में ही यह प्रयोग अधिक देखा जाता है। भाव यह है कि स्वर ही अर्थ का

---

+ इस ग्रंथ के लेखक पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक है।

—सम्पादक

× श्री पं० भीमदेव शास्त्री एम. ए. वैदिकपदानुक्रमकोष के प्रमुख संपादक। इनको वेदानुसंधान करते ५० वर्ष बीते हैं।

—सम्पादक

× लेखक का संकेत पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु से ही है। जिज्ञासु जी के विवरण में पदे पदे बहुलं छन्दसि ही हर बात का उत्तर है।

—संपादक

ज्ञापक हो ऐसा नहीं। अर्थ की सूक्ष्मता का विचार अन्य कई बातों पर भी निर्भर करता है।

अभी कुछ एक व्यक्ति ऋषि दयानन्द का नाम लेकर स्वर को हस्त चालन से प्रचारित करने का बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। वे वर्तमान में आर्यसमाज के जितने यज्ञ होते हैं उन सभी को अशुद्ध बतलाते हैं क्योंकि उनके मन्तव्यानुसार इन यज्ञों में हाथ हिलाकर स्वर नहीं दिखलाया जाता है। एक सज्जन तो इस पर बहुत ही बल देते हैं और वे सभी यज्ञोंको अनर्गल बतलाते हैं। परंतु हाथ हिलाने का स्वर से क्या सम्बन्ध वे स्वयं भी नहीं बतला सकते हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत भी स्वर हैं। इनका उच्चारण तो सब को करना चाहिए। परंतु उदात्तानुदात्त, स्वरित भी यज्ञ में सर्वत्र उच्चारण किये जावें। सर्वत्र यज्ञ में मंत्रों का त्रैस्वर्य पाठ हो—ऐसा प्रमाण कहीं भी किसी प्रामाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता। साथ बिना स्वर लगा एक वेदमंत्र दे दिया जावे, जरा उस पर स्वर लगा कर तो दिखा देवें। जब तक स्वर का नियम नहीं मालूम तो हाथ हिलाने से क्या लाभ? यज्ञों में कई कर्म ऐसे हैं जो यजमान और दूसरे कार्यकर्त्ताओं से मंत्र बुलवाकर कराये जाते हैं। कार्यकर्त्ता और यजमान सभी स्वरज्ञ हों—यह संभव नहीं। तो क्या फिर इनसे ये कर्म कराये ही नहीं जावें। विवाह के प्रतिज्ञा मंत्र वर वधू के पढ़ने के हैं। अधिकाधिक संख्या स्वरानभिज्ञ वर वधुओं की है तो फिर इनका विवाह संस्कार नहीं होना चाहिए। यदि आप कहें कि पुरोहित पढ़ देवे तो इसका अर्थ यह हुआ कि आप विधि में एक दूसरा अनर्थ पैदा करना चाहते हैं। निषाद, गान्धार आदि भी स्वर हैं फिर यज्ञ में सभी मंत्रों में उनका भी प्रयोग करने की बात चल पड़ेगी और यज्ञवेदी संगीतशाला ही बन जावेगी। वेदके मंत्रों का त्रैस्वर्यपाठ यज्ञ में, श्रौतसूत्र, व्याकरण, प्रातिशाख्य, मीमांसा आदि के विरुद्ध है। ऋषि दयानन्द के अष्टाध्यायीभाष्य में विभाषा छन्दसि आदि सूत्रों में भी यही भाव व्यक्त किया गया है। वेदांग प्रकाश में भी ऐसा ही भाव यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु आदि स्थलों पर ऐसा ही पाया जाता है। पौराणिकों में जो प्रचलित सस्वर पाठ की प्रक्रिया यज्ञ में प्रचलित है उसको भी कुछ मीमांसकों ने निर्मूल बतलाया है और उस पर संदेह व्यक्त किया है। अतः स्वर को लेकर यह नया पंथ खड़ा करने का प्रयास निरर्थक है।*

वेदार्थ प्रक्रिया के इतिहास को दिखलाने का भी एक पुस्तक में प्रयत्न किया गया है। परंतु वह भी कुछ असमंजस सा ही है। वेदार्थ की तीन प्रक्रियायें वेदमंत्रों के आधारपर हैं और इनमें अमुक प्रक्रिया ही ठीक है और अमुक कल्पित वा पश्चात् की हैं—यह कल्पना त्रुटिपूर्ण है। कभी अध्यात्म में ही अर्थ होता रहा हो, अथवा दैवत अर्थ ही किसी समय स्वीकार्य था, याज्ञिक अर्थ बाद में कल्पित किया गया—ऐसा कथन मिथ्या है। इस आधार पर कोई इतिहास नहीं खड़ा किया जा सकता है। मुण्डकोपनिषद् के—मन्त्रेषु यानि कर्माणि कवयोऽपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि—का भी यह अर्थ नहीं है कि यज्ञ की प्रक्रिया का विस्तार त्रेतायुग में ही हुआ और उसके पूर्व यज्ञप्रक्रिया में वेदार्थ नहीं होता

---

* आशा है श्री पं० वीरसेन जी वेदश्रमी इसका प्रतिवचन देंगे। —संपादक

था। इसका अर्थ केवल इतना है कि मंत्रों में जिन कर्मों को क्रांतदर्शी जनों ने देखा था उनका त्रेता में बहुत विस्तार था। परंतु "अपश्यन्" क्रिया और "संततानि" दोनों का अन्वय त्रेतायुग में ही लगाना उचित नहीं। मंत्र में जो कर्म वर्णित हैं उनको क्रांतदर्शियों ने देखा और वह त्रेता से पूर्व का समय है। त्रेता में ही देखा–यह भावना इस प्रमाण में नहीं निकलती सृष्टि की आदि में देखा—यह भाव भी निकल सकता है। यह प्रमाण वेदार्थ प्रक्रिया के इतिहास का समर्थक नहीं। अधियज्ञ, अधिदैव और अध्यात्म तीनों प्रक्रियाओं में वेदार्थ होता है—यह सार्वकालिक है। पौर्वापर्य कालिक नहीं। क्योंकि प्रकरण का आधार भी वेदमंत्र हैं। तीनों प्रकार का अर्थ मंत्रों में ही भासित होता है।❀

महर्षि दयानन्द के नाम से टंकारा में एक स्मारक चल रहा है। यह वस्तुतः हमारे लिए गौरव की बात है कि ऐसा स्मारक अस्तित्व में आ रहा है। इसके मंत्री मेरे मित्र श्री पं० आनन्द प्रियजी हैं तथा अध्यक्ष भारतीय महान्यायालय के निवृत्त महान्यायाधीश श्री मेहरचन्द जी महाजन हैं। ये दोनों ही महानुभाव ऋषि के भक्त हैं और मेरे चिरपरिचित हैं। इनके कार्यों में सहयोग देना ठीक ही है। और अब तो सुना गया है कि आर्यों की शिरोमणि सभा ने भी इसे सहयोग देना स्वीकार कर लिया है। इससे बढ़ कर हर्ष का विषय और क्या हो सकता है। मैं तो यह चाहता हूं कि सभी आर्यों को सार्वदेशिक संघटन को दृढ़ रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। हमारे समस्त कार्य उसके अंतर्गत हों।

❀ श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और उनके शिष्य पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक इसका प्रतिवचन देंगे ऐसी आशा है।

—संपादक

लेकिन इस स्मारक की पत्रिका "टंकारा पत्रिका" में जो स्मारक के अध्यक्ष❀ का लेख है वह कई स्थानों पर विचारणीय एवं कहीं कहीं पर ऋषि के सिद्धांतों के विपरीत है। क्या हमें ऋषि के स्मारक में ऐसी ही रिसर्च करनी है जो उस बढ़ई के कार्य के समान हैं जो चारपाई के एक पावे की चूल तो बैठाता है परन्तु दूसरे पावे की चूल को समाप्त कर देता है। प्रस्तुत लेख ऐसा ही मालूम पड़ता है।

पृष्ठ १० पर "प्राचीन कर्मकाण्ड.......... भावना थी पर्यन्तका भाग केवल आत्मविज्ञापन और अस्पष्टता का द्योतक है। साथ ही ये यज्ञ कैसे भूगोल हैं—यह स्पष्ट नहीं। भूगोल भी स्थान सम्बन्धी और ज्योतिष एवं भौतिक-विज्ञान सम्बन्धी अंश से युक्त है। यज्ञ में किस भूगोल का चित्रण है–यह स्पष्ट होना चाहिए। इसी पृष्ठ पर सहस्रसवत्सरयज्ञ का वर्णन किया गया है। यहां पर लेखक ने चतुर्युगियों का वर्णन किया है। उसका यह लिखना उसके इतिहास की पुस्तक में माने युगों से समंजस किस प्रकार है। साथ ही उसका सहस्रसम्वत्सरयज्ञ श्रौतसूत्र और मीमांसा को भावना से मेल खाता नहीं दिखायी पड़ता है। क्या सहस्रसम्वत्सर का अर्थ सहस्र दिन नहीं

❀ इसके अध्यक्ष पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक बने हुये हैं।

—संपादक

ग्रहण किया गया है। यदि ऐसा हो तो यह संगति कहां तक ठीक होगी।

पृष्ठ १३ पर यह भाव व्यक्त किया गया है कि "पृथिवीतल पर अग्नि का प्रथम प्रादुर्भाव वृक्षरूपी काष्ठों के संघर्ष से हुआ" यह सर्वथा ठीक नहीं। पृथिवी पर अग्निके प्रथम प्रादुर्भाव का यही कारण है क्या यह वेद से सिद्ध किया जा सकता है। दूसरे इससे भी अधिक वैज्ञानिक कारण है वा नहीं। पृष्ठ १३ पर अदृष्ट की जो कल्पना की गयी है वह एक कल्पना को सिद्ध करते हुये दूसरे सिद्धांत को खण्डित भी करती है। क्या कर्मकाण्ड में अदृष्ट का यही अर्थ है जो लेखक ने लिया है। दर्शन में अदृष्ट का यही अर्थ हो—यह ठीक नहीं। वहां पर अदृष्ट का अर्थ कर्म सम्बन्धी अदृष्ट भी है और दृष्टादृष्ट-जन्मवेदनीय आदि विचार उसी आधार पर है। यह धारणा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (दयानन्द ग्रन्थ माला पृ० ३१४-३१५) के विपरीत है। कर्मकाण्ड के भेद को बतलाते हुये ऋषि लिखते हैं:—

"परन्तु तस्यापि खलु द्वौ भेदौ मुख्यौ स्तः। एकः परमपुरुषार्थ सिध्यर्थोऽर्थाद्य ईश्वरस्तुति-प्रार्थनोपासना ज्ञापालन धर्मानुष्ठानज्ञानेन मोक्षमेव साधयितु प्रवर्तत्त। अपरो लोक व्यवहारसिद्धये यो धर्मेणार्थकामौ निर्वर्त्तयितु संयोज्यते ।।··· अस्य जन्म-मरण-फल भोगेन युक्तत्वात्—इत्यादि।। साथ ही उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते संसृजेथाम्—मंत्र के अर्थ को देखते हुए यह कल्पना एकाङ्गी है। यज्ञ में वस्तुतः जहां उसके विस्तार से विज्ञान का उद्बोधन होता है वहां कर्मसम्बन्धी अदृष्ट भी कर्म से अभिप्रेत है। यज्ञ कर्मों का प्रयोजन भी तो है ही। वह केवल इतना ही नहीं। सकाम निष्काम भावों को लेकर फल का भी उद्देश्य है। पृष्ठ १४ पर "तद्वाचनादाम्नायस्य प्रमाण्यम्" में भी धर्म पद की जो पूर्वसूत्र से अनुवृत्ति आयी है, उसका अर्थ केवल पदार्थ-धर्म ही नहीं है बल्कि प्रवृत्ति वाला कर्मात्मक धर्म भी वहां पर अभिप्रेत है। दोनों का ही वहां पर, ग्रहण है। इसका अर्थ ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका (दयानन्द ग्रंथमाला पृ० २९७) पर देखना चाहिए। सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में धर्म विशेषप्रसूताद् की व्याख्या ऋषि ने की है। वहां पर धर्म का अर्थ दोनों ही गृहीत हैं। वैशेषिक दर्शन में धर्म का अर्थ पदार्थ धर्म और कर्ममय धर्म दोनों ही है। यदि उसी प्रकार का एकाङ्गी अर्थ लिया जाने लगे तो दर्शन प्रतिपादित कर्ममीमांसासम्बन्धी विचारों का लोप हो जाता है। वैशेषिक के द्रव्य पदार्थ में आत्म तत्व का भी तो ग्रहण है। केवल भौतिक पदार्थों का ही नहीं। धर्माधर्म का भी प्रतिपादन वहां पर है।

पृष्ठ १४ पर अग्न्याधान की विधि······ स्पष्ट हो जाता है कि याज्ञिक विधियों का कोई सीधा धार्मिक अथवा आध्यात्मिक महत्व नहीं है। वे तो आधिदैविक जगत् के परिज्ञान के लिए चित्र के समान साधन रूप से परिकल्पित किये गये हैं। अतएव यास्क ने याज्ञदैवते पुष्प-फले भवतः (१/२०) में यज्ञ ज्ञान को पुष्प-स्थानीय और दैवत ज्ञान को फल स्थानीय कहा है जैसे पुष्प फल की उत्पत्ति में निमित्त होते हैं। वैसे ही याज्ञिक प्रक्रिया का ज्ञान आधिदैविक ज्ञान में साधन है।

यहां पर यास्क के उद्धरण का भाव विप-

रीत लिया गया है। वस्तुत: यास्क तीनों प्रक्रियायों: (अधियज्ञ, अधिदैव और अध्यात्म) में मंत्रों का अर्थ स्वीकार करता है। यास्क के याज्ञदैवते पुष्पफले भवत:" के साथ "देवताध्यात्मेवा" पद को क्यों छोड़ दिया गया। यास्क यज्ञ को पुष्प और दैवत को फल और दैवत को पुष्प और अध्यात्म को फल मानता है। लेखक के अनुसार यज्ञ पुष्प है क्योंकि दैवत ज्ञान का साधन है। तो फिर उसी न्याय से यहां पर यास्क के अनुसार दैवत भी पुष्प है क्योंकि अध्यात्म ज्ञान का साधन है। फिर यह कहना सुतराम् अयुक्त है कि यज्ञ विधियों का सीधा धार्मिक अथवा आध्यात्मिक महत्व नहीं और वह केवल आधिदैविक जगत के परिज्ञान के लिए चित्र के समान है। यहाँ पर यास्क वचन से ही लेखक का विचार कट जाता है। यह लेख ऋषि के भी विरुद्ध है। वे लिखते हैं—परन्तु मंत्रेश्वरावेव याज्ञदैवते भवत इति निश्चय: पृ० ३३५ यज्ञे तु वेदमंत्रोच्चारणात्सर्वत्रैय तत्प्रार्थना भवतीति वेदितव्यम्। यहां पर यज्ञ से अध्यात्म का सीधा सम्बन्ध ऋषि ने माना है। इतना ही नहीं। यदि लेखक की बात ठीक है। तो "प्रजापतये स्वाहा" से मौन आहुति देने से कौन सा दैवत पक्ष सिद्ध होता है।

पृष्ठ १४ पर लेखक ने ब्रह्मपारायण यज्ञ के लिए आर्यसमाज के विद्वानों पर कटाक्ष किया है परन्तु ब्रह्मपारायण यज्ञ में ब्रह्मा बनने के लिए लेखक महोदय का ही दल अग्रसर रहता है। टंकारा में भी ऐसा ही शिवरात्रि पर हुआ था। कोई भी आर्य समाज का विद्वान् यह नहीं कहता कि ब्रह्मपारायण के अतिरिक्त शेष श्रोत आदि यज्ञ याग नहीं होने चाहिए अथवा वे अनुपादेय हैं। आर्य समाज के विद्वानों का तात्पर्य केवल इतना ही है कि ब्रह्मपारायण अथवा चतुर्वेद पारायण भी हो सकता है। क्या इसकी विधि ऐसी नहीं बनायी जा सकती कि इससे भी आधिदैविक जगत् का ज्ञान हो सके ? इष्ट का चयन विधि किस आधिदैविक जगत् का ज्ञान कराती है ? इस पर भी प्रकाश डालना चाहिए था। जो वस्तुत: प्रत्यक्ष विज्ञान का साधक है उसे छोड़ ही क्यों दिया जावे। दूसरे पृष्ठ पर पुन: अपना विज्ञापन दिया गया है जो केवल आत्म प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं। अन्वेषक का अनुसंधान करते समय एक अंग पर जोर देने का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिये कि दूसरे अंग को खंडित करदे।

इसी पृष्ठ पर सार्वदेशिक सभा की अनुसंधान समिति का अप्रासंगिक वर्णन लाकर उस पर कटाक्ष किया गया है। ऐसा पत्र श्रीमान् पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार की ओर से विद्वानों को भेजा गया है। यदि उसमे लेखक महोदय को कोई विप्रतिपत्ति थी तो उन्हें अथवा सार्वदेशिक की अनुसंधान समिति को लिखते "टंकारापत्रिका में उसका जिक्र करना और—मखौल उड़ाना कहाँ तक ठीक है। क्या मरुत का अर्थ सैनिक लेकर शासनविज्ञान और सैनिक विज्ञान का दिग्दर्शन कराया जावे तो यह रिसर्च की कोटि में नहीं आता। क्या साइंस अथवा विज्ञान शब्द का अर्थ केवल आधिदैविक जगत् का ज्ञान मात्र ही है अन्य विज्ञान नहीं। गृह विज्ञान (Home Science) राजनीतिविज्ञान (Political Science) भी तो विज्ञान ही है। क्या ये सत्यविद्या की सीमा में नहीं

# दयानन्द दीक्षा का मतमतान्तरों पर प्रभाव

## (१) पौराणिक विद्वानों पर प्रभाव

[लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड, ज्वालापुर]

ऋग्वेद का एक मन्त्र है जिस में सत्य की महिमा का प्रतिपादन करते हुये बतायागया है कि—

**ऋतस्यहि शुरुधः सन्ति पूर्वीऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।**
**ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा-बुधानः शुचमान आयोः॥**
॥४-३-८॥

अर्थात् सत्य ही सनातन शोक निवारक शक्ति है। सत्य का धारण पापो को दूर कर देता है। सत्य का शब्द ऐसा तेजस्वी और प्रभावशाली होता हैं कि वह बधिर के कानों पर पड़ कर उसे भी जगा देता है। महर्षि दयानन्द ने जिस पवित्र भाव से सत्यार्थ प्रकाश लिखा था उसका परिचय प्रारम्भिक भूमिका के इन शब्दों से मिल सकता है।

'मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयो-जन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य हैं उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश करना समझा है। वह सत्य नहीं कहा-ता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य

---

आते ? वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है–इसका अर्थ सभी सत्यविद्याओं का पुस्तक है—केवल आधिदैविक का ही नहीं। ऋषिदयानन्द ने भी ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य में अध्यापक-उपदेशक, राजा-प्रजा आदि अर्थ मंत्रों के किये हैं। क्या यह मखौल के विषय हैं मरुतः पर क्या निघण्टु में केवल आधिदैविक पक्ष का ही पोषक है ? किसी भी सत्यविद्या को वेद से अनु-संधान करना चाहिए। दर्शनविज्ञान भी तो एक सत्यविद्या है परन्तु वह आधिदैविक जगत् से ही सम्बद्ध नहीं है। क्या उसका अन्वेषक प्रशस्य नहीं है?

अच्छा यह है कि सब विद्वान अपना कार्य करें और उचित दिशा में कार्य करें। अपने स्वार्थमात्र को आगे लाकर संगठन और व्य-क्तियों का खण्डन करने में न लगें। सिद्धान्त के मत-भेद में अवश्य विचार करें—परन्तु छाप लगाकर ऋषि की अन्य लोगों की पगड़ी उछाल कर अपना प्रोपैगेण्डा करना और अपने को सबसे श्रेष्ठ दिखलाने का प्रयत्न करना ठीक नहीं। इस लेख से मेरा तात्पर्य किसी का दिल दुखाना नहीं है—केवल सत्य को समक्ष लाना है। परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि धर्मार्य सभा का कार्य वर्तमान में अधिक बढ़ जाता है। उसे ऐसी वस्तुओं पर विचार करना ही पड़ेगा।

के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसाही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है ? इसी लिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य वा स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।'' इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी और न किसी का मन दुखाना या किसी की हानि पर तात्पर्य है किन्तु जिस से मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं।'' इसी पवित्र भावना से महर्षि दयानन्द ने मत मतान्तरों की युक्तियुक्त निष्पक्ष आलोचना को जिस का इन विभिन्नमतों के नेताओं पर जो प्रभाव पड़ा उस का संक्षेप से इस लेख में दिग्दर्शन कराना चाहता हूं।

## पौराणिक मतावलम्बी विद्वानों पर प्रभाव

महर्षि दयानन्द के समकालीन विद्वानों में से वेद विषयक अनेक सुप्रसिद्ध ग्रन्थों के सम्पादक और 'त्रयी चतुष्टय' 'त्रयी परिचय' 'निरुक्तालोचन' 'ऐतरेयालोचन' इत्यादि ग्रन्थो के लेखक आचार्य सत्यव्रत जी सामश्रमी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके ग्रंथ देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन पर महर्षि के लेखों की बड़ी छाप पड़ी थी। उदाहरणार्थ उन्होंने अपने 'ऐतरेयालोचन' नामक संस्कृत ग्रन्थ में पौराणिक मत के विरुद्ध निम्न सिद्धांतों का समर्थन किया है :—

## गुण कर्म के कारण वर्ण परिवर्तन

इस विषय में उन्होंने महर्षि द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥
(आपस्तम्ब)

'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवंतु, विद्याद्वैश्यात्तथैवच॥
(मनु० १०–६५)

इत्यादि को ऐतरेयालोचन में उद्धृत करते हुये अपना सिद्धान्त इन शब्दों में रखा है कि–

कर्मतो जात्यन्तरतापि नासत्यम्। तदेवमेषु पञ्चजनेषु कर्मादि भेदत एव ब्राह्मणः
क्षत्रियः वैश्य इति त्रय आर्याः।
दासो दस्युश्चेति द्वावनार्याविति स्थितम्॥
ऐतरेयालोचनम्॥ (पृ० १५–१६)

अर्थात् कर्म से जाति (पौराणिकों के अनुसार ब्राह्मणादि जातियां हैं उन्हीं के अनुसार इस का प्रयोग किया प्रतीत होता है) में अन्तर हो जाता है यह भी असत्य नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये वर्ण कर्मादि भेद के कारण ही हैं और कर्मादि भेद के कारण ही दास दस्यु अनार्य कहे जाते हैं।

इस प्रकरण की समाप्ति पर आचार्य सत्यव्रत जी ने लिखा कि–

तदित्थं महिदासस्य शूद्रागर्भजातत्वेऽपि ब्राह्मणग्रन्थ प्रवचनं ।
शक्तिमत्त्वेन ब्राह्मणत्वं स्यात् संजातं किमत्र चित्रम् ।।
पृ० १६

अर्थात इस प्रकार शूद्रा माता के गर्भ से उत्पन्न होने परभी महिदास ऐतरेय में ब्राह्मणग्रंथ के प्रवचन की शक्ति से सम्पन्न होने के कारण ब्राह्मणत्व आ गया इस में आश्चर्य की बात ही क्या है ?

## वर्तमान पण्डित मण्डली पर प्रभाव—

आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी पर महर्षि दयानन्द के वर्ण व्यवस्था विषयक लेखों का जो प्रभाव हुआ उसको मैंने ऊपर संक्षेप से दिखाया है। काशी तथा अन्य स्थानों की पण्डित मण्डली के लगभग १०० विद्वानों के हस्ताक्षरों से प्रयाग की अर्धकुम्भी के अवसर पर जो घोषणा की गई और जो भारतीय संस्कृति सम्मेलन प्रधान कार्यालय काशी द्वारा प्रकाशित हुई उस का भी इस प्रसङ्ग में उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। उस में कहा गया है कि 'सत्यसनातन भारतीय हिन्दू (आर्य) धर्म स्वभावतः ही सार्वभौम धर्म है उसी के आधार पर हमारे कण्वादि महर्षियों ने प्राचीन काल में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' इस वैदिक आज्ञा के अनुसार संसार के मिश्र आदि विभिन्न देशों में जाकर मनुष्य समाज को सुव्यवस्थित और सभ्य बनाकर भारत देश की कीर्ति को जगद् व्यापी बनाया था। सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपा ययौ। म्लेच्छान् संस्कृतमाभाष्य, तदा दश सहस्रकान् वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे। सपत्नीकांश्चतान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत् ।। द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ।। तेषां चकार राजानं राजपूत पद ददौ (भविष्य पुराण ४ प्रतिसर्ग खण्ड अ. २१)

मनुभगवान् के

एतद्देशप्रसूतस्य, सकाशादग्र जन्मनः।
स्वंस्वं चरित्र शिक्षेरन, पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

इस आदेश में भी उपर्युक्त उद्देश्य निहित हैं अर्थात् संसार भर के लोगों के चरित्र को समुन्नत करने का दायित्व एतद्देशीय विद्वान ब्राह्मणों के ऊपर है। इस लिये आज, जब भव्य भारत का सूर्य फिर उदय हो रहा है, हमारा कर्तव्य हैं कि पुनरपि भारत की कीर्ति और संस्कृति को सर्व व्यापी बनाया जाये और यह आवश्यक है कि मनु महाराज की "ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एक जातिस्तु 'शूद्रो नास्तितु पञ्चमः" ।। इस व्यवस्था का उपयोग देश काल की आवश्यकता को देखकर किया जाये। इस व्यवस्था के तथा अन्य स्थितियों के आधार पर हमारा मत है कि परम्परागत जन्म परक वर्ण व्यवस्था के समान ही **"कर्मणा वर्णः" का सिद्धान्त भी आर्य (हिन्दू) धर्म को मान्य है ।।"** (भारतीय संस्कृति सम्मेलन प्रधान-कार्यालय काशी द्वारा प्रकाशित पुस्तिका से उद्धृत)

पण्डित मण्डली की यह घोषणा अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। इस के अनुसार म्लेच्छ की शुद्धि तथा गुणकर्मानुसार वर्णों में उनका विभाजन, चार ही वर्ण हैं पञ्चम वर्ण नहीं इस से पञ्चम वर्ण की सत्ता अथवा अस्पृश्यता का अन्त तथा

संसार भर के लोगों के चरित्र को समुन्नत करने के दायित्व की स्वीकृति से समुद्र यात्रा को पाप मानने के विचार की समाप्ति इत्यादि स्पष्ट तया सूचित होते हैं और यद्यपि जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त का पूर्णतया निराकरण इस में नहीं किया तथापि 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धान्त को भी आर्य (हिन्दू) धर्म के लिये मान्य मानना एक हर्ष जनक बात है जिस का सब उदार विचार शील सज्जन हार्दिक अभिनन्दन करेंगे। पूर्वापेक्षया अधिक उदार पण्डित मण्डली की इस विचार धारा पर महर्षि दयानन्द के युक्ति प्रमाण सङ्गत विचारों की छाप स्पष्ट है।

## स्त्री शूद्रों के वेदाधिकार का प्रश्न

पहले हमारे पौराणिक भाई जो अपने को सनातनधर्मी के नाम से कहते हैं 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम् इतिश्रुतेः' इस श्रुति के नाम से कल्पित एक वचन की (जो वस्तुतः किसी प्रामाणिक ग्रन्थ का वचन नहीं) दुहाई देकर स्त्रियों और शूद्रों को वेदाधिकार से सर्वथा वञ्चित रखते थे किन्तु जब महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अपने अमर ग्रन्थों में 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।' इत्यादि मन्त्रों तथा श्रौतसूत्रादि के प्रमाण देकर उपर्युक्त अशुद्ध अनुदार, अन्याय अविचार की धज्जियां उड़ाईं तो पौराणिक पण्डित मण्डली में भी खलबली मच गई और अनेक उच्चकोटि के विद्वानों ने महर्षि द्वारा प्रतिपादित इस मन्तव्य का समर्थन किया कि वेद का अधिकार सब को है। इन विद्वानों में से आचार्य सत्यव्रत जी सामश्रमी, सनातनधर्म महामण्डल देहली के प्रधान पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री और सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालय के कार्यनिवृत्त आचार्य पं० चूडामणि जी शास्त्री (वर्तमान स्वामी विज्ञानभिक्षु जी) का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। आचार्य सत्यव्रत जी सामश्रमी ने ऐतरेयालोचन के पृ० १७ में लिखा "शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षाद् वेदवचनमपि प्रदर्शितं स्वामिदयानन्देन" (वाजसनेयिसंहिता २६।२)

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय। इति तदेवं वेदविधेः पक्षपातदोषभाक्त्वं न कथमपीति स्पष्टम्॥ (ऐतरेयालोचने पृ० १७) अर्थात् शूद्रों के वेदाधिकार विषय में स्वामी दयानन्द जी ने साक्षात् यजु० २६।२ के यथेमां वाचं कल्याणीम्। इस मन्त्र का प्रमाण दिया है और इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि वेद के विधान में किसी तरह के पक्षपात का दोष नहीं लगाया जा सकता।

पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री ने अपने अत्युत्तम ग्रन्थ 'अछूतोद्धार निर्णय' में 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः' (यजु० २६।२)

पञ्चजनामम होत्रं जुषध्वम् (ऋग्वेद)

शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् इत्यापस्तम्बः

अग्निर्ऋषिः पवमानाः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् (यजु० २६।९) के भाष्य में उव्वटाचार्य का वचन—

'पाञ्चजन्यः——पञ्चजनेभ्य हितः चत्वारो वर्णा निषाद पञ्चमाः तेषां हि यज्ञेऽधिकारोऽस्ति। महीधरः—पाञ्चजन्यः—पञ्चभ्योजनेभ्यो हितः विप्रादयश्चत्वारो वर्णाःपञ्चमो निषादश्चेति पञ्चजनास्तेषां यज्ञाधिकारात्। पञ्चयज्ञ—विधा-

नंतु, शूद्रस्यापि विधीयते । (विष्णुस्मृति ५।१९)

इत्यादि प्रमाण देकर लिखा है कि कहिये, निषाद रथकार, हीन जाति सौधन्वा को तो जैमिनि यज्ञाधिकार देते हैं फिर तुम्हारे ही मत में इनसे उत्तम शूद्र को भला किस प्रकार यज्ञ वा वेद से वे वञ्चित रख सकते हैं। 'निमित्तार्थेन बादरिस्तस्मात् सर्वाधिकारं स्यात् (मीमांसा ६।१।२७) इस सूत्र में तो आपके मत में भी चारों वर्णों को यज्ञाधिकार बादरि मुनि के मतानुसार सिद्ध है। अब हम पूछते हैं कि क्या बादरि ऋषि नहीं हैं जिनके पुत्र बादरायण ऋषि हैं।" (पृ० २८)

"इस प्रकार के अनेक स्थानों में चारों वर्णों को यज्ञाधिकार तथा वेदाधिकार के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार **वेदादि सच्छास्त्रों में जब अनेक प्रमाण शूद्रों के यज्ञ, वेद और संस्कार के अधिकार के विषय में मिलते हैं तो फिर उनको इनसे वञ्चित करना सनातनधर्म के विरुद्ध ही है।** (अछूतोद्धार निर्णय पृ.५३) स्त्रियों के वेदाध्ययन और यज्ञोपवीत धारण के अधिकार का भी श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री ने अनेक प्रमाण देकर अछूतोद्धार निर्णय के पृ० ४८ में समर्थन किया है और लिखा है कि "गृह्यसूत्रों में विवाह के कन्या के उच्चारण करने के अनेक मन्त्र लिखे हैं। गृहसूत्र में ही क्या ? स्वयं वेदमन्त्रों के अर्थों से यह प्रतीत होता है कि ये कन्या के उच्चारण के मन्त्र हैं, कन्योचित यज्ञोपवीत का भी शास्त्रों में विधान पाया जाता है--

पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां, सावित्रीवाचनं तथा ॥

(निर्णयसिन्धु पृ० १४) में उद्धृत यम वचन

अर्थात् पुराकल्पग्रन्थों में स्त्रियों को यज्ञोपवीत का विधान किया गया है। इसी प्रकार वेदाध्ययन और गायत्री उपदेश का भी इनको अधिकार है। "इत्यादि (अछूतोद्धार निर्णय पृ० ४८) मुलतान सनातनधर्म महाविद्यालय के कार्य निवृत्त आचार्य विद्वद्वरेण्य पं० चूडामणि जी शास्त्री शाण्डिल्य ( वर्तमान स्वामी विज्ञान भिक्षु ) तो महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित होकर इन सब से आगे बढ़ गये हैं। उनके 'भारतीय धर्मशास्त्रम्' नामक ग्रन्थ में जिसके कुछ ही भाग अब तक प्रकाशित हुए हैं इस उदार विचारधारा का सर्वत्र प्रदर्शन है। अभी उनकी 'मानव जीवन की सफलता' नामक पुस्तक ( जो भारतीय धर्मशास्त्रम् का १७ वां प्रकरण है ) प्रकाशित हुई है। इसके प्रकाशक पं०चन्द्रकांतजी शास्त्री ५५१गन्दा नाला बाजार गली बैल साहेब दिल्ली है। इसमें से कुछ उद्धरण देना इस प्रसङ्ग में मुझे महर्षि दयानन्द की दिव्य विचारधारा के अत्यन्त उच्चकोटि के श्री पं० चूड़ामणिजी शास्त्री जैसे सनातनधर्माभिमानी विद्वानों पर प्रभाव को दिखाने के लिये आवश्यक प्रतीत होता है। इस ग्रंथ की भूमिका में विद्वच्छिरोमणि पं० चूड़ामणि जी शास्त्री वेदों की सार्वभौमता को सिद्ध करते हुये लिखते हैं:--

'भारतीय विद्वानों ने इतने वेदों के ऊंचे विचार मानवमात्र को नहीं दिये, इन्हें केवल जन्म के द्विजों तक ही सीमित रखा, इसका मुझे महान् खेद है। भारतीय शूद्र भी इसे न

पढ़ें, महिलामात्र भी इसे न पढ़े--पढ़ जाने पर इन्हें कठिन से कठिन दण्ड मिले यहाँ तक इन्हें प्राणांत दण्ड तक मिले, ऐसा निर्णय सचमुच हमें लज्जित करने वाला साबित हुआ है। वेद में कहीं भी ऐसा निषेध नहीं मिलता। वहां पग २ पर 'जनेभ्यः, पुरुषेभ्यः, नः, वः। का ग्रहण मिलता है।...बस शिक्षित पुरुष स्त्री समाजमात्र को द्विज माना जा सकता है। अतः विश्वभर का शिक्षित मनुष्यमात्र वेद का अधिकारी माना जा सकता हैं। (भूमिका पृ० ५)

उव्वट महीधर आदि के वेद भाष्यों के विषय में उन्होंने लिखा है कि दूसरा विषय है मंत्रों का अर्थ करना। इसमें भी हमसे भूल हुई है। हमने लौकिक संस्कृत के आधार पर कही कहीं ऐसा मंत्रार्थ कर डाला जिसे पढ़कर हम स्वयं लज्जित होते हैं। श्री महीधर और उव्वट के वेदभाष्य पढ़कर हमारा हृदय लज्जित हो जाता है। इन्हीं भाष्यों को पढ़कर विदेशी विद्वानों ने यह निर्णय दे दिया कि 'ये गडरियों के गीत हैं।' फिर सायणाचार्य ने निरुक्त का आधार लेकर कुछ ठीक अर्थ किया **फिर भी यह अर्थ बहुत कुछ अन्धेरे में रह गया**। अब इस बीसवीं शताब्दी में श्री स्वामी विरजानन्द जी को सुशिष्य स्वामी दयानन्द महोदय मिला, जिसने वेदों पर अच्छा प्रकाश डाला।

अपनी इस पुस्तक में ब्राह्मण ग्रंथों को वेद न मान कर महर्षि दयानन्द के समान वेद-व्याख्यान रूप ही माना है।

व्याख्यानं ब्रह्मणो यत्र, ब्राह्मणंतत् प्रकीर्तितम्।
ऋषिभिर्गूढमन्त्रार्थः स्फोरित बुद्धिवृद्धये ॥२०॥
मन्त्र ब्राह्मणयोर्नाम, वेदं ये तु प्रचक्षते।
तन्न तेष्वेव वेदानां, लेखनात् प्रत्यपादयः ॥२१॥

श्लोक १५४ से १५६ पृ० ४२ में उन्होंने गङ्गा आदि में स्नान से पापनाश का खण्डन करते हुवे लिखा है कि--

गङ्गादिसरितांस्नानं पुण्यम् आयुष्यवर्धकम्।
परं पापोपशमके, न कदापि च सिध्यति ॥१५५
एवं कृते पापरोधो न कदापि भविष्यति।
पापं कृत्वा पुनः स्नानं पुनः पापं पुनः शुचिः॥

अर्थात् गङ्गादि में स्नान से पाप का नाश नहीं होता। यह पापनाश का विश्वास पाप वर्धक हैं। इत्यादि

इस प्रकार विचारशील पौराणिक महाविद्वानों पर भी महर्षि दयानन्दजी को वेद-सम्मत विचारधारा का प्रभाव पड़ा है यह स्पष्टतया ज्ञात होता है। अन्य मतमतान्तरों पर प्रभाव को मैं फिर कभी दिखाऊंगा।

# ऋषि दयानन्द सरस्वती का महाराणा सज्जनसिंह ( उदयपुर ) को पढ़ाना ।

पाठकगण ऋषिवर का हस्तलिखित पत्र देखें यह ऋषि का अपना हस्त-लेख है । इस छोटे से पत्र में राजाओं को तैयार करने की भावना झलक रही है और वेदभाष्य की उत्कण्ठा । अनाथाश्रम की चिन्ता और कन्याओं को प्रोत्साहन यह पत्र बता रहा है । मेरे बाद कार्य कैसे चलेगा इस धुन में स्वीकार पत्र ऋषि बना रहे हैं । छहों शास्त्रों की प्रामाणिकता यह पत्र बता रहा है । व्याकरण बिना जाने श्लोकों का भी अर्थ नहीं होता, वेद की तो कथा ही क्या, यह भी इस पत्र में निहित है । पत्र में तिथियों का प्रयोग है । अन्त में भी तिथि संवत् पहले ऋषि ने दिया है बाद में तारीख व्यवहारार्थ दी है । ऋषि अपने पूरे हस्ताक्षर 'दयानन्द सरस्वती' ऐसा करते थे केवल दयानन्द नहीं, अतः ऋषि का पूरा नाम दयानन्द सरस्वती है, दयानन्द नहीं । आर्यो ऐसा ही व्यवहार बोलने और लिखने में करो ।

संपादक-वि० श्र० 'व्यास'

ओ३म्

श्रीयुत चौधरी आलम सिंह जी आनंदित रहो
विदित हो कि हम उदयपुर से फाल्गुन वदि ७ सप्त-
मी के दिन ४ चित्तौड़ में आन पहुंचे और अब यहां
से फाल्गुन वदी त्रियोदशी के दिन शाम की रेल
में बैठकर चतुर्दशी के दिन शाहपुरा कु राज
मेवाड़ ज़िला अजमेर को जो कि बड़ी रूपाहेली
से ८ कोश है जायगे और जो काग़ज़ दो तो
इसी पते से देना - आगे हाल यह कि एक
स्वीकार पत्र राज उदयपुर में मुद्रांकित स्वीकृत
हुआ और उसके अधीपती श्रीमान् दिवाकर
हुए हैं बाकी सब सभासद जब छपेगा वि-
दित होगा और एक मान्य पत्र भी दिया है और
छः शास्त्रों का मुख्य २ विषय और मनुस्मृ-
ति का राजधर्म तथा विदुर प्रजागरादि के श्लो-
क कुछ व्याकरण और अन्वय की रीति भी श्री-
मानों ने मुझसे पढ़ी - और रु० १२००) कलदार
और एक दुशाला वेदभाष्य के सहायार्थ औ-
र एक साधारन दुशाला और रु० १००) कलदार
रामानंद ब्रह्मचारी को और ५००) रु० कलदार
फीरोजपुर के अनाथाश्रम के लिये और रु०
३००) कलदार उसी में कसीदा करनेवाली लड़-
कियों को पारीतोषिक प्रदान किया

मिती फाल्गुन वदी १२ संवत् १९३९ तदनुसार
तारीख ६ मार्च सन् १८८३ ई०

(हस्ताक्षर)

दयानन्द सरस्वती

( इस मूल पत्र को म० मामराज जी ने ता० १५-४-२७ को प्राप्त किया । )

# मान मर्दन

[ लेखिका--श्रीमती लीलावती जी 'प्रभाकर' ]

## पात्र-परिचय

स्वामी विरजानन्द दण्डी—श्री दयानन्द सरस्वती के गुरु।

राधा कृष्ण - मन्दिर निर्माता, वैष्णव सेठ रंगाचारी का शिष्य।

कृष्ण शास्त्री - काशी का उद्भट विद्वान् रङ्गाचारी का गुरु।

रंगाचारी--सेठ राधा कृष्ण के गुरु, स्वर्गीय शाह जी के मन्दिर का महन्त।

रंगदत्त व गंगादत्त—मथुरा के प्रसिद्ध विद्वान् और दण्डी जी के शिष्य।

लक्ष्मण ज्योतिषी—राधाकृष्ण के ज्योतिषी, कृष्ण शास्त्री के शिष्य।

मुड़मुड़िया पंडया—द्वारकाधीश मन्दिर का अध्यक्ष, कृष्ण शास्त्री का शिष्य।

( मथुरा नगरी, यमुना का किनारा, सायंकाल के समय यमुना जी की नीराजना )

मुड़मुड़िया पंड्या—ज्योतिषी जी ! जय राधा-कृष्ण !

लक्ष्मण ज्योतिषी--जय राधा कृष्ण ! पंड्या जी ! क्या बात है भय्या ! आज सन्ध्या में उपस्थित न हुए ?

पंड्या—कोई विशेष बात तो न थी। भय्या दण्डी जी का यश तो दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। भला कहां गुरु जी ! कहां दण्डी जी !

ज्योतिषी—भय्या बात तो पते की कह रहे हो ! दादा गुरु की विद्या तो अगाध है। गुरुवर रंगाचारी भी कम नहीं। तभी तो लक्ष्मी सरस्वती के चरण प्रक्षालन करती है।

पंड्या—भय्या लक्ष्मी जी का तो सरस्वती जी से विरोध है। शाश्वतिक विरोध है। दोनों बहिनें मिल कर रहना जानती ही नहीं। लक्ष्मी जी भगवान विष्णु की चेरी है, भगवती सरस्वती देवी तो ब्रह्मा जी के साथ रहती हैं। ब्रह्मा जी चतुर्मुख हैं। बड़े भारी वावदूक हैं, इसी लिये तो सरस्वती जी उनके संग प्रसन्न हैं। महाराज तुलसीदास जी भी तो बखान कर गये हैं, "पण्डित सोई जो गाल बजावा" विष्णु महाराज तो गम्भीर मुद्रा में रहते हैं। लोकोद्धारार्थ, भक्तजन त्राणार्थ समय २ पर दया कर स्वर्ग सौख्य बिसार कर मानव-देह में अवतीर्ण होते हैं। कितने दयालु हैं देव ! पर ब्रह्मा जी तो विद्या के अभिमान में अज्ञ संसार की ओर निहारते भी नहीं !

ज्योतिषी - देवाधिदेव ब्रह्मा जी के विषय में ऐसी अनास्था उपयुक्त नहीं। देखो ! तुम सम्भवतः भूल गये हो ! दादा गुरु जी अभी २ बून्दी से सवा लाख का पुरस्कार जीत कर आये हैं। काशी जी की पण्डित मण्डली में उनका समादर है। न्याय और व्याकरण उनके जिह्वाग्र है। महाराज रंगाचारी भी ऐसा विद्वन्मूर्धन्य गुरु पा निहाल हो गये।

देखो न ! गुरु जी का भाग्य वैभव ! सेठ राधाकृष्ण जैसे करोड़पति भी अपना पैत्रिक जैनमत छोड़ वैष्णव हो गये हैं। महा महिमशाली भव्य विशाल मन्दिर बना गुरु चरणों में अर्पित कर दिया। यही तो सरस्वती का समादर है। जहां सरस्वती का मान होगा, वहां लक्ष्मी सरस्वती के चरणों में आकर लोटेगी।

पंड्या—यह रंग जी वाला मन्दिर ?

ज्योतिषी—नहीं, भय्या रंग जी वाला मन्दिर तो दूसरा भेंट किया है। पहला भव्य मन्दिर तुमने देखा नहीं ? बड़ा विशाल है, वह दिया था। पर सेठ जी को वह भेंट जंची नहीं। सोचा—

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः !

देवाधिदेव गुरुदेव के चरणों में यह भेंट जंची नहीं। ईंट पत्थर की भेंट साधारण जन कार्य हो गया। इसमें क्या सेठपना रहा ! ऐसी भेंट करूं, जो किसी ने न की हो ! लोग भी तो समझें गुरु सांसारिक वैभव से बहुत बड़ा है। उसके चरण-धूलि स्वर्णिम मेरु पर्वत से मूल्यवान् है। यह तो पाषाण हैं, मृत्तिका है।

पंड्या—फिर भय्या ! सेठ जी की बुद्धि किस परिणाम पर पहुंची। हमारी समझ में तो कुछ आया नहीं ! इससे बढ़ कर और क्या किया जा सकता है ?

ज्योतिषी—भय्या ! सेठ जी की भक्ति पराकाष्ठा पर पहुंची हुई है। धन का मोह तो मानो सेठ जी को है ही नहीं। विचार कर इस परिणाम पर पहुँचे कि भगवान् का मन्दिर और बनवाया जाये, और इस बार सोने का बनवाया जाये। लंका सोने की सुनी जाती है, शिव महाराज के भक्त महात्मा रावण ने बनवाई थी। वह कौन सी थी पता नहीं। वर्त्तमान लंका तो सोने की है नहीं। महादेव जी तो दिगम्बर हैं, भस्मावलिप्त हैं, रुण्डमुण्डालंकृत हैं। यदि उनकी भेंट सोने की लंका हो सकती है तो क्यों न मैं अपने इष्ट भगवान् कृष्ण के नाम पर अपने गुरु के चरणों में सोने का मन्दिर भेंट करूं।

पंड्या—सोने का ?

ज्योतिषी—हां भैया सोने का ! सेठ जी ने वही किया। सोने का मन्दिर बना गुरु के चरणों में भेंट किया। वही तो यह सोने का मन्दिर है जहां रंगाचार्य जी महाराज निवास करते हैं।

पंड्या—वाह वाह सेठ जी ! धन्य हो ! आपने अपना राधाकृष्ण नाम सार्थक कर दिखाया। लक्ष्मी का सर्वश्रेष्ठ उपयोग तो यह ही है।

ज्योतिषी—यह भी कोई २ भाग्यवान् कर सकता है। भैया ! देखो तो वह सामने चौबे महाराज जा रहे हैं। सुना है यह भी दण्डी जी के शिष्य बन गये हैं।

पंड्या—यह कैसे हो सकता है ? यह तो काशी जी के माने हुए विद्वान् हैं, मथुरा में इनकी बड़ी कीर्ति है, यह वहां कैसे पहुंचे ?

ज्योतिषी—कुछ पढ़ना ही था तो महाराज कृष्ण शास्त्री के चरणों में आते ! वहां चक्षुहीन, क्रोधी, भुसुर के पास पहुंचे, आश्चर्य है ?

पंड्या—आओ ! सुनें तो कुछ परस्पर में शास्त्र-चर्चा सी कर रहे हैं।

( २ )

( घाट पर घूमते हुए—नीराजना के दीप यमुना में चमक रहे हैं )

रंगदत्त चौबे—भैया गंगादत्त जी ! बताओ तो यह—"अजामेकां लोहित, कृष्ण, शुक्लां बह्वीः प्रजाः सृजमानमनेकरूपा" में कौन सी लाल, काली, भूरी बकरी का उल्लेख है, और फिर वह अनेक प्रकार की प्रजायें उत्पन्न करती हैं। यह कौन सी बकरी हो सकती है ?

गंगदत्त चौबे—ब्रह्मा जी की नाभि से, क्षीर-सागरशायी विष्णु के नाभि कमल से, हिरण्यमय

अण्ड से, मत्स्य से, कच्छप से आदि अनेक प्रकार से उत्पत्ति आती है पर 'अजा' से तो कहीं सुनने में नहीं आई—

वय्याकरण लक्ष्मण ज्योतिषी-अजा इति कथम् व्युत्पन्नम्।

रंगदत्त—अजाद्यतष्टाप् इति टाप्।

ज्योतिषी—अत इति सिद्धे अजादि ग्रहणं किमर्थम् ?

गंगदत्त-'अजाद्युक्तिः ङीषो ङीपश्च बाधनार्थः'

मुड़मुड़िया पंड्या—अस्तु ! अजाद्युक्तिः इत्यत्र कः समासः ?

गंगदत्त—"षष्ठी तत्पुरुषः" अजादेरुक्तिः= अजाद्युक्तिः।

पंड्या—अहह: एतदेवात्र भवतां पाण्डित्यम्। तव मतम्-त्वद्गुरोर्वा ?

गंगादत्त—अशालीनतेयम्—गुरुमधिक्षिपसि। नूनमत्र षष्ठी-तत्पुरुषः।

पंड्या—कौन कहता है, यहां तो सप्तमी तत्पुरुषः है। अजादौ उक्तिः=अजाद्युक्तिः।

गंगदत्त—यहां सप्तमी किससे हुई ?

पंड्या—यहां षष्ठी किससे हुई ?

गंगदत्त—'कर्तृकर्मणोः कृति' से ? सप्तमी किससे हुई ?

पंड्या—'सप्तम्यधिकरणे' से ?

गंगदत्त—अधिकरण कहां है ?

पंड्या—सप्तमी है तो है ?

गंगदत्त—कहां है, यही तो प्रश्न है यहां कौन-सी विभक्ति है ?

पंड्या—प्रश्न है समास कौन सा है ?

गंगदत्त—वाह महाराज ! बिना विभक्ति ज्ञान के समास करते हो, निराली शैली है ? जाओ, गुरु जी से पूछो ! केवल दूध मलाई खाने और द्वारकाधीश के पूजन से व्याकरण नहीं आता ?

पण्ड्या—अच्छा तुम भी अपने गुरु जी से पूछ लेना ? षष्ठी तत्पुरुष ही बतायें तो शास्त्रार्थ के लिये तैयार रहना ! इसी ज्ञान पर मथुरा में रहना चाहते हो ?

( ३ )

## स्थान—गतश्रम नारायण का मन्दिर

( जनता की अपार भीड़, सेठ राधाकृष्ण मुड़मुड़िया पण्ड्या और लक्ष्मण ज्योतिषी आदि एक ओर दूसरी ओर गुरुवर विरजानन्द के शिष्य विद्वान् पंडित रंगदत्त व गंगदत्त तथा गुरुवर वनमाली चौबे आदि भी

रंगदत्त—भैया गंगदत्त ! देखो गुरुवर विरजानन्दजी का पाण्डत्य कैसा अपूर्व है। 'अजाद्युक्तिः' में षष्ठी तत्पुरुष ही है। गुरुजी ने कितना डिण्डिम घोष के साथ आह्वान किया, लिख कर मन्दिर पर चिपकवा दिया, पर कृष्ण शास्त्री का तो साहस ही नहीं होता। आज कृष्ण शास्त्री आते नहीं दिखते।

गंगदत्त—हां भैया ! आप ठीक ही सोचते हैं। पहले मौखिक आह्वान किया, कोई उत्तर नहीं दिया आह्वान लिखकर दीवार पर चिपका दिया तब न बोले। मेला समाप्त हो जाये तब शास्त्रार्थ होगा।

सेठ ने शास्त्रार्थ को कितना टालना चाहा। सेठ भी सब समझता है, गुरु जी का पारावार कृष्ण शास्त्री नहीं पा सकता। इसलिए पहले कहा, शिष्य भी तो बड़े २ पण्डित हैं; उन्हीं का शास्त्रार्थ हो जाये।

जब यह भी चाल न चली तो देखो भैया रुपये का अड़ंगा डाला, इस सेठ के लिए तो २००) कोई बात नहीं, पर वे वीतराग दण्डी २००) कहां से लायेंगे, यही सोच रुपये की शर्त लगा दी। पर वाह दण्डी जी ! न जाने कहां से किस प्रकार तत्काल २००) की व्यवस्था कर ही दी। अरे भैया सिद्ध हैं, गायत्री माता का उन पर अनुग्रह है।

रंगदत्त—हां भैया ! देखो तो सेठ ने दिखावे के लिये अपने पास से १००) डाल दिये। क्या दो सौ उन्होंने अपने दादा गुरु कृष्ण शास्त्री से लिये होंगे, यह सब झूठ है।

गंगदत्त—हां भैया ! सेठ तो समझता था, दण्डी जी रुपये तो दे न सकेंगे, मैं हल्ला मचवा दूंगा, दण्डी जी शास्त्रार्थ से भाग गये, हार गये। पर वाह रे दण्डी ! झूठे को घर तक नहीं छोड़ा, कृष्ण शास्त्री की आज पोल खुल जायगी।

रंगदत्त--अभी तक कृष्ण शास्त्री आये नहीं ! गुरु जी तो तैयार बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

गंगदत्त—भैया कुछ कहो ! हमारा मन कहता है, कृष्ण शास्त्री कभी नहीं आएंगे।

उपस्थित भीड़—शास्त्री जी को बुलाओ, शास्त्रार्थ कराओ। अब क्या प्रतीक्षा है ?

सेठ—दण्डी जी भी तो नहीं आये हैं ?

गंगदत्त--वे तो तय्यार बैठे हैं। शास्त्री जी के आते ही पहुंच जायेंगे। शास्त्री जी को बुलाइये।

भीड़ हां ! हां !! बुलाओ शास्त्री जी को। चैलेञ्ज दिये कितने दिन हो गये।

सेठ--आप लोग शोर न करें, शास्त्री जी महाराज अभी आते हैं।

एक आवाज--महीनों से नहीं आये, आज क्या आयेंगे ?

सेठ—अच्छा ! आप लोग उतावले न हों ! खा··मो· श। भैया रंगदत्त चौबे जी ! आप लोग वार्तालाप आरम्भ करें। शास्त्री जी अभी आते हैं। तनिक जनता चुप हो जायगी। आओ ! आओ ! क्या सोच रहे हो। जनता बिगड़ी जा रही है।

रंगदत्त--(खड़े होकर) हम तो पहले ही विवाद कर चुके हैं, और नया क्या विवाद होगा ?

पण्ड्या—हां, जी ! विवाद क्यों नहीं होगा ? श्रीमान् जी 'अजाद्युक्तिः' पद में षष्ठी तत्पुरुष सात जन्म में नहीं हो सकता। अब तो दादा कृष्ण शास्त्री जी ने भी कह दिया है।

रंगदत्त—शास्त्री जी ने कह दिया है तभी तो शास्त्रार्थ के लिये ललकारा है गुरु जी ने। शास्त्री आये न, गुरु जी तैयार बैठे हैं।

सेठ जी--विषय पर बोलिये। विषय से बाहर की बात मत कीजिये।

ज्योतिषी जी - बस, चौबे जी ! इतना ही पाण्डित्य है। तभी तो आंखों के अन्धे से पढ़ने जाते हो।

चौबे लोग—हर हर महादेव ! यमुना मैया की जय !! कृष्ण शास्त्री जी की जय !!!

सेठ जी--व्रज विहारी की जय ! बंसी वाले गोवर्धनधारी की जय ! लो भाई चौबो ! यह पांच सौ रुपये। हम प्रसन्न हैं, बहुत प्रसन्न हैं, शास्त्रीजी की जय। श्री कृष्ण शास्त्री जी की जय !

( ४ )

## स्थान-- रंग जी का मन्दिर

सेठ राधाकृष्ण--गुरु देव ! आपका जय घोष हुआ। गगन भेदी जय घोष हुआ।

कृष्ण शास्त्री--वहां तो आपने भक्तों के सहारे हमारी विजय करा ही दी। पर······

सेठ—पर क्या ?--यही कि जनता स्थिति को जान गई, और दण्डी का उन पर प्रभाव है। गुरु देव चिन्ता न करें। अभी ज्योतिषी जी को काशी जी भेजता हूँ। रहे सहे काम को लक्ष्मी जी पूरा करेंगी। अरे कोई है, ज्योतिषी जी को बुलाओ !

ज्योतिषी—कहिये ! अन्नदाता क्या आदेश है ? कल तो धाक बैठ गई, वाह सेठ जी, धन्य हो आपकी गुरु-भक्ति !

सेठ--देखिये, ज्योतिषी जी ! अभी विजय को

पूर्ण करने के लिए एक उपाय और करना है। आप काशी जी जाइये। जितना रुपया चाहिये, ले जाइये। काशी विद्वन्मण्डल की व्यवस्था ले छाप कर बाटेंगे।

ज्योतिषी—वाह सेठ जी! बहुत ही सुन्दर उपाय सोचा। इससे आगे तो दण्डी जी भी कुछ न कर सकेंगे। सेठ जी, लाखों रुपया व्यय होगा। सोच लीजिये—

सेठ जी—कोई चिन्ता नहीं, लक्ष्मी भगवान् की है। जो भी व्यय हो कर डालो, व्यवस्था लाओ।

❀ ❀ ❀

## दण्डी जी की कुटिया

दण्डी जी—बेटा रंगदत्त! क्या काशी ने व्यवस्था दे दी, 'अजागु क:' में सप्तमी तत्पुरुष है।

गंगदत्त-हां गुरू देव! लक्ष्मी के चरणों पर सरस्वती झुक गई। चान्दी की तलवार सब करा सकती है।

दण्डो जी---क्या कहा?

गंगदत्त—गुरुदेव तीन लाख रुपया लेकर यह व्यवस्था दी गई।

दण्डी जी—बेटा! क्या शास्त्रार्थ भी चांदी से ही होगा! क्या पाण्डित्य संसार से उठ गया। नहीं बेटा विश्वास नहीं होता।

गंगदत्त—अच्छा, गुरुदेव! किसी को काशी जी को भेज कर आजमा लीजिये।

दण्डी जी—हां यह ठीक है।

× × ×

रंगदत्त—गुरुदेव! सारी काशी छान मारी। सब आपका ही पक्ष ठीक बताते हैं, एक भी तो विपरीत नहीं।

दण्डी जी—फिर बेटा! व्यवस्था ले आये।

रंगदत्त—नहीं, गुरु जी! पण्डित कहते हैं, सेठ ने तीन लाख व्यय किया है। तुम भी तीन-चार लाख व्यय करो, व्यवस्था मिल जायगी।

दण्डी जी—भारत का दौर्भाग्य उदय हो गया। कैसे त्राण होगा? गंगदत्त नहीं आया?

गंगदत्त--गुरु देव! काम नहीं बना, कलेक्टर ने कहा, दण्डी जी को प्रणाम कहना, और हमारी ओर से कहना, सेठ के झगड़े में न पड़ें, इसी में जीत है। शैतान से परमात्मा भी घबराता है।

दण्डीजी-अच्छा बेटा! भगवान्‌की इच्छा। पर इतना अवश्य कह देते हैं, इस अन्याय का अवश्य अन्त होगा। तुम में से ही कोई हमारे पक्ष को पुष्ट करेगा, सत्य की जय होगी। नवीन ग्रन्थों का उन्मूलन होगा। आर्ष ग्रन्थों का पठन पाठन होगा। दयानन्द अभी आया है, होनहार है, उस पर विश्वास है। ऋषियों की ज्योति जगायगा। आर्ष-पाठविधि की जय होगी, वेद का विजय होगा।

ओ३म् शम्

**ऋषियों के गौरव गुरु विरजानन्द की जय!**
**गुरुधाम की जय!! ऋषि पाठविधि की जय!!!**
**दयानन्द की जय!!! वेदमाता की जय!!!**
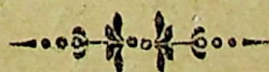
# भगवान् विरजानन्द और दयानन्द

[लेखक—श्री प्रो० भीमसेन जी शास्त्री]

इस लेख में लेखक ने गुरु विरजानन्द की जीवन घटनाओं का वर्गीकरण किया है। पाठकगण इस लेख में अश्रुतपूर्व बातें पायेंगे। श्री पं० भीमसेन जी शास्त्री इस समय आर्य जगत् में गुरु विरजानन्द दण्डी और महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वती जी के जीवन चरित्रों के प्रामाणिक व्यक्ति हैं—

संपादक—वि० श्र० व्यास

धर्म प्राण भारत के सारे धार्मिक आचार्य (शंकर रामानुजादि) भी महर्षियों के सिद्धांत का अनुसरण करके, सदा ही वेद की दुहाई देते रहे हैं। पर वह दुहाई मात्र ही रह गई थी। वस्तुतः पौराणिक धर्म ने जो विविध रूप धारण कर लिये थे, वे परस्पर विरुद्ध तथा वेद के अत्यन्त विरोधी थे। धर्म का स्वरूप इतना धुंधला हो चुका था कि हमारे ऊंचे से ऊंचे विद्वान् भी सत् व असत् के विवेक में पूर्णतया असमर्थ थे। इन लोगों ने अपने पूज्य पुरुषों के ऐसे घृणित चरित मन लिये थे, जिन को लेकर मुसलमानों व ईसाइयों ने पौराणिक धर्म की छीछालेदर कर रखी थी। राज शक्ति व तर्क बल दोनों ने पौराणिकों पर पूरी शक्ति से आक्रमण किया हुआ था।

देश की राजनीतिक दशा भी चिरकाल से अत्यन्त अवसाद कारिणी थी। विक्रम सं० ७६९ (खी० ७१२) में सौवीर प्रदेश (वर्तमान सिन्धु प्रान्त) मुस्लिम-पादाक्रान्त हो गया था। तीन शताब्दी पश्चात् तक अधिकांश पञ्चाल प्रदेश इन बर्बरों द्वारा अधीन कर लिया गया था। भयंकर लूट-पाट व नर-रक्त-होली लीला विषय तो पश्चिमी भारत के अन्यान्य प्रदेश भी बन चुके थे। विक्रम सं० १२५० में पृथ्वीराज रूप देदीप्यमान नक्षत्र के अस्त होने पर उत्तर भारत घोर अवसाद मयी निशा से परित्रस्त होने लगा था। अनेक यवन सुल्तान व सम्राटों ने प्रत्येक बकरीद पर लाख २ हिन्दुओं का बलिदान करके अपनी रक्त-पिपासा को उपशान्त किया था। जब तब विशिष्ट पौराणिक पर्वों पर अनेक तीर्थ-स्थानों पर सहस्रशः मनुष्य तलवार के घाट उतार दिये जाते थे। बौद्ध तो इन बर्बरों के प्रहारों को सर्वथा न सह सके, वे एक पदे ही शत प्रतिशत विधर्मी बन गये। अतएव भगवान् बुद्ध की जन्म भूमि भारत में बौद्ध धर्म पूर्णतया नामावशेष मात्र रह गया था। वैदिक धर्मियों के बड़े २ सरस्वती-भण्डार भस्मसात् कर दिये गये।

पुराकाल में आर्य, विधर्मियों को स्वधर्म में दीक्षित करते रहे थे। इसी प्रक्रिया से सारे अरब प्रदेश में शैव धर्म का प्रचार मुहम्मद साहब के काल तक था। भारत में जितने शक हूण आदि रह गये वे सब भारतीय धर्मो ने पूर्णतया आत्मसात कर लिये। यही प्रक्रिया मुसलमानों पर भी प्रारम्भ हुई। मुसलमानों ने देखा कि उनकी सत्ता भी इस देश में निर्मूल हो जायेगी। अतः उन्होंने कृपाण के बल से इसे रोक दिया। शुद्ध करने वाले तथा होने वाले दोनों ही वध कर डाले गये। धीरे धीरे आर्य लोग अपनी आत्मसात् करने की शक्ति को ही भूल गये। कहते हैं कि अकबर ने हिन्दू धर्म में दीक्षित होना चाहा तो उसे स्वीकार नहीं किया गया।

श्री विरजानन्द के जन्म-समय तक आर्यों के प्रयत्नों से मुस्लिम शक्ति बहुत निर्बल हो चुकी थी, पर आर्य अपनी फूटादि दोषों के कारण उससे लाभ न उठा सके। अनेक नये २ धर्मों व सम्प्रदायों ने धर्म की आत्यन्तिक दुर्दशा कर दी थी। मुसलमानों का स्थान हिन्दू न ले सके। उनकी दुर्बलताओं से सुपरिचित नीति निपुण अंग्रेजों ने परिस्थिति का पूर्ण लाभ उठाया, और धीरे २ भारत वर्ष को अधिकृत करते गए। अब हिन्दुओं को निगलने वाली एक और शक्ति उदित हो चुकी थी। गोवा आदि अनेक स्थानों में ईसाइयों ने अपने अत्याचारों के आगे मुसलमानों को भी लज्जित कर दिया। ईसाई बुद्धि बल में मुसलमानों से कहीं बढ़े चढ़े थे। अतः भारत के लिये एक नया भय स्थायी रूप से उदित हो चुका था। पुरानी आर्थिक व्यवस्था के नष्ट हो जाने से अंग्रेजों के काल में भयंकर दुर्भिक्ष बहुत पड़े और प्रत्येक दुर्भिक्ष में सहस्त्रों बुभुक्षित ईसाई बना लिये गये।

इस धर्म प्राण देश की उपर्युक्त अन्धकार मयी स्थिति में आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व पूर्वीय पंजाब के करतारपुर (जलन्धर से नौ मील पश्चिम) के समीप छोटी सी बेईं नदी के किनारे गङ्गापुर ग्राम में एक पण्डित नारायण दत्त सारस्वत ब्राह्मण रहते थे। बेईं नदी का प्राचीन नाम भिद्य (देखो पाणिनीय शब्दानुशासन) भिद्योदध्यौ नदे ३. १. ११५) है (भिनत्ति कूलं=किनारे तोड़ने वाली) इस ने गङ्गापुर ग्राम को बहाकर अपना नाम सार्थक किया।

इस समय से १८१ वर्ष पूर्व सं० १८३५ (खी० १७७८) में पण्डित नारायण दत्त की धर्म पत्नी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। ऐसा प्रतीत होता है इन दिनों ये देवी अपने पितृ कुल को गई हुई थी अतः विरजानन्द का जन्म नूर महल में हुआ। इस भव्य बालक का पांचवे वर्ष में विद्यारम्भ हुआ पर ये सम्भवतः डेढ़-दो वर्ष में ही शीतलाक्रान्त हो नेत्र हीन हो गये। पितृ चरण ने आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत कर कर्म-काण्ड व संस्कृत पढ़ानी प्रारम्भ की। यह भारद्वाज गोत्रीय बटु ३—४ वर्ष में ही पिता व माता के लाड़—प्यार से वञ्चित हो गए। भावज व भाई के कटु शासन ने इन्हें शीघ्र ही घर से निकलने पर विवश किया। इन्होंने १२ वर्ष की अवस्था में गङ्गा पुर छोड़ दिया। उस समय तक संस्कृत बोलने का कुछ अभ्यास हो गया था, और इन्होंने संस्कृत भाषण का व्रत ले लिया। कुछ काल

साधुओं के साथ देशाटन करते रहे। विवेक बढ़ने ने पर ऋषीकेश के घोर बन में गायत्री जपने का संकल्प हुआ। मार्ग में किसी भक्त ने यात्रा का प्रबन्ध कर दिया।

ये १५ वर्ष की अवस्था में ऋषीकेश पहुँचे। तीन वर्ष गङ्गा में खड़े होकर गायत्री का जप किया अब ये हरद्वार आगए। घर पर नेत्रहीन होने से पूर्व ही कुछ उर्दू फारसी का अभ्यास हो चुका था, और फिर पिता से सारस्वत व्याकरण का कुछ अंश पढ़ चुके थे। हरद्वार में इन्होंने मध्य कौमुदी षड्लिंग पर्यन्त पढ़ी। फिर एक विद्वान् तपस्वी स्वामी पूर्णानन्द जन्म (सं० १८०४) से सन्यास लेकर विरजानन्द नाम पाया। उनसे सिद्धांत कौमुदी पढ़ी। इन्हीं पूर्णानन्द सरस्वती से विरजानन्द ने आर्ष ग्रन्थ विषयक श्रद्धा का बीज दृढ़ रूप में पाया। उनकी काव्य प्रतिभा भी जाग्रत हो गई थी और उन्होंने रामचन्द्र विषयक श्लोक रचे थे। तदनन्तर भाष्यान्त व्याकरण पढ़ने के विचार से गङ्गा के तटानुतट काशी को चल पड़े। लगभग एक वर्ष में काशी पहुँचे। इस समय विरजानन्द २२ वर्ष के थे। विक्रम संवत १८५७ (ख्री० १७००) चल रहा था। काशी पर तो अंग्रेजों का प्रहार सम्वत् १८३८ (ख्री० १७८१) में ही हो चुका था। अवध भी उनकी डाढ़ों में आ चुका था। ख्री० १८०० में नाना फड़वीस को विष दिलवाकर अंग्रेज, महाराष्ट्र में भी निष्कण्टक हो चुके थे। हां देहली पर अधिकार इसके तीन वर्ष पश्चात् हुआ। पञ्जाब के सिंह रणजीत सिंह का, व अंग्रेजों का सम्पूर्ण अभ्युदय, विरजानन्द के जीवन काल की घटनाएं थीं।

विरजानन्द काशी में १० वर्ष से न्यून न रहे होंगे। यहां उन्होंने व्याकरण का पूर्ण अध्ययन किया। दर्शन, उपनिषद, आयुर्वेद भी पढ़े। वे अपनी महती प्रतिभा के कारण काशी की पण्डित-सभा के सदस्य सं० १८६५ से पूर्व बना लिये गए। बड़े २ विद्वान् भी उनका बड़ा आदर करते थे। उन्होंने प्रज्ञाचक्षु उपाधि काशी में पाई।

काशी से विरजानन्द गया गये। मार्ग में चोरों से घेरे गए। निस्पृह संन्यासी के पास पुस्तकों के अतिरिक्त क्या रखा था? गया में इन्होंने वेदान्त का और अध्ययन किया। तदनन्तर ये गङ्गा के किनारे किनारे गङ्गा सागर संगम तक जाकर कलकत्ता गये। वहां पर्याप्त समय रहे। यहां इन्होंने नवीन न्याय, साहित्य आयुर्वेद आदि का विशेष अध्ययन किया। यहीं वीणा-वादन-पुटता प्राप्त की और गायब शतरंज सीखी।

कलकत्ते से विरजानन्द पुनः गंगासागर संगम गए। वहां से ये गङ्गा के दूसरे तट पर पैदल चलते हुए हरिद्वार पहुँचे। तदुपरान्त ये शूकर–क्षेत्र (सोरों) में आकर रहने लगे। इस समय प्रायः सं० १८८० (ख्री० १८२३) चल रहा होगा। उनके इस समय के शिष्यों में बदरिया वासी पण्डित अङ्गदराम (जन्म सं० १८७० प्रसिद्ध विद्वान हुए है।

सं० १८८९ वैशाख वदी में अलवर नरेश विनय सिंह सोकर व (सोरों) गंगा स्नान को आए थे। वे बड़े अनुनय-विनय से नियमित अध्ययन की प्रतिज्ञा करके उन्हें अपने साथ ले गये। विरजानन्द ने अलवर नरेश को पढ़ाने के लिए "शब्द बोध" नामक अभिनव

व्याकरण ग्रन्थ संकलन किया। वे अलवरमें सं० १८९२ तक रहे। विनयसिंह संस्कृत में अच्छे पटु हो गए। अब विरजानन्द भरतपुर, मुरसान, बेसवां में कुछ २ समय ठहरते हुए, सं० १८९३ में पुनः सोरों आगए। इस समय तक बदरिया के अङ्गद राम अपना अध्ययन समाप्त कर चुके थे।

विरजानन्द का द्वितीय सोरों वास प्रायः सं० १८९३ से १९०२ के प्रारम्भ तक रहा। इस समय के शिष्यों में पीलीभीत के अङ्गदराम बड़े अहंकारी पण्डित हुए थे। विरजानन्द सं० १९०२ के आरम्भ में घोर रुग्ण हुए, उनकी अचेतना अवस्था में, ये अङ्गदराम उनकी पोथियां आदि समग्र सामान ले चम्पत हुए। साधुवर्य मथुरादास वैरागी व बदरिया के अङ्गदराम की शुश्रूषा से विरजानन्द स्वस्थ हो गए।

इस समय विरजानन्द पूर्णतया काकिणी-परिहीण थे तथापि उन्होंने एक गाड़ी किराये पर ली व एक भृत्य लिया और मथुरा को चल पड़े। कुछ दूर पर ही उनके भक्त दिलसुखराय कुलश्रेष्ठ मिले, उन्होंने ५ अशर्फियां व ८ रु० भेंट किये, यह यात्रा सुखपूर्वक हो गई। मथुरा में प्रज्ञा चक्षु जी कुछ समय चौक बाजार के समीप गूजरमल की कोठी में ठहरे फिर कुछ समय गतश्रम नारायण के मन्दिर में रहे। यहां से मथुरा के एक रईस लाला केदारनाथ खत्री उन्हें अपने घर पर बड़े आग्रह पूर्वक ले गए और अपने घर के एक स्वतन्त्र भाग में उन्हें बड़े आदर पूर्वक रखा। इस घर में श्री दण्डी जी शेष जीवन ( साढ़े बाईस वर्ष ) सुख पूर्वक रहे। अध्यापन सत्र निर्बाध चलता रहा। दण्डी जी के निर्वाण के पश्चात्, उनके प्रथम माथुर शिष्य, पण्डित युगल किशोर गौड अपने अन्तिम समय तक इस गृह में शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी) व महाभाष्य पढ़ाते रहे। यह घर अब पूर्णतया गिर चुका है। उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा ने बड़े प्रयास से इस स्थान को हस्तगत कर लिया है। यहां इस दीपावली पर बड़े समारोह पूर्वक विरजानन्द स्मारक की स्थापना हो रही है।

मनुष्य जाति को प्रज्ञा चक्षु विरजानन्द का सबसे बड़ा अनुदान "आर्ष-ग्रन्थों की माहात्म्य की उद्भावना" है। हम ऊपर बता चुके हैं कि विरजानन्द के गुरु स्वामी पूर्णानन्द, आर्ष ग्रन्थों के परमभक्त थे। गुरुवर्य से प्राप्त यह सुवर्ण सिद्धांत शनैः २ विरजानन्द के निज अनुभव से परिपुष्ट होता गया। वे इसका कीर्तन समय २ पर, शिष्य मण्डल के सम्मुख करते रहते थे। तथापि शेष संसार के समान, प्रचलित ग्रन्थों को पढ़ाते जाते थे।

परमपिता की कल्याण कामना के अनुसार आज से पूरे १०० वर्ष पूर्व, सं० १९१६ में एक विलक्षण घटना घटित हुई। मथुरा में चूड़ी वाले सेठों का परिवार, समृद्धि तथा धर्मनिष्ठा में विख्यात था। सेठ राधाकृष्ण पहले जैन थे। फिर वे रंगाचारी से दीक्षा लेकर वैष्णव धर्म में प्रविष्ट हुए। (सं० १८९०)। इन्होंने वृन्दावन का सुवर्णमय रंगजी का मंदिर लक्षशः रुपये व्यय करके बनवाकर भक्ति-भाजन गुरुवर्य को समर्पण किया था (सं० १९१३)। रंगाचारी के व्याकरण तथा न्याय के गुरु कुरुक्षेत्र मण्डल निवासी, कृष्ण शास्त्री, बून्दी-नरेश द्वारा समायोजित सभा में

विजयी होकर सवालक्ष का पुरस्कार प्राप्त कर लौटे थे। वे वृन्दावन में अपने शिष्य रंगाचारी के अतिथि हुए। सेठ राधाकृष्ण ने भी अपने प्रगुरु को मथुरा में निमन्त्रित किया। और उनका भक्तिपूर्ण आतिथ्यकर अपने को कृतकृत्य माना। यहां अनेक विद्वज्जनों ने कृष्ण शास्त्री से पढ़ना आरम्भ कर दिया।

एक दिन विश्रान्त घाट पर, सायंकालिक यमुना नीराजन (आरती) के उपरांत दण्डीजी के शिष्य पं० गङ्गादत्त वरुणदत्त कुछवाग्-विलास परायण थे। वहां कृष्ण शास्त्री के शिष्य लक्ष्मण शास्त्री व पण्डया मुखुरिया आ निकले। दोनों दलों में शास्त्रार्थ छिड़ गया। विचार "अजाद्युक्ति" के समास पर था। दण्डी जी के शिष्यों ने षष्ठी-तत्पुरुष बताया, पर कृष्ण शास्त्री जी की शिष्य-द्वयी सप्तमी-तत्पुरुष पर आग्रहाविष्ट रही। दोनों पक्ष, स्वगुरुजन के पास पहुँचे। गुरुजन ने भी, स्व-शिष्यों के पक्ष का समर्थन किया। कृष्णशास्त्री इस अवसर पर दण्डी जी को शास्त्रार्थ के लिए आहूत भी कर बैठे। शास्त्र-समर के सतत बुभुक्षित, प्रज्ञाचक्षु जी ने, आह्वान को तुरन्त सहर्ष स्वीकार कर लिया। शीघ्र ही शास्त्रार्थ का स्थान व तिथि भी निश्चित होगए। जनता उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगी। पर सेठ राधाकृष्ण जानते ही थे कि विरजानन्द सदा ही सारे शास्त्रार्थों में विजयी हुए थे। वे अपने विद्वन्मूर्धन्य प्रगुरु की पराजय की आशङ्का से परम्परित्रस्त थे। उन्होंने प्रसिद्ध कर दिया कि पण्डया मुरमुरिया व लक्ष्मण शास्त्री अपने गुरु के प्रतिनिधि बनकर दण्डी जी से शास्त्रार्थ करेंगे, यह सुन दण्डी जी ने कहला भेजा—"हम कृष्ण शास्त्री से ही शास्त्रार्थ करेंगे।" अब सेठ राधाकृष्ण ने नई चाल चली।

कृष्ण शास्त्री के नाम से २००) भेजकर कहलाया गया—"कृष्ण शास्त्री २००) शर्त के रखते हैं। दण्डी जी भी २००) रखेंगे तो शास्त्रार्थ होगा। इस समय से सौ वर्ष पूर्व, २००) काल के दो सहस्र से भी अधिक मूल्य-वान् थे। सेठ राधाकृष्ण ने सोचा कि दण्डीजी २००) रख न सकेंगे और शास्त्रार्थ टल जायगा। पर दण्डी जी ने तत्काल २००) भेज दिये। ये ४००) शास्त्रार्थ के निश्चित मध्यस्थ सेठ राधाकृष्ण के पास रहे। इसमें उन्होंने १००) अपनी ओर से मिलाकर इन ५००) को, शास्त्रार्थ-विजयी के लिये जमाकर लिया।

शास्त्रार्थ का निश्चित स्थान (गतश्रुम-नारायण का मन्दिर) दण्डी जी के स्थान के समीप ही था। उन्होंने नियत तिथि को, निश्चित समय से पूर्व अपने दो शिष्यों को वहां भेज दिया कि कृष्ण शस्त्री के आते ही उन्हें बुला ले जायं। शास्त्रार्थ-मध्यस्थ, सेठ राधा कृष्ण तो आ गए पर कृष्णशास्त्री को नहीं लाए। उन्होंने उभय पक्ष के शिष्यों के शास्त्रार्थ का थोड़ा सा नाटक रचाकर, विरजानन्द के पराजय की घोषणा करा दी और शर्त के ५००), सब चौ जौबों को भेंट कर दिये। उन्होंने तीन लाख रुपये व्यय करके, काशी की पण्डित मण्डली से व्यवस्था मंगवा ली कि अजाद्युक्ति में सप्तमी-तत्पुरुष है। दण्डी की को यह सब जान बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कुछ दिन पढ़ाना बन्द रखा और विचार-परायण रहे। अन्त में उन्होंने निश्चय किया—"अनार्ष ग्रंथ अनर्थ के मूल हैं। ये भ्रांतियों के जनक हैं

अतः इनमें असत्यपक्षों को भी आश्रय मिल जाता है।" उस दिन से उन्होंने अनार्ष ग्रंथों को पढ़ाना सर्वथा बन्द कर दिया। अस्सी वर्ष की अवस्था में समग्र महाभाष्य कण्ठस्थ किया और उस दिन से यावज्जीवन शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी) और महाभाष्य ही पढ़ाया। प्रज्ञाचक्षु जी का यह शुभ निश्चय ही वस्तुतः धर्म व विद्याक्षेत्रमें यावत् महाव्याधियों का सच्चा निदान है। संस्कृतवाङ्मय का पुनः प्रचार इसी सिद्धांत के आश्रयण से सम्भव है।

कृष्णशास्त्री अपने घर चले गए। कुछ मास पश्चात् लक्ष्मण शास्त्री का देहान्त बड़े कष्ट से हुआ। इसके १-२ मास पश्चात् सेठ राधाकृष्ण भी संवत् १९१६ मार्गशीर्ष कृ. १२, सोम (२१-११-१८५९) को इस लोक से विदा हो गये।

यह आर्ष-युग-प्रवर्तिनी सं० १९१६ की घटना, विरजानन्द के जीवन की सबसे महत्त्व-पूर्ण घटना है। इसने युगान्तर उपस्थित कर दिया। इसके बिना न विरजानन्द को कोई स्मरण करता न दयानन्द को जानता। वेद, वैदिकधर्म तथा संस्कृत -वाङ्मय के अनुपम प्रचारक आर्य समाज का अस्तित्व, इस घटना के बिना असम्भव था। हम मथुरा में वस्तुतः आर्ष-युग प्रवृत्ति की शताब्दी मना रहे हैं और इस महिमामयी घटना के १०० पश्चात् विरजानन्द के स्मारक का शिलान्यास हो रहा है।

बिरजानन्द स्वयं इस घटना को इतना महत्त्वपूर्ण समझते थे कि इस समय से अपनी वय गिनते थे। वे अपने पूर्व जीवन को वृथा यापित कहते थे।

विरजानन्द की बड़ी इच्छा थी कि कोई नरेश, सार्वभौम विद्वत्सभा का आयोजन करे और उसमें ग्रंथ मर्यादा पुनः स्थापित होकर, आर्ष ग्रंथों की स्थापना तथा अनार्ष ग्रन्थों का निरास हो जाय। इससे अशेषविध अनिष्ट मिट जायंगे। विरजानन्द के आज्ञाकारी शिष्य अलवर नरेश विनयसिंह का स्वर्गवास सं० १९१५ में हो गया था। वे जीवित होते तो दण्डी जी की इच्छा सुखेन पूर्ण हो जाती। दन्डीजी आगरा दरबार के समय (सं० १९१६ मार्गशीर्ष) आगरा जाकर जयपुर नरेश रामसिंह से मिले। जयपुराधीश्वर ने कुछ समय पश्चात् इस सार्वभौम सभा की आयोजन का वचन दिया पर मन्त्रियों के मतिकर्दम में फंसकर, स्ववचन निर्वाह न कर सके। दण्डी जी ने काश्मीर व गवालियर के नरेशों और अन्त में विक्टोरिया को भी पत्र लिखे पर उनका मनोरथ सिद्ध न हुआ। मथुरा के प्रायः सारे विद्वान् उनके शिष्य बन गये। बाहर से आये विद्वानों से भी वे आर्ष ग्रंथ की महत्ता स्वीकार करा लेते थे। पर इन सब बातों का प्रभाव तात्कालिक था। उसमें स्थायित्व न था। विरजानन्द के समान देश की राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक दुर्दशा का जानने वाला अन्य कोई न था। वे देश की कल्याण-कामना धारे हुये, अध्यापन कार्य करते हुये, सं० १९२५ आश्विन बदि १३ सोमवार (१४-९-१८६८) को स्वर्गवासी हो गए। पाणिनि व कात्यायन की निर्वाण तिथि भी त्रयोदशी है पर मास, पक्ष का पता नहीं। विरजानन्द का भी त्रयोदशी को निर्वाण हुआ।

विरजानन्द ने ३॥ वर्ष अलवर में पढ़ाया।

[शेष पृष्ठ ५५१ पर]

# विश्व भाषाओं का आदि स्रोत

## ( वैदिक संस्कृति )

[ लेखक—श्री पं० रामगोपाल जी बी० एस०सी०, भाषा विशेषज्ञ, नई दिल्ली ]

प्रस्तुत लेख में लेखक ने दर्शाया है कि भाषाओं का जो वर्गीकरण पाश्चात्य विद्वानों ने किया है जिसका अन्धानुकरण भारत के पी० एच० डी० और डी० लिट् उपाधि धारी कर रहे हैं और जिस विचार धारा के प्रभाव से आर्य समाजी कहे जाने वाले इतिहास पर लिखने वाले भी बहक जाते हैं, वह मिथ्या और काल्पनिक है। इससे विपरीत वस्तु स्थिति यह है कि संसार की सब भाषाएं संस्कृत से निकली हैं। इस विषय को समझने के लिए पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य की सृष्टि एक ही स्थान पर हुई है, वहां से ही मनुष्य सारे संसार में फैला है वह आदि सृष्टि का मनुष्य संस्कृत बोलने वाला था जो भाषा वेद से सीखी थी। वे मनुष्य जब इधर उधर गये तब जल वायु के प्रभाव से उच्चारण में अन्तर हुआ। यही भाषाओं की उत्पत्ति में कारण हैं, प्रत्येक मनुष्य के आदि पूर्वज संस्कृत ही बोलने वाले थे सब संसार का मानव एक कुटुम्ब के समान है।

सम्पादक—वि० श्र० 'व्यास'

(१) आधुनिक भाषा शास्त्र के अनुसार संसार भर की भाषाओं और बोलियों को लगभग ११ साधारण विभागों में बांटा गया है। यह विभाग निम्न प्रकार हैं :—

(१) बुशमैन (२) बन्टू (३) सुदानी (४) हामी (५) सामी (६) भारोपीय (७) यूराल अलराइक (८) एकाक्षर (९) काकेशस (१०) द्रविड़ (११) अनिश्चित।

इन विभागों में भी भाषाओं के सम्बन्ध में यह धारणा है कि सारे भाषा परिवार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, क्योंकि यह भाषायें और बोलियां स्थानीय जनपदों की स्वाभाविक स्वतन्त्र आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त निर्मित हुई हैं। इस कल्पना के आधार पर उन्हें भिन्न होना ही चाहिये। इस प्रकार सारे भूमण्डल को अनेक भाषाओं और उपभाषाओं में बांट दिया गया। यह विभाजन इतना प्रबल और एक देशीय कर दिया गया कि प्रत्येक जनपद और देश दूसरे जनपद वा देश के प्रति विरोध का नहीं तो उपेक्षा का भाव अवश्य रखने लगा। इन भाषाओं के आधार पर ही कुछ अंश में मनुष्य जाति को बांटने का

प्रयत्न किया गया और इसी प्रकार मनुष्यों को जातियों में भी बांट दिया गया।

(२) हम प्रस्तुत लेख में यह विचार करते हैं कि क्या वास्तव में संसार की भाषाएं भिन्न परिवारों की हैं और उनका मूल कोई एक भाषा नहीं है। ऊपर भारोपीय भाषा का नाम हमने लिया है। यह भाषा परिवार भारतवर्ष, अफगानिस्तान, ईरान, एशिया कोचक, बलकान, आस्ट्रिया, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड, स्केण्डीनेविया, रूस, फिनलैंड और आइसलैंड तक के भूभाग में बोली जाने वाली भाषाओं का समूह है। इन भाषाओं के शब्दों के रूपान्तर में जो उपसर्ग, प्रत्यय और विभक्तियां प्रयोग में लाई जाती हैं, उनके व्यवहार की विधि कुछ समान है। यही कारण है कि इनको 'भारोपीय' परिवार में गिना जाता है। अन्य १० परिवारों की भाषाओं का भारोपीय परिवार की विधि से रूपान्तर नहीं होता! इस कारण शेष १० परिवारों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों का विचार है ५० वर्ष पूर्व तक 'संस्कृत' भाषा को अन्य भारोपीय भाषाओं की जननी समझा जाता था। परन्तु 'तालव्य नियम' के आविष्कार से संस्कृत भारोपीय भाषाओं की बहन मात्र रह गई है। यह कल्पना कर ली गई कि आदि भाषा कुछ और थी जो अब लुप्त हो चुकी है। उसे खोज कर सामने नहीं लाया जा सकता। उस भाषा का रूप कैसा था, उसकी विचित्र कल्पना इन लोगों ने की है, जिसके विषय में इस स्थान पर विचार करने से लेख का विस्तार बढ़ जायगा।

(३) यह सब भूल इस कारण हुई है कि भाषा वैज्ञानिकों ने भाषाओं का अध्ययन ऊपर से किया। बड़े नगरों की खरी बोली और ग्रामों में प्रयुक्त भाषा पर विचार करके कुछ नियम बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न मिली। अन्त में यह विचार छोड़ दिया गया कि मौलिक भाषा (सब भाषाओं की जननी) की खोज की जाय। केवल प्रत्येक देश की भाषा का विस्तृत ज्ञान अथवा खोज करके उसके सम्बन्ध में ग्रन्थ लिखे गये। यह ग्रन्थ प्रत्येक भाषा का पूरा इतिहास देने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि यह भाषा संसार की अन्य भाषाओं से किसी प्रकार सम्बन्धित है कि नहीं। दूसरे शब्दों में क्या कोई ऐसी भाषा है जो सारी भाषाओं की जननी हो। यहां हम इस कल्पना पर विचार नहीं करना चाहते कि आरम्भ में मनुष्य बोलता न था। वह संकेतों से काम चलाता था। बाद में भाषा आई जो लिपि बद्ध हुई और ग्रन्थ भी लिखे गये। (हमारे मत में आदिम मनुष्य बोलता था और वह जो भाषा बोलता था, उसका अर्थ समझता था।)

---

[पृष्ठ ५४९ का शेष]

पीढ़ी बदलने पर वहां के लोग विरजानन्द का नाम भी भूल गए। उन्होंने १८ वर्ष सोरों में पढ़ाया। वहां की अगली पीढ़ी भी विरजानन्द का स्मरण न रख सकी। सतत परिवर्तनशील, विनश्वर संसार की ऐसी ही गति है। अपने समय के बड़े प्रभावशाली व्यक्ति २०-२५ वर्ष में पूर्णतया भुला दिये जाते हैं। मथुरा में युगान्तर-कारिणी घटना होने से उनके नाम ने कुछ अधिक स्थायित्व पाया। पर यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती, दण्डी जी के शिष्य न बने होते तो मथुरा में भी ९० वर्ष पश्चात् आज ५-७ व्यक्तियों से अधिक उनका नाम न जानते। उनके शिष्य मण्डल में देशोत्थान सम्बन्धी उनकी विचार धारा को समझने वाला, दयानन्द से भिन्न, और कोई न था।

(४) हमारा मत है कि विश्व की सारी भाषायें उपभाषाएं और बोलियां तथा उपबोलियां वेदभाषा से उद्धृत हैं। यह भाषाएं वा बोलियां नगरों, ग्रामों, पर्वतों, मरुस्थलों, एकान्त भूभागों में जहां कहीं बोली जाती हैं, उनका मूल शब्द वा धातु वैदिक संस्कृत में विद्यमान है। यह तो सारे विद्वान् स्वीकार करते हैं कि वैदिक भाषा सारी लिखित भाषाओं में प्राचीनतम है। इसके प्रसिद्ध ग्रन्थ चार वेद हैं। परन्तु वे यह नहीं मानते कि वैदिक संस्कृत सारी भाषाओं का आदि स्रोत है। हमने ऊपर लिखा है कि उन्होंने भाषाओं का अध्ययन ऊपर की श्रेणी से आरम्भ किया। उत्कृष्ट लेखकों के द्वारा टकसाली भाषा के ग्रन्थों से उन्होंने भाषा को परखा। शब्दों का जो रूप उन्हें मिला वह अपने मूल रूप से इतना भिन्न और दूर हो चुका था कि मूल भाषा से मेल जान लेना अत्यन्त कठिन ही नहीं, किंवा असम्भव हो गया। परिणाम स्वरूप मूल भाषा की प्राप्ति न हो सकी। यदि यह विद्वान् नीचे की श्रेणी से खोज आरम्भ करते तो उनको शब्दों के रूपान्तर होने के सहज नियम प्राप्त हो जाते और उनके आधार पर आदि भाषा उन्हें प्राप्त हो जाती।

(५) वह क्रम इस प्रकार होना चाहिये था किसी भी देश के एक स्थान को केन्द्र मान कर १५० मील के अर्ध व्यास से वृत्त खींच दिया जाय। फिर केन्द्र से परिधि तक ५° की दूरी से ७२ त्रिज्यायें खींच दी जायं। इन त्रिज्याओं पर ७२ अन्वेषक १५० मील की यात्रा ४५० दिन में करें। प्रत्येक व्यक्ति एक मील की दूरी के ग्राम में ३ दिन निवास करके स्थानीय लोगों के व्यवहार में आने वाले शब्दों, उनके उच्चारणों और अर्थ का ज्ञान प्राप्त करें। फिर प्रत्येक एक मील के पड़ाव पर ऐसा करके १५० मील की यात्रा के पश्चात् इस बात की पड़ताल करें कि प्रत्येक वस्तु व क्रिया के लिये कौन शब्द प्रयुक्त होता है और उसका उच्चारण कैसे बदला और १५० मील में शब्द के उच्चारण में क्या रूपान्तर हुए। फिर ४५० दिन के पश्चात् ७२ व्यक्ति गोष्ठी में बैठ कर विचार करें कि उन लोगों के अनुभव इस सम्बन्ध में मिल कर क्या हुए। ७२ दिशाओं में और १५० मील की दूरी की यात्रा में शब्दों के रूपान्तर क्या हुए और उन रूपान्तरों के होने के क्या प्राकृतिक नियम हैं, यह खोज निकालें। इन नियमों के जान लेने पर समझ लें कि शब्दों के रूपान्तर इन्हीं प्राकृतिक मनुज स्वभावों पर होते हैं और वह विश्व के हर देश और भूभाग पर लगभग समान रूप से लागू होते हैं। इन रूपान्तरों के नियमों से हम प्रारम्भिक भाषा से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं और इस निर्णय पर पहुंच सकते हैं कि संसार की भाषायें किस लिखित भाषा से उद्धृत हैं।

(६) हम नीचे कुछ संस्कृत, हिन्दी और साधारण जनों से बोले जाने वाले शब्दों के रूपों को देते हैं:—

| संस्कृत | हिन्दी | लौकिक (प्राकृत) | नियम |
|---|---|---|---|
| कट | चट, चटाई | चटाई | क, च |
| कटाह | कड़ाह | कराह | क, ड़, र |
| सप्त | सात | सत्त, हफ्त | स, ह, प्त, त्त, प, फ |
| कंक | कंघा | कंगा | क, ग, घ |
| चर्पटी | चपाती | चपाती | ट, त, र लोप |
| सरक | सड़क | छड़क | र, ड़; स, छ |
| वत्स | बच्चा, बछड़ा | बच्छा, बछड़ा | स, च, छ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| अष्ट | आठ | अट्ठ | ष्ट, ठ; ट्ठ |
| अरघट्ट | रहट | रहट | अ का लोप। घ ह, |
| | घराट | घराट | रघट्ट घरट्ट घराट (वर्ण विपर्यय) |
| ताम्र | तांबा | तामा | म, ब। र का लोप |
| कुमारी | कुमारी | कुमरि,कौरि, कुंअरि,कुंवरि | वं, अं, औ |
| भक्त | भात, भक्त | भात, भत्त, भगत | क्त, त्त आत क-ग |
| ब्राह्मण | ब्राह्मन | बामन,बम्मन,ब्राह्मन,बिरामन | ब्रा, बा, ब, ब्रा, बिरा |
| मरिच | मिरच | मिर्च, मिच्च | मरि मिर र-र् र्च च्च |
| घृत | घी | घीउ, घिउ, घ्यिओ, क्येह्यो | घृत,घृ, घी-घीउ, क्हीयु. क्येह्यो |
| उष्ट्र | ऊंट | उट्र, ऊठ, उट्ट, उष, उख,शुतर | ष्ट्र-ट्र,ट्ट,ट्ठ,ठ,ट,ष,ख उष्ट्र-उष्तर उश्तर-शुतर |
| हस्त | हाथ | हात, हत्त, दस्त | स्त-त्त, थ, ह-द |
| षोडष | सोलह | सोरह | ड-ल, र ष-ह |
| प्रहर | पहर | पैअर | प्र-प, ह-अ |
| पारी | प्याली | प्याली | पा-प्या री-ली |
| प्रोंछन | पोंछन | पोंछन | प्र-प |
| दोर | डोर | डोर | द-ड |
| दर | डर | डर | द-ड |
| चुल्ल | चुहल | चहल, चुहल | ल्ल-हल |
| वृत्तिस्थी | विस्तोई | विस्तोइया | वृ-वि, त्तिस्थी-स्तोई |
| युवन् | जवान | जवान | यु-ज, व-वा |
| चुलुः | चुल्लू | चुल्लू | लुः-ल्लू |
| अम्ब | हां | हम्ब, हम्बै | अ-ह, म्ब-आं |
| उपसर्या | ऊसरिया | ओसरी,ऊसरी,ओसरिया | उप-ऊ,ओ सर्या-सरिया,सरिया |
| बाजः | बाजू | बाजू | ज-जू |
| माणवः | मौंड़ा | मौंड़ा, मुंडू मुंड्या | मा-मौं ण-ड़ा, ड, ड़ |
| कफोणी | कुहनी | कौनी, कौहनी | फ-ह, ण-न |
| कच्चर | कचरा | कचरा | च्च-च |
| काहल | काहिल | काहिल | ह-हि |
| कुक्षि | कोख | कुक्ख, कुख | क्ष-ख, क्ख कु-को |
| कुर्कुट | करकट | करकट, कुर्कुट | कु-क |
| कर्द | कांदा | कांदा | कर-का द-दा |
| कपाट | किवाड़ | किवार | क-कि पा-वा ट-ड़, र |
| कर्ण | कान | कन्न, कान | कर-का, कन ण-न |
| देहली | देहली | देह्री | ल-र |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| चर्म | चाम, चमड़ा | चम्म, चाम | र्‌ म-म्म, चर्‌-चा | चर्‌म-चमड़, चमड़ा |
| कंकण | कंगन | ककना, कंगना | क-ग ण-न | |
| | मतलब | मतबल | लब-बल | |
| गर्गरी | गगरी | गागर, गगरी | गर-गा, ग | |
| कपोत | कबूतर | खबूतर, कबूतर | प-ब क-ख | |

स्थानाभाव से अधिक शब्द नहीं लिखे गये। यदि इस प्रकार से हम लगभग २०० शब्दों की छानबीन करें तो हमें वह नियम पता चल जायेंगे। जिनसे साधारण जन संस्कृत के शब्दों को भ्रंशित करके उच्चारण करते हैं। इस प्रकार के लगभग ३०० शब्द लिख कर हम निम्न तालिका में लिखित वर्ण परिवर्तन नियम निर्धारित कर सके हैं:—

| मूल रूप | विकारी रूप |
|---|---|
| च | स, क, ज |
| ष | क, ग, च |
| ठ | ट |
| थ | ट |
| व, ब | प |
| क | च, स |
| ध्य | ज, झ |
| फ | प |
| ह | स, ल, ब |
| श | ह, भ, उ, ओ, क |
| अ | इ, ए |
| ट | ड |
| य | स |
| द | ट, ड |
| स | ज, ह |
| ज | स |
| म | भ |
| इ | ऊ |
| ख | स |
| र | ल, ड़ |
| त | ड, ट |
| न | र, ल |
| ग | क |
| छ | स |
| भ | फ, प |
| ल | न |
| ख | क, ग |
| उ | आ, एव, आ, ऊ, ई |

(७) इसी प्रकार यदि अधिक शब्दों को लेकर खोज की जाय तो वर्णों के 'विकार' होने के पूरे नियमों का ज्ञान हो सकता है। इन नियमों को ध्यान में रख कर संसार की भाषाओं, उपभाषाओं, प्राकृत बोलियों और उपबोलियों को वैदिक संस्कृत शब्दों और धातुओं के आधार पर परीक्षण करने से यह सहज ही पता चल जायगा कि वे शब्द मूल में वैदिक संस्कृत के ही शब्द थे। परन्तु करोड़ों वर्षों के ऐतिहासिक काल में वे रूप बदल कर भिन्न से प्रतीत होते हैं। यह रूप किस प्रकार भिन्न हो जाते हैं उसका एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

| मूल शब्द | विकारी रूप |
|---|---|
| उपाध्याय | ओझा, झा |

**विकार क्रम**

उपाध्याय - उवाध्याय - ओध्या, ओझा।

प - व, आ । उपा - ओ, ध्याय - ध्या - झा ( यथा—संध्या - सांझ, बन्ध्या - बांझ, कपोत - कबूतर )

कौन कह सकता है कि कालान्तर में वर्त्तमान 'झा' शब्द विकारित होकर 'जा', 'सा', 'हा', 'ला', 'रा', 'ना' में न बदल जायगा। इस प्रकार 'उपाध्याय' ओझा, झा, जा, सा, हा, ला, रा, ना में परिवर्तित होकर हमें विस्मित कर सकता है।

(८) हमारे लिए वैदिक संस्कृत पदों और धातुओं के विकृत रूप को भारतीय भाषाओं और योरोपीय भाषाओं में खोज निकालना तो अत्यन्त सरल और बुद्धि सम्मत समझा जायगा क्योंकि यह भाषायें तो एक ही परिवार की समझी जातीहैं। अतएव हम ऐसी भाषाओं और बोलियों के कुछ शब्दों पर विचार करेंगे जो सर्वथा वैदिक संस्कृत से भिन्न समझी जाती हैं। आधुनिक भाषातत्वज्ञों की कल्पना के आधार पर तो स्वप्न में भी समान नहीं समझी जाती हैं। हम निम्न देशों की भाषा के शब्दों पर विचार करेंगे—

## (१) ग्रीन लैंड

यह देश उत्तर ध्रुव प्रदेश में है। यह ९-१० मास बर्फ से ढका रहता है। यहां के निवासी ऐस्कीमो कहलाते हैं। यह संख्या में लगभग ४००० और बिल्कुल असभ्य समझे जाते हैं। संसार से यह बिल्कुल कटे हुए हैं। यह बर्फ के घर बनाकर रहते और 'हिरण' वा 'शिशुमार' मच्छ का शिकार करके भोजन प्राप्त करते हैं। खाल के वस्त्र पहनते हैं। वर्त्तमान विज्ञान ने उनको अभी तक नहीं छुआ है।

वाक्य—'अवली सरि पेतेरि पिन्ने सु अर्पोक'= वह मछली मारने के काम में लगने के लिये शीघ्रता करता है।

| शब्द | | अर्थ |
|---|---|---|
| अवली | ... | मारना |
| सरी | ... | मछली |
| सु | ... | वह |
| अर्पोक | ... | करता है |
| पिन्ने | ... | शीघ्रता |
| पेतेरि | ... | काम में लगना |

अब हम प्रत्येक 'पद' पर विचार करतेहैं।

अवली = मारना। सरी = मछली।

अवली = अवृल = अलव = अरव = अर्व। 'अर्व हिंसायाम् (भ्वा०प०) वर्ण विपर्यय और र–ल। अतः अर्व धातु का 'अवल' विकृत हो गया है।

सरी = संस्कृत शब्द 'विसार, विसारिणी' का अर्थ मच्छ और मछली। विसार = वि+सार (सरतेः)। अतः विसार, विसारिणी, विसारी-सार, सारिणी, सारी। सारी - सरी = मछली। 'सरतीति सारी'। अतः सरि संस्कृत के सृ धातु से उद्भूत और सारी का अपभ्रंश व तद्भव रूप है।

पिन्ने = 'भुरण्यति = शीघ्रता करता है। भुरण्य - पिरन्न - पिन्न, पिन्ने...... भ - पि, 'र' का लोप और ण्य - न्न

सु = संस्कृत शब्द 'सः' का विकारित रूप है। स - सु

अर्पोक = 'कृवि हिंसा करणयोश्च (भ्वा०पर०) कृव = कृप = पर्क, अर्पोक (वर्ण विपर्यय से)

अब हम ऐस्कीमो भाषा के दो शब्द और देते हैं जो हमें उपलब्ध हुए हैं।

इगलू=छोटा घर या झोंपड़ी।

केयक=नाव, नौका।

इगलू=वैदिक शब्द 'गयः गृहनाम् (निघण्टु ३-४)'। 'गय' का हीनतावाचक शब्द बोलचाल में 'गयला गयली, गयलू' बनेगा यथा 'कोट' शब्द का कोटला, कोटली, कोटलू और 'छोटे' शब्द का छोटला, छोटली, छोटलू बनता है। अब गयलू-यगलू-इगलू (ग और य का वर्ण विपर्यय तथा य-इ सम्प्रसारण से) अतः गयलू, यगलू, इगलू का अर्थ छोटा घर वा झोंपड़ी प्राकृत वा हिन्दी में हो जायगा जो 'इगलू' से मिलता है।

केयक=हम यदि प्राकृत (हिन्दी) शब्दों 'खेना खेवट, केवट' के अर्थों पर विचार करें तो पता चलता है कि 'खेव' और 'केव' धातुओं का अर्थ 'नाव चलाना' है। और 'खेवट' तथा 'केवट' शब्दों का अर्थ 'नाविक' है। अतः 'केव्' धातु में 'अक' प्रत्यय लगाने पर 'केवक' शब्द बनता है जिसका अर्थ 'नौका' लिया जासकता है। केवक-केयक (व-य या, भवो-भया)

## (२) चैरो देश

यह भूभाग दक्षिणी अमेरिका के धुर उत्तर तट के समीप और फ्लोरिडा के मुहाने के निकट पर्वतीय और वन प्रदेश है। यहां के निवासी भी बिल्कुल असभ्य समझे जाते हैं। वे सभ्यता से कोसों दूर हैं। वे लोग जिस भाषा को बोलते हैं उसका नाम 'चैरो भाषा' है। इस भाषा का हमें केवल एक वाक्य उपलब्ध हो सका है। वह इस प्रकार है :—

'निन अमोखोल नातेन'। इसका अर्थ है 'हमको नाव लादो'।

निन=हमको। अमोखोल=नौका।

नातेन=लाओ, ला दो।

इन शब्दों पर हम विचार करते हैं।

निन=संस्कृत के शब्द नौ और नः को हम देखें।

| मह्यम् | आवाभ्याम् | अस्मभ्यम् |
|---|---|---|
| मे | नौ | नः |

'अस्मद्' शब्द के चतुर्थी में रूप।

यहां 'नौ' और नः से पता चलता है कि 'नः' का ही 'विकृत' चैरो भाषा की चतुर्थी में 'निन' हो गया है।

अमोखोल=संस्कृत के दो शब्द 'अम्बु' और 'कोलः' के संयुक्त करने से अम्बु-कोल शब्द बनता है। अम्बुकोल-अमुकोल-अमोकोल-अमोखोल। अम्बु=जल, कोलः=कटाह, नाव।

नातेन= संस्कृत की धातु 'नी=नय्' पर विचार करने से पता चलता है कि नय-ना का 'आज्ञा' में नातेन रूप चैरो भाषामें हुआ है। बंगला में 'नय्' का 'आज्ञा' में 'नाओ' रूप होता है।

## जुलू भाषा (दक्षिण अफ्रीका)

जुलू　　　　संस्कृत

न्तु (मनुष्य)—जन्तु हन्तु, अन्तु न्तु। जा का ह और फिर 'अ' होकर लोप और न्तु शब्द शेष रहा।

उमु (एक)—ऊन–ऊम=उमु (हिन्दी-उन्तीस=एक कम बीस)

न्ग (से)—एन=यन–जन-गन-न्ग (विपर्यय से) ए-य-ज-ग

चिल (सुन्दर)--प्राकृत का 'चिलकना' का अर्थ सुन्दर दीखना है और हिन्दी में भी प्रयोग होता है
चिलमिलिका (सं)=बिजली, जुगनू (सुन्दरता का भाव)

यवोनकल (दीखना)—अवलोकन-यवलोकन-यवोलकन यवोनकल

## मफोर भाषा

(न्यूगिनी के समीप का असभ्यभूभाग)

मफोर　　　　संस्कृत

स्नून (मनुष्य)—मानुष=नानुष, सानून, स्नून (वर्ण विपर्यय और म-न

ज़ (तुझको)--युष्मद्-जुस्मद्-जुस्म,जुज़-ज़

## मगयार (हंगरी देश की भाषा)

मगयार　　　　संस्कृत

गुरी, गुर्ली (युवती लड़की)—गौरी, गुरी, गुर्ली (प्राकृत हिन्दी गोरली)

## हैमेटिक भाषा

हैमेटिक　　　　संस्कृत

गोई (काटना)--छो-गो-गोई (छ-ग)

लव (मोड़ना)--वल-लव (वर्ण विपर्य्यय से)

गल (भीतर रहना)–गड (अन्तःप्रदेश,रोकथाम)– गल (ड-ल)

## सुडानी (मध्य अफ्रीका)

सुडानी　　　　संस्कृत

त्य त्य (शीघ्र शीघ्र)–त्वर्-त्व-त्य त्य

सि सि (धीरे धीरे)–शनैः,शनैः। सै, सै-सि सि।

## वामंगटो जाति की भाषा

(दक्षिण अफ्रीका)

गोटला (छोटी सभा)--गोष्ठ, गोष्ठी। गोठ, गोठली, गोठला।

लुकोकी (सार्वजनिक सभा)–लौकिकी (लोक-सभा)=लुकोकी

## काफिरी भाषा (दक्षिण अफ्रीका)

काफिरी　　　　संस्कृत

कु (लिये)--प्राकृत हिन्दी का कू और को का (हमकू, हमको) देखिये स्यात संस्कृत के आय (रामाय में) का विकृत रूप कू और को है। आय-आज, आक, क, कू, को। (य-क)

## बन्टू भाषा (दक्षिण अफ्रीका)

बन्टू　　　　संस्कृत

सितन्दा (हम प्यार करते हैं)–सि=हम असमद-अस्-असि (पंजाबी)-सि (बन्टू) 'अस धातु से अस्मद्)

तन्दा=प्यार करतेहैं–तन्त्र (आल्हाद देना, पालन करना) तन्त=तन्द, तन्दा (त=द)

## मैक्सीकन भाषा

मैक्सीकन　　　　संस्कृत

क=भोजन करना–'खै-कै-खदने भ्वा-उभ'। ख-क

ने वल्ल = (न, नौ, नः) न-नेव-नेवल्ल ल्ल ।
प्रत्यय है ।

## अरबी भाषा

अरबी संस्कृत

क्तल् ( = मारना )—श्लथ( मारना )-क्लथ-कथल-कतल
(त=थ और वर्ण विपर्य्यय)

क्तब् (=लिखना)–पुस्त (लिखन) -बु स् त-ब्रु त् स-सुत्ब-कुतब-क त् ब्
(प-ब, स-क और वर्ण विपर्यय)

द्बर् (बोलना) बद-दब-दबर
(वर्ण विपर्य्यय और 'र' का आगम)

जमल (उष्ट्र)–क्रमेल (उष्ट्र)-कमेल-जमेल-जमल-गमल
(यहूदी) (क-ज और 'ए' का लोप)

## तुर्की भाषा

तुर्की संस्कृत

सेव ( प्यार करना )—सेव ( भक्ति करना, अनुगमन करना)

बिज़ (हम)–वय (म्)-वज़-बिज़ (य-ज़)

(सिज़ (तुम)–यूय (म्)-ज़ूज-सूज-सिज
(य-ज-स)

इम (मेरा)–मे-मइ-इम (वर्ण विपर्य्यय)

इन (हमको)-नः-नि.इन (वर्ण विपर्य्यय)

दिर (करना)–धा (करना)-धि-दि-दिर
(र का आगम)

मे (नहीं)—मा नहीं-मे (मा-मे)

सत (घोड़ा)—सप्ति (घोड़ा)-सत्ति-सति-सत
(प्त=त)

## तमिल भाषा

तमिल संस्कृत

पालन (पुरस्कार)–पालन (भरण.पोषण)

गुर्रमु (घोड़ा)- तुरंगम्=उरंगम्=गुरंम=गुर्रम=गुर्रमु ।
(त क लोप और वर्ण विपर्य्यय)

गल (बहुबचन की विभक्ति)--गण-गल (ण-ल)

तैन (दक्षिण)--दक्षिणा.दह्नि-दइन, दैना, दान, दैन-तैन
(बंगला 'दान, डान' । प्राकृत'दैना')

बहु (सहना)--वह (सहना) बहु

नानु (मुझको)–नः-नानु (न का आगम)

मरम (वृक्ष)–महीरुहम्-मईरअम्-मरम
(ह=अ और रु=र)

चेटी (पादप)–कुटि (पादप)-चुटि, चेटि, चेटी
(क=च)

ऊरे (भूमि)—उर्वी (भूमि) ऊरवी-ऊरई ऊरे
(वी-ई)

पो (जाओ)–प्र (जाना) पु-पो (र का लोप)

## फ़ारसी भाषा

| फारसी | संस्कृत |
|---|---|
| फख़र | गर्व - गरब - बगर - फ ख़र (ग - ख, ब - फ और वर्ण विपर्य्यय) |
| शुतर (ऊंट) | उष्ट्र (ऊंट) - उश्तर श उतर - शुतर । (श और उ का वर्ण विपर्य्यय । |
| गरदन (ग्रीवा) | कन्धर (ग्रीवा) - गन-धर - गरधन - गर-दन (क - ग और द-ध तथा विपर्य्यय) |
| चाक़ू (काटने की छुरी) | चक (काटना) -चाक चाक़ू । |

| | |
|---|---|
| जोज़ा (पत्नी, स्त्री) | योषा (स्त्री) - जोषा जोज़ा (य - ज और ष - ज) |

## जापानी भाषा

| जापानी | संस्कृत |
|---|---|
| त्सुमे (पंजा) | सुम (पंजा) हिन्दी में । श्फं - सुम (संस्कृत) फं - मं |
| जामा ) यामा ) पर्वत | ज्माभृत् -जामा, यामा |

## वास्क (पिरैनीज़ पर्वत की) भाषा

| वास्क | संस्कृत |
|---|---|
| न (मुझे) | वः |
| दकार (पास) | निकट (पास) - कट टक - दक - दकार ट - द और विपर्य्यय) |
| कासु (लेजाते हो) | अक्षस्सु - अकसु- कासु कासु । (क्ष - क, वर्ण विपर्य्यय) |
| कित् (जानता हूँ) | कि (जानना) |
| ऐज़ (होना) | अस (होना) । अस-एस - एज़ (अ - ए, स - ज) |
| ने (मेरा) | नः नौ से ने । अथवा मे - ने (म - न) |

## चीनी भाषा

| चीनी | संस्कृत |
|---|---|
| यौ (चाहना) | ईह - चाहना, यीअ, यौ |
| न्यू (मक्खन) | नवनीत (मक्खन) - नवनी (प्राकृत), नौनी, नौ न्यू |
| मु (माता) | मा (माता) - मा, मु । |
| जिन (मनुष्य) | जन (मनुष्य) |
| त्ज़ु (बेटा) | त्मज - (बेटा) - त्ज़ु (म का लोप और उ का आगम) |
| छिह (का) | स्य (का) - छय - छह - छिह |
| छिह (जाना) | श्वि- छ्वि - छिअ - छिह |
| छिह (वह) | सः - छह - छिह (स - छ । : - ह) |
| त्सुंग (पीछे चलना) | संग - भक्ति करना |
| लई (लाना) | नी (लना) । नी - ली (न - ल) |
| युंग (व्यवहार करना) | यु (व्यवहार करना) यु - युं - युंग । |
| पातऊ (तलवार) | पत्र (तलवार) । पत्र-पाव(प्राकृत) - पातऊ |
| त्सेऊ (चलना) | श्वय (चलना) - सिय त्सेऊ |
| की (समाप्त करना) | कृ - (क्रिया समाप्ति) कृ - की । |
| ताई (श्रीमती) | तातग्वी(ताई) - ताई । |

## अमेरिकन भाषा

| अमेरिकन | संस्कृत |
|---|---|
| स्काश (तुम्बी) | इक्ष्वाकु (तुम्बी) । इक्ष्वाकु - स्काश |

हम संसार की उपरोक्त भाषाओं के अधिक और यूरोपीय भाषाओं के कोई भी उदाहरण देकर प्रस्तुत लेख का आकार नहीं बढ़ाना

चाहते। यूरोपीय भाषाओं (ग्रीक, लैटिन, बलकानी, आस्ट्रियन, हंगरी, जर्मन, डैनिश, फ्रेंच, रूसी, नोर्वे, स्वीड्, फिनलैंड, इंगलिश, ऐंग्लो सैक्सन, आइस लैंडिक, फ्रीसियन, लिथ्वानिक के सम्बन्ध में भाषा तत्वज्ञ यह एक कंठ से स्वीकार करते हैं, कि यह संस्कृत की बहनें ही हैं और शब्दों के रूप सीधा मेल खा जायंगे। फिर भी हम कुछ ऐसे शब्द देते हैं जो विदेशी भाषाओं में हैं और संस्कृत के अपभ्रंश हैं।

| संस्कृत | अन्य भाषायें |
|---|---|
| क्रमेलः (ऊंट) | जमल (अर्बी), गमल (यहूदी), कैमोलस (लैटीन) कैमोलौस (ग्रीक)। केमेल (इंगलिश) क्रमेलः–कमेल–केमीलस–मिल– केमीलौस–जमल(क- के, अ, ग, और मे–मी, मे तथाः लः–ल,लस् लौस्। |
| थर्व (कांपना) | थ्रौव (इंगलिश) (थर् थ्रौ) |
| बल (गोंद) | बलटा (ब्रेजीलियन)। (टाली आगम) |
| यूष (रस) | जूस (इंगलिश); जुस (फ्रेंच); जुस (लातिन) (यू–जू, जु) |
| वघा (कीट) | वग (अमेरिन्कन), बग (इंगलिश) |
| विघस (मोम) | वैक्स (इंगलिश) (विघ-वैंक) |
| कृष (खुरचना) | स्क्रैच, क्रैच (इंगलिश) (कृ-क्रै, स्क्रै, 'ष-च) |

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि संसार की प्रत्येक भाषा, बोली, उपभाषा और उपबोली योंही स्वतन्त्र रूप से ११ भाषा परिवारों की सदस्यायें उत्पन्न नहीं होगयीं। बल्कि वैदिक संस्कृत का ही रूप बदल कर उन्नत आधुनिक रूप हो गया है। रूप परिवर्त्तन के जो नियम हमने लिखे हैं वे अपूर्ण हो सकते हैं। परन्तु जितनी अधिक रूपान्तर की खोज की जायगी नियम उतने ही स्पष्ट होते जायेंगे। और भिन्न २ देशों की भाषाओं का आदि स्रोत वैदिक संस्कृत में पासकना उतना ही सरल हो जायगा। हमने केवल १५० मील की यात्रा की सीमा बांधी थी। परन्तु यदि यह दूरी असीमित कर दी जाय और यात्रा का पड़ाव १ मील का रखा जाय। दो तीन दिन तक एक स्थान (ग्राम) को भाषा के शब्दों का उच्चारण, गठन, अर्थ इत्यादि टीप लिया जाय तो हमें भाषा परिवर्त्तन की अपारनिधि हाथ लग सकती है। सारे भूमंडल की यात्रा समाप्त करने पर भी यह पता न चलेगा कि भाषा कहां और कैसे बदली। यह परिवर्त्तन तभी अधिक स्पष्ट दीख पड़ेगा जब कि यात्रा के मध्य में ऊंचे पर्वत, विस्तृत झील, अगम मरुस्थल, चौड़े नद घने वन' अपार समुद्र आजायें जिसके कारण एक जनपद दूसरे जनपद से कट जाता है और लोगों का आपसमें सम्मिलन व कष्ट साध्य होता है। तब कालान्तर में कटे हुए जनपदों की भाषायें बोलियां विकृत रूप धारण कर लेती हैं और उनके शब्दोच्चारणमें भेद होजाताहै। अधिक युगों के पश्चात् ऐसी भाषायें निर्मित हो जाती हैं जो एक जनपद के सिवाय दूसरे को विदेशी

(शेष पृष्ठ ५६२ पर)

# वैदिक वृष्टि विज्ञान

[ लेखक—श्री पं० वीरसेन जी वेदश्रमी, वेद सदन, इन्दौर ]

वृष्टि विज्ञान वेद का एक प्रमुख विज्ञान है। यद्यपि इस विज्ञान का अन्तर्भाव वारुणी विद्या के अन्तर्गत है और इसकी निष्पत्ति का आधार भी इसी विद्या का अंग है। तथापि इस विद्या के अन्तर्गत अनेक जल विज्ञानों में से इस वृष्टि विज्ञान का प्रमुख स्थान है, क्योंकि बिना इस विज्ञान के अथवा बिना वृष्टि के इस पृथ्वी पर जीवन स्थिर नहीं रह सकता है। यह जल तत्व अपनी अनेक स्थितियों, परिवर्त्तनों एवं रूपों से विश्व का पालन पोषण कर रहा है।

"अपो वा इदमग्र आसीत्" उपनिषद् का यह वाक्य जल की प्रधानता एवं उसकी प्राथमिकता का भी द्योतक है। स्थूल रूप से दृश्य भाव जल यद्यपि "मैत्रावरुणग्रह" का कार्य रूप है तथापि सृष्टि निर्माण में जो जल प्रारंभिक एवं मौलिक तत्व है और जिसको उपनिषद् ने प्रतिपादित किया है, वह यह कार्य रूप जल तत्व नहीं हैं और उपलब्ध जल का निकटतम मौलिकतत्व भी नहीं है अपितु वह सृष्टि का प्रारम्भिक मौलिक तत्व है।

सृष्टि निर्माण के मौलिक तत्व को जल सलिल, अम्भस एवं कुहक आदि शब्दों से भी प्रकट किया जाता है। वेदों ने "सरिरं छन्दः" कहकर इस का छादन कर्म एवं इसकी छादन स्थिति-व्यापकता-को ब्रह्माण्ड के चारों ओर भी इंगित किया है। यह तत्व समस्त ब्रह्माण्ड को आवृत किये रहता है और इसी अम्भस के आवरण में से सृष्टि को जीवन तत्व प्राप्त होता रहता है। मातृ गर्भ में जिस प्रकार शिशु के चारों ओर कललरस विद्यमान रहता है और उस कललरस से शिशु का संवर्धन एवं पोषण होता रहता है उसी प्रकार इस महान् ब्रह्माण्ड के चारों ओर वह तत्त्व फैला हुआ है। इसकी भी समुद्र संज्ञा है। दार्शनिक शब्दों में इसे महत्तत्व के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं। वेद ने इसी को "समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत" के रूप में सृष्टि की पूर्वावस्था के रूप में वर्णित किया है।

समुद्र ब्रह्माड के चारों ओर है। मध्यभाग-अन्तरिक्ष में भी है और सृष्टि के स्थूल भाग पृथिवी पर भी समुद्र है। अन्तरिक्ष में जो समुद्र है उसकी रचना में उससे ऊपर के जल और पृथिवीस्थ जल दोनों का सम्मिश्रण होता रहता है। अन्तरिक्ष से ऊपर के जलों के अंश अन्तरिक्ष में आते रहते हैं। और अन्तरिक्षस्थ समुद्र को बनाए रहते हैं। तब तक यह समुद्र दृश्यमान नहीं होता। परन्तु जब पृथिवीस्थ समुद्र के जल को वे आकर्षि [illegible] कर पर्जन्य एवं मेघ रूप में होकर मंड[illegible] लगते हैं तो अन्तरिक्षस्थ समुद्र स्थूल रूप में प्रकट होने लगता है, या दृश्य मान हो जाता है।

ओर जितना ही यह दृश्यमान होता जाता है अर्थात् स्थूलतर होता जाता है तो उसके पृथिवी पर गिरने की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसका प्रधान कारण अन्तरिक्षस्थ उन जल के मौलिक तत्वों का जो अन्तरिक्ष से भी ऊपर के स्थलों से आये हैं उनका पुनः ऊपर की ओर आकर्षण और पृथिवीस्थ समुद्र के जलों का नीचे की ओर आकर्षण होना है।

प्रारम्भ में जब इन दोनों जलों में आकर्षण होता है तो इन दोनों प्रकार के जलों में मैथुन, परस्पर एकीभाव की क्रिया होती है। पृथिवीस्थ जल सूर्यकिरणों के आकर्षण अर्थात् रश्मि मार्ग से अन्तरिक्ष में अप्सरा बन कर जाते हैं और वहां पर उन जलों को धारण करने की सामर्थ्य वाले जो जल गन्धर्वरूप से रहते हैं, उन दोनों प्रकार के जलों का मैथुन-मिश्रण होता है। और जब तक द्यु लोकस्थ जलों में से जो पितर रूप हैं उनका मातृस्थानीय पृथिवीस्थ जल हैं, उनमें गर्भ स्थापन नहीं होता है, अर्थात् उत्पादक शक्ति, जीवनीय शक्ति एवं प्राण शक्ति पृथिवीस्थ जलों को नहीं प्राप्त होती तब तक दोनों शक्तियां आकाश में क्रीड़ा एवं कौतुक करती रहती हैं और जैसे ही पृथिवीस्थ जलों को जो अप्सरा बनकर ऊपर

---

(पृष्ठ ५६० का शेष)

समझने लगते हैं। प्रस्तुत योजना से यदि शिलांग (आसाम) से कोई पुरुष पेशावर की यात्रा पदातिही करे तो उसे आसानीसे पेशावरी भाषा के बदलने में कोई भेद दृष्टि गोचर न होगा। परन्तु यदि वही व्यक्ति जैट विमान से यात्रा करे तो उसे ऐसा प्रतीत होगा कि आसामी भाषा और पेशावरी पश्तों में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसी तर्क को हम संसार भर के प्रदेशों के ऊपर घटावें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि विश्व की सारी बोलियां, भाषायें और उपबोलियाँ वास्तव में एक-ही उद्गम से निर्गत हैं। भेद दूरी, वन, पर्वत, समुद्र, मरुस्थल, झील आदि दुर्गम स्थानों के बीच में आ पड़ने से होता है। क्योंकि वैदिक संस्कृत के धातुओं से सारे संसार की भाषाओं और बोलियों के शब्द सध जाते हैं, अतः वैदिक संस्कृत सब भाषाओं की जननी है। इस सम्बन्ध में हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रसिद्ध रुसी विद्वान पारिअटार के मतानुसार आदि सृष्टि तिब्बत (हिमालय पर्वत) पर हुई और वहां से लोग संसार में फैले। यह भूभाग पृथ्वी के जल से सब से प्रथम निकला था। यही मत स्वामी दयानन्द ने भी अपने ग्रन्थों में प्रकट किया है। इन लोगों की भाषा वैदिक संस्कृत थी और वही सारे भूमंडल पर विकृत होकर फैलती गयी। यही कारण है कि संसार की अति दूरस्थ भाषाओं का सम्बन्ध वैदिक संस्कृत से स्थापित हो जाता है।

आधुनिक भाषा विशेषज्ञ एक ऐसी भाषा की कल्पना करते हैं जिसके न बोलने वाले मिलते हैं और न जो ग्रन्थोंमें ही लिखी पाई जाती है। यह कल्पना एक हट से उद्भूत और निराधार कल्पना है। वैदिक संस्कृत जो लौकिक संस्कृत की जननी है, एक ऐसी प्राचीनतम भाषा है जो संसार की भाषाओं, बोलियों और उपबोलियों को अपने गर्भ में धारण कर लेती है और उनकी जन्मदात्री जननी सिद्ध होती है।

[इस लेख की भाषा, विचारणीय विषय की प्रक्रिया शैली का अधिकार लेखक ने स्वरक्षित रखा है।]

पहुँचे थे उनकी अपनी अभिलाषित कामना की पूर्त्ति हुई और द्युलोकस्थ पितर जलों का कार्य पूर्ण हुआ उसी समय दोनों जल अपने-अपने आकर्षण एवं विकर्षण से पृथक् हो जाते हैं। इसी प्रकार पृथिवीस्थ जल पुनः पृथिवी पर अन्तरिक्ष से नवजीवन एवं नवप्राण लेकर हमारे लिये उतर आता है और समस्त पृथिवी उत्पत्ति का हेतु बन जाता है। उपनिषदों ने इसीलिये कहा--"यदात्वमभिवर्षथेमाः प्राणते प्रजाः। आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यति।"

निःसन्देह वृष्टि आनन्दरूपा है। हम सन्ध्या के मन्त्रों में भी—"शंयोरभिस्रवन्तु नः" कहकर परमात्मा से सुख की वृष्टि की कामना करते हैं। परन्तु वृष्टि तभी तक सुखकारक है जब तक वह हमारे लिये अनुकूलता सम्पादक हो। यदि वह वृष्टि हमारी अनुकूलता को सम्पादन करने वाली न हो तो वह आनन्द रूपा न हो सकेगी न वह सुखदायिनी ही हो सकेगी। अतः वृष्टि को आनन्द रूपा एवं सुखदायिनी बनाने की विद्या को जानना आवश्यक है। अर्थात् वृष्टि को अपने अनुकूल बनाने के लिये वृष्टि विज्ञान का जानना और भी प्रायौगिक ज्ञान भी आवश्यक है।

यजुर्वेद के २२ वें अध्याय के २२ वें मन्त्र में–निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु" यह पाठ आता है। इसका पाठ हम बड़े उत्साह से सुअवसरों पर करते हैं। परन्तु क्या इस मन्त्र वाक्य से हमें उस वैदिक विज्ञान या शक्ति की खोज करने की प्रेरणा नहीं होती कि जिससे हम यह शक्ति प्राप्त करलें कि जब हम चाहें तभी वृष्टि हो और जब चाहें वह वृष्टि रुक भी सके। अथात् अति वृष्टि और अनावृष्टि पर हमारा पूर्ण अधिकार हो।

इसी प्रकार "पर्जन्यो अभिवर्षतु" (यजुः अ. ३६ म. १०) का पाठ हम शान्ति प्रकरण के मन्त्रों में करते है, क्योंकि वर्षा सुख और शान्ति का हेतु है। परन्तु यदि वही अति की स्थिति में होने लगे तो या तो हमें उस अति से बचने का साधन ढूंढना पड़ेगा अथवा यदि हम उस अति वृष्टि से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। तो हमें उस लाभ की प्राप्ति का प्रयत्न करना होगा। अर्थात् दोनों प्रकार से हमें अपने सुख एवं शान्ति के मार्ग ढूंढने पड़ेगे और इस प्रकार अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि पर निमन्त्रण के साधनों का अन्वेषण हमारे लिये आवश्यक हो जाती है।

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के १६ वें मन्त्र में यज्ञ को–"वर्षवृद्धम्–कहा है, अर्थात् यज्ञ वृष्टि का वर्धक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वर्षा के निमित्त यज्ञ आवश्यक है। इसी प्रकार दूसरे अध्याय के १६ वें मत्र में"– "मित्रावरुणौ त्वा वृष्टचा"–के द्वारा वर्षा के कारण भूत मित्र और वरुण देवताओं को बताते हुए उनके द्वारा वर्षण क्रिया होने और उससे संसार की रक्षा होने का संकेत है। पुनः उन्हीं देवताओं को सम्बोधन करके मन्त्र में कहा है- 'ततो नो वृष्टिमावह" अर्थात् उसके द्वारा हमारे लिये वृष्टि को प्राप्त कराओ।

इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि वर्षा कराने के लिये वेद मित्र और वरुण देवताओं या दिव्य-तत्त्वों का उपदेश करता है कि ये दोनों दिव्य-तत्त्व वर्षा के प्रधानभूत कारण हैं। और इन दोनों को अपने अनुकूल करने के लिए "ततः"

शब्द के द्वारा जिसका संकेत मन्त्र में किया है उसको मन्त्र में "वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ" के रूप में बता दिया है कि मित्र एवं वरुण को वर्षा के लिये अनुकूल बनाने के निमित्त अपनी इच्छित आहुति अन्तरिक्ष में भेजी जाती है तथा "मरुतां पृषतीर्गच्छा" वह आहुति वायुमण्डल के विविध स्तरों को प्राप्त होती हुई वृष्टि को पृथवी पर लाने में समर्थ होती है। इस प्रकार वर्षा विज्ञान की सिद्धि का वेद हमें उपदेश करता है।

इसी प्रकार वर्षा कराने के लिये वेद में और भी अनेक स्थानों पर प्रयोग बताये हैं। उपरोक्त प्रकरणों में जो "वशा पृश्निर्भूत्वा दिवंगच्छ ततो नो वृष्टिमावह"-कहकर जिस आहुति के आधीन वर्षा को बताया है, उन आहुति द्रव्यों के अन्वेषण की अत्यन्त आवश्यकता है और उनका परीक्षण भी करने की आवश्यकता है, जिससे हम इच्छानुसार वर्षा करा सकें। इस प्रकार के द्रव्यों की श्रेणी का पता लगाने में हमें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है।

वर्षा के अभाव में अपनी आहुति द्वारा इच्छानुसार वर्षा कराने का उपदेश एवं साधन वेद ने बता दिया है। परन्तु यदि वर्षा प्राकृतिक कारणों से या अन्य कारणों से अधिक मात्रा में होने लगे तो उस स्थिति में—"मैत्रावरुणग्रह" को छिन्न भिन्न करके वर्षा को रोकने का भी साधन जानना आवश्यक है, जिससे अति वृष्टि से संसार को बच सकें। वेद इस प्रक्रिया के बारे में भी हमें स्पष्ट उपदेश करता है।

यजुर्वेद के १३ वें अध्याय के ५३ वें मन्त्र में जलोंकी सृष्टि के विविध तत्वों में स्थापित करने के लिये कहा है। अतः जलों को अर्थात् वर्षा को पृथक् तत्वों या द्रव्यों में अपनी आवश्यकतानुसार स्थापित करने की प्रक्रिया का वेद उपदेश कर रहा है। इस का हमें गंभीरता से अन्वेषण करना चाहिये और किस २ तत्वों में किस २ रूप में जल स्थित रह सकता है इसको जानते हुये जलों के उन स्वरूपों के निर्माण की भी प्रक्रिया को खोजना आवश्यक है। जल की अनेक स्थितियां है। २२ वें अध्याय के २५ वें मन्त्र में १२ प्रकार की जल की स्थितियों का वर्णन मिलता है। उनका भी क्रम बद्धस्वरूप इस विज्ञान के द्वारा संसार के सामने वेद के विज्ञान द्वारा किया जा सकता है।

यजुर्वेद के १५ वें अध्याय के छठे मन्त्र में इस विज्ञान की ओर अग्रसर होने के लिये और भी स्पष्ट उपदेश निम्न शब्दों में मिलता है — विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व' "अर्थात् वृष्टि के विष्टम्भन रोकने के द्वारा वृष्टि की जाती है। इस मन्त्र से स्पष्ट है कि वृष्टि का विष्टम्भन अर्थात् रोकना हो सकता है। वृष्टि के रोकने के प्रकार को जान लेने से अतिवृष्टि पर नियन्त्रण हो सकता है और उस के द्वारा संसार को सुखी किया जा सकता है। यह कार्य उपदेशों से नहीं अपितु वेद के क्रियात्मक विज्ञान के अन्वेषण और परीक्षणों से ही सिद्ध होगा।

वर्षा कराने औरउसे रोकने के विज्ञानमें हमारा वर्षों से श्रद्धा एवं विश्वास है तथाइस बारे मे स्वसामर्थ्यानुसार अन्वेषण भी चल रहा है। इसकेपरीक्षण भी प्रारम्भ कर दिये हैं। परन्तु हमारे साधन सीमित हैं। आर्यजनता की वेद के प्रति श्रद्धा व सच्चे प्रेम तथा वेद प्रेमी धनी मानी जनों के सहयोग प्राप्त होने से हम इस विज्ञान में विशेष अग्रसर गति कर सकते हैं और सफलता भी प्राप्त कर सकते हैं। अतिवृष्टि को भी रोकने का एक लघु परीक्षण किया जा चुका है, जिस में सफलता प्राप्त हुई है।

# श्री डा० रघुवीर :—

श्री डा० रघुवीर जी का जन्म १९०२ में रावलपिण्डी में हुआ। आप ने पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर में तथा University of London और Royal university of Utrecht में आपने शिक्षा पाई। १९३४ में डाक्टर साहब ने लाहौर में International Academy of Indian culture संस्था की स्थापना की, जो संस्था कुछ समय लाहौर रही फिर उसका कार्य नागपुर में होता रहा और अब यह संस्था नई दिल्ली में हौज ए खास के पास सरस्वती बिहार नाम की संस्था की अपनी शानदार भव्य इमारत में है।

भारतीय साहित्य और भारतीय सभ्यता का विस्तार समस्त एशिया में जो प्राचीन काल में हुआ उस का अनुसंधान इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है। श्री डाक्टर रघुवीर जी योरोप और एशिया के सब देशों को सब भाषाओं और उनकी लिपियों के ज्ञाता हैं। आप ने देश देशान्तर द्वीप द्वीपन्तरमें घूमघूमकर वह अलभ्य साहित्य प्राप्त किया है जो भारत का ही साहित्य भारत में लुप्त हो गया और दूसरे देशों में उन की अपनी लिपि में विद्यमान है। यह आश्चर्य जनक खोज है। आप इंडियन नेशनल कांग्रेस के सदस्य हैं। १९४६ से१९५० तक आप विधान सभा के सदस्य रहे और अब १९५२ से पार्लिया मेन्ट अपर हाउस (राज्यसभा) के सदस्य हैं। आपको यह सौभाग्य प्राप्त है कि आप के सुपुत्र श्री डाक्टर लोकेश जी, पुत्रवधू डाक्टर शारदा रानी जी तथा डाक्टर जी की कन्याए डाक्टर सुदर्शना जी आदि सब घर ही डाक्टर जी के साथ इसी भारतीय अनुसंधान् में लगा हुआ है।

भारतीय संस्कृति का भारत के जीवन में क्या स्थान है। संस्कृति का राजनीति और अर्थनीति के साथ कैसे सामञ्जस्य है। अर्थनीति को सुधारे बिना संस्कृति को देश में स्थान देना कठिन है। इस विचार से डाक्टर रघुवीर जी अर्थनीति पर आजकल कार्य कर रहे हैं। भारतीय जीवन किस प्रकार से पुनः समृद्ध और वैज्ञानिक बने और उसमें आध्यात्मिक तथा ऐतिहासिक भारतीय संस्कृति का क्या स्थान हो। संस्कृत एवं साहित्य तथा भारतीय भाषाओं, भारतीय शिक्षा, व्यापार, शासन का विज्ञान में क्या स्थान हो इत्यादि इत्यादि अनेक विषयों पर अनुसन्धान एवं उसके प्रकाशनमें आप लगे हैं।

श्री डाक्टर रघुवीर जी अनेक महान् ग्रन्थों के निर्माता और सम्पादक हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के अष्टाध्यायी भाष्य का अन्यों के असफल तथा भ्रष्टसम्पादनके पीछे बढ़ियापांडित्यपूर्णसंपादन कियाथा। जैमिनीय ब्राह्मण,अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा, सामवेद की जैमिनीय शाखा आदि लगभग एक सौ ग्रन्थ आप के द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। विज्ञान के प्रत्येक विभाग में अंग्रेजी हिन्दी मराठी के कोषों का आपने निर्माण किया है। देहली नगर में आपका सरस्वती विहार एक दर्शनीय स्थान है जहां एशिया की

विभिन्न भाषाओं का महान् पुस्तकालय उन उन भाषाओं और उन्हीं लिपियों में विद्यमान है, तथा उन सब लिपियों का प्रेस सरस्वती विहार में वर्तमान है। जहां उन ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। विदेशों से आने वाले राज्यधिकारी भारत आने पर आप के सरस्वती विहार का दर्शन अवश्य करते हैं। भारत द्वारा भेंट की जाने वाली अनोखी वस्तुएं वहीं से प्राप्त होती हैं।

श्री डाक्टर जी के साथ हमारा सम्बन्ध लाहौर से है। इसी आधारपर हम उनसे धृष्टता करके इतना समय उनका ले सके, जो अमूल्य अनुसन्धान परिपूर्ण यह लेख हम सार्वदेशिक के दीक्षाङ्क के लिये ले सके। चित्र और ब्लाकों के बनाने में जो डाक्टर जी ने अनुग्रह किया है हम उसके अत्यन्त आभारी हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि डाक्टर जी तथा उनके परिवार के अन्य लेख जो इस विशेषाङ्क में जा रहे हैं एक स्थायी संग्राह्य साहित्य हमारे पाठकों के लिये होगा। और इस खोजपूर्ण सामग्री की प्राप्ति के लिये भी इस अङ्क को प्रत्येक व्यक्ति अपने पास रखने के लिये उत्सुक होगा।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में एकादश समुल्लास के आरम्भ में यह महत्त्वपूर्ण पंक्तियां हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥
(मनु० २।२०॥)

सृष्टि से लेके पांच सहस्रवर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सर्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था।.................
आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुये ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के सब मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र दस्यु म्लेच्छ आदि सब अपने अपने योग्य विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें।

(सत्यार्थ प्रकाश ११ समु०)

महर्षि को यह विश्वास था कि देश देशान्तर में जो भी संस्कृति का प्रसार है उस का आदि स्रोत भारत ही है। मनु के श्लोक 'एतद्देशप्रसूतस्य...' की व्याख्या स्वरूप ही यह डाक्टर रघुवीर जी का लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जाता है पाठक ध्यान से इसको पढ़ें। डा० साहब का कहना है सैङ्कडों विद्वान् इस काम पर लगें तब जाकर कहीं अर्द्धशताब्दी में इस श्लोक की व्याख्या हो सकेगी। यह ध्यान रहे कि वैदिक तथा भारतीय बातें शुद्ध तथा विकृत भी विदेशों में गई हैं।

सम्पादक—आचार्य विश्वश्रवाः व्यास

# भारतीय संस्कृति का विश्व में प्रसार

[लेखक—संसद् सदस्य श्री डाक्टर रघुवीर जी एम०ए० डी०लिट०, डी० फिल०,]

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरितं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

इस श्लोक की टीका करना भारत के विद्वानों का कार्य है। इस को संपन्न करने के लिए विद्वत्सेना की आवश्यकता है। विद्वत्सेना क्या कार्य करे और किस प्रकार से करे इसका हमने प्रारम्भ किया है। चिन्तन की दिशा का कुछ मार्ग निकाला है।

सर्व प्रथम कठिनाई भारत की सीमाओं का निश्चय करने में पड़ती है आज की पूर्व और पश्चिम की सीमाएं कलकत्ता और अमृतसर है। आज से बारह वर्ष पूर्व अमृतसर के स्थान में खैबर हमारी सीमा थी। सिक्खों के राज्य में हम उससे भी अधिक पश्चिम में पहुँचे हुए थे। मुगलों के राज्य में काबुल और समरकन्द तथा बुखारा दिल्ली के प्रान्त थे। यदि कुछ और दूर चले जायें तो कनिष्क के राज्य में कैस्पियन झील तक भारत का साम्राज्य था। यह स्थिति समझना परम आवश्यक है।

१९३५ तक बर्मा और लंका भारत के अंग थे और पश्चिम दक्षिण अरब का सबसे बड़ा नगर और उसके आसपास की भूमि अदन भारत का अंग थी। भारत के व्यापारी अभी तक वहां विद्यमान हैं। रंगून में हिन्दी बोलने वालों की संख्या अभी तक ५० सहस्र के लगभग है।

मुगलों के पश्चात् हमने अफगानिस्तान और मध्य एशिया खोया और अंग्रेजों की कूटनीति के कारण हमने भारत को और भी संकुचित बनाया।

यह तो रही राजनीतिक सीमा जिनका सम्बन्ध साम्राज्यों की सीमाओं से है। आधुनिक भारतीय "साम्राज्य" शब्द से घबराता है। उसको केवल अंग्रेजी साम्राज्य से ही घृणा नहीं भारतीय साम्राज्य से भी घृणा है। क्या दोनों साम्राज्य एक हैं अथवा नहीं। आज हम इसकी यहां चर्चा न करेंगे।

भारतीय साम्राज्य को छोड़ कर हम भारतीय धर्म, भारतीय भाषा, भारतीय कला, भारतीय वेशभूषा आदि की ओर आते हैं।

हमारी बहुत दिनों से इच्छा है कि एशिया का विस्तृत मानचित्र बनाया जाय। इस मानचित्र में वर्तमान तथा प्राचीन युग की कोई भी राजनीतिक सीमाएं न हों। केवल नगरों नदियों, पर्वतों, समुद्रों और प्रदेशों के तत्तद्देशीय साहित्य में प्रयुक्त संस्कृत भाषा के नाम हों। संस्कृत भाषा ऐतिहासिक सांस्कृतिक और अन्य दृष्टियों से पूर्णतः हमारी प्रतिनिधि संस्था है। इसका संबंध किसी प्रदेश विशेष से नहीं। समस्त भारत से है। संस्कृत भाषा इतनी विलक्षण

है कि प्रायः दूसरी भाषाओं के शब्दों से भ्रांति नहीं होती। संस्कृत भाषा के अक्षर और उन अक्षरों में लिखे हुए विचार भी इतने विलक्षण हैं कि निश्चय करने में प्रायः भ्रम नहीं होता कि विचार भारतीय हैं।

हम एक दो उदाहरण देते हैं–

रंगून जिले का नाम हंसावती है। जहां इरावती नदी का समुद्र से संगम है। वहां हंसावती की स्थापना भारतीय कवि की कल्पना है। नदी का अन्त है। नदी अपनी काया को अपने पतिदेव के समर्पण करने चली है। इसलिये नदी का रमण समुदाय जो हंस समुदाय है, वह यहां अन्तिम विहार के लिये इकट्ठा होता है।

बर्मा के शिला लेखों और साहित्य में अनेक संस्कृत नाम विद्यमान हैं। इनका पूर्ण रूप से संग्रह करने के लिये १५-२० वर्ष की खोज की आवश्यकता है। जैसे शिलालेख और इतिहास ग्रंथ वैसे ही तालपत्रों की पुष्पिकाएं बहुमूल्य स्रोत हैं। जो नाम भारत के छपे हुए मानचित्रों में 'शानराज्य, (Shan States) इस रूप में मिलता है। वही नाम शानदेश में जाकर "कम्बुज" रूप में मिलता है।

बर्मा थाई और आसपास के दूसरे देशों में प्राचीनकाल से यह पद्धति चली आई है कि प्रमुख स्थानों के नाम संस्कृत और देशी भाषा दोनों में होते थे। कभी कभी एक स्थान का केवल एक नाम भी मिलता है और वह भी संस्कृत में। जैसे थाई देश में अयोध्या और लवपुरी। संस्कृत नामों का प्रायः अपभ्रंश हो गया है। जैसे 'मागङ्गा' का 'मेकोंग'। यह नदी गंगा से लम्बी है। इस नदी का उद्भव चीन में होता है और अन्त कम्बोडिया में। हमने भूल की कि कम्बोडिया लिखा। इसका शुद्ध नाम तो कम्बुज' है। स्थानीय भाषा में इसको केवल कम्बुज ही नहीं किन्तु कम्बुज राष्ट्र लिखते हैं। कम्बुज के समीप का देश अंग्रेजी का लाओस नहीं है। वहां की भाषा में उसको 'लाव राष्ट्र' लिखते हैं इत्यादि।

संस्कृत भाषा का प्रचार अभी तक कहां कहां विद्यमान है इस पर गवेषणा करना भारतीय विद्वानों का काम है। जो कार्य पश्चिमी विद्वानों ने किया वह बहुत अधूरा है। परन्तु वह भी इतना गौरवमय है और इतना विस्तृत है कि पन्द्रह बीस सहस्र पृष्ठ बन जायेंगे। कुछ वर्ष हुए हमने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उसमें दक्षिण अफ्रीका के समीपवर्ती द्वीप मैडेगास्कर से आरम्भ करके फिलीपाइन तक के तीन हजार छोटे बड़े द्वीपों में संस्कृत शब्दों के प्रयोग का दिग्दर्शन था।

चीन और जापान में संस्कृत के शब्दों का प्रायः अनुवाद कर लिया गया है किन्तु मंगोलिया और सायबेरिया में कहीं अनुवाद और कहीं संस्कृत शब्द स्वयं विद्यमान हैं। जैसे मंगोलिया में पर्वत का नाम वैडूर्य और सरोवर का नाम दुर्गा। व्यक्तियों के नाम धर्मसिंह, पञ्चरक्षा, गंगा, संघरक्षित, रत्ना, इन्द्री आदि। अनुवाद के नामों में से कई नदियों के नाम है जैसे 'आमूर', इसका अर्थ शान्ति है।

भारत किसी भूभाग में कब पहुँचा यह भी बहुत रुचिकर अध्ययन है। जिन देशों में अन्धकार था, मनुष्य अभी पशु स्थिति में था। पश्यतीति पशुः। मनुते इति मनुः। जो केवल

देखता है और मनन नहीं करता वह पशु अथवा पशु रूप है। जो मनन करता है वह मनुष्य है। किन्तु मनन करने के लिये व्यक्ति को केवल अपने ही अनुभवों की आवश्यकता नहीं उसको दूसरों के अनुभवों की भी आवश्यकता हैं। दूसरे कौन ? अपने समीप के अथवा दूर के। कितनी दूर के ? जितनी दूर के उतना अच्छा। केवल समकालीन ही नहीं किन्तु युग युगान्तरों के भी अनुभव हैं। मनुष्य के अनुभवों को संचित करने का और उनको अपनी मनन सामग्री बनाने का एकमात्र उपाय लेखन कला है।

एशिया के अनेक देशों में लेखनकला भारत से गई। इस लेखन कला का इतिहास तथा प्रसार विशाल विषय है।

हम यहां केवल उन देशों के नाम गिनायेंगे—तिब्बत, बर्मा, लंका, थाई, कम्बुज, लाव मलाया, सुमात्रा, जावा, बालि, लोम्बो, बोर्नियो, फिलिपाइन, मध्येशिया।

इनमें से प्रत्येक देश की भारतमूलक लिपि का अध्ययन एशिया के सांस्कृतिक इतिहास का आधार है। भारतीयता के प्रभाव और गुरुत्व का प्रारम्भ है। हमने सब लिपियों का संग्रह किया है। साइबेरिया से उनतीस भारतीय लिपियों की पुस्तक मिली है। इन में कई लिपियाँ भारत में लुप्त हो चुकी हैं। भारत मूलक लिपियों की संख्या १५० के लगभग है।

इन लिपियों के एक दो उदाहरण पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिए उपस्थित करते हैं। भारत के वर्णाक्षर केवल ध्वनिद्योतक ही नहीं किन्तु दर्शन और अध्यात्म के भी प्रतीक और वाहक है। जिस कारण उनका प्रयोग उन देशों में भी हुआ जिनमें स्थानीय भाषा लिखने के लिए अपनी अलग लिपि थी जैसे चीन और जापान। मन्दिरों में मन्त्र लिखने के लिए 'सिद्धम्' नाम की लिपि का प्रयोग आज तक होता है। यात्रा कुशलपूर्वक सम्पन्न हो उसके लिए सिद्धम् लिपि में लिखे हुए मन्त्रों को यात्री अपने साथ ले जाते हैं। इसी प्रकार से रोगों की निवृत्ति के लिए।

भारत की लिपि का प्रथमाक्षर 'अ' भारत के विचार का भी शिखर माना जाता है। अ, उ और म् मिलकर 'ओम्' बनता है। 'ओम्' के शिलालेख बालि से लेकर साइबेरिया तक फैले हुए हैं। 'ओम्' के रूप भी अनेक हैं।

# बालि का अलंकृत ओम्
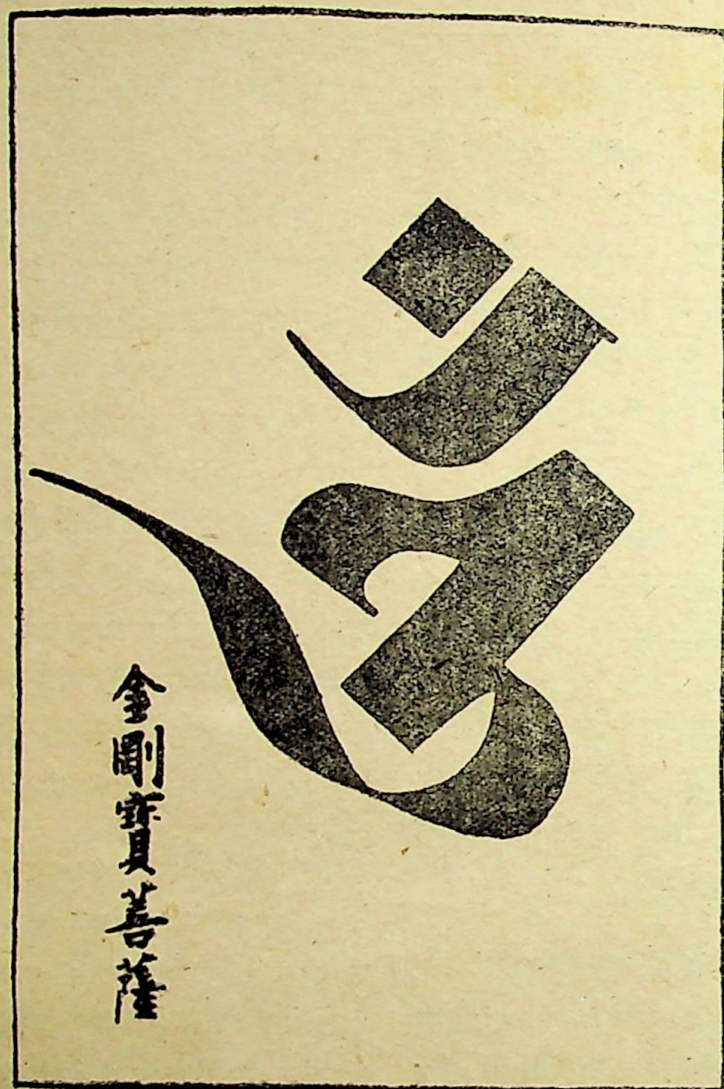
( चित्र १ )

चित्र १—सिद्धम् की प्रसिद्ध पुस्तक 'शू जी शू' में जापानी विद्वान् जोजेन् का लिखा हुआ 'ओम्'।
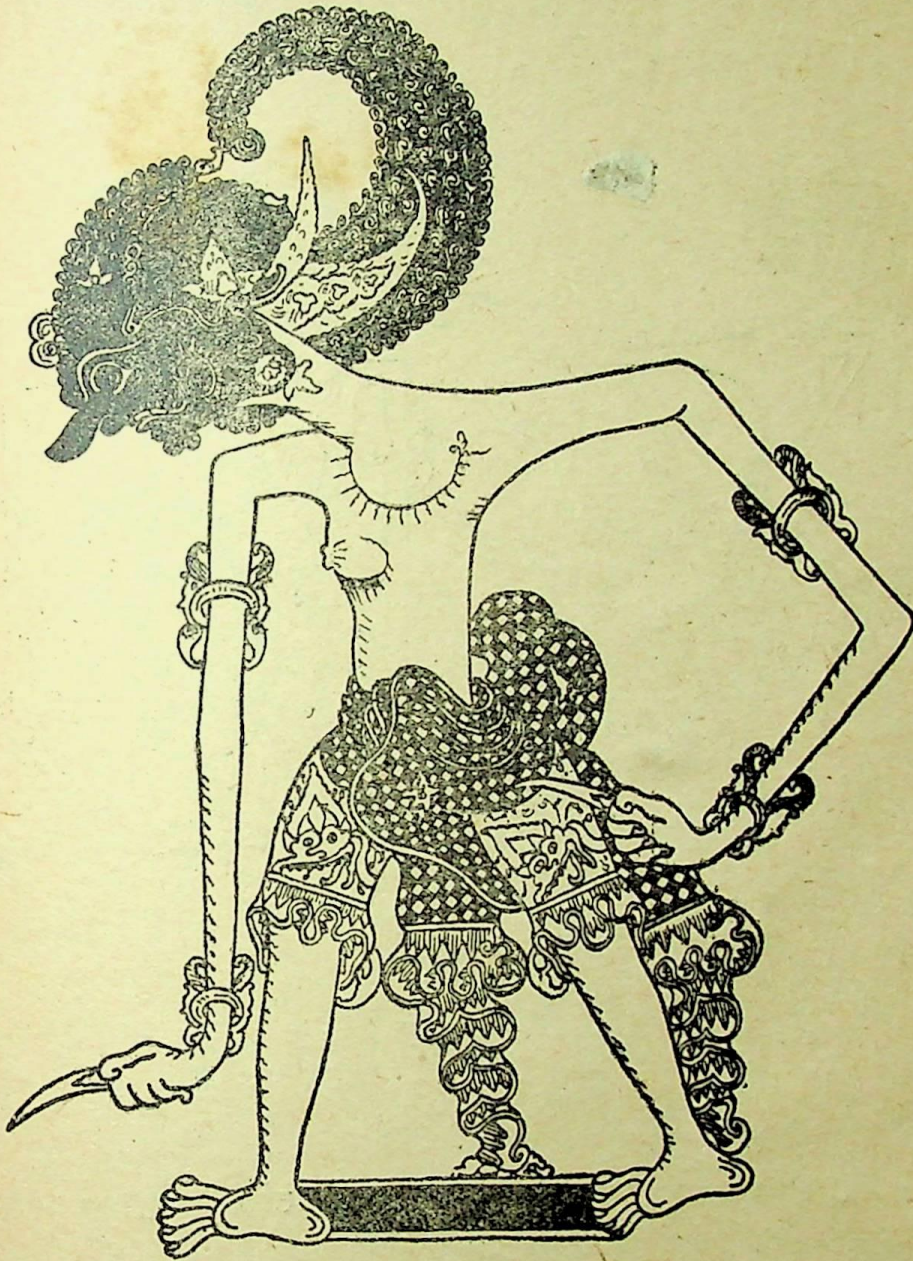
( चित्र २ )

चित्र २—यह बालि द्वीप का अलंकृत 'ओम्' है। ऊपर के भाग को अलुचन्द्र कहते हैं इसमें चन्द्रकला, सूर्य मण्डल और अग्निशिखा को मिला कर अनुस्वार अथवा 'म्' बना। सम्पूर्ण अक्षर को 'ओम्कार' या त्र्यक्षर कहते हैं त्र्यक्षर का अर्थ अ, उ, म् करते हैं। अ का अर्थ ब्रह्म, उ का विष्णु और म् का ईश्वर करते हैं। दश वायु और उलुचन्द्र के प्रयोग से अथवा 'ओंकार' और त्र्यक्षर के प्रयोग से ब्राह्मण रोगों का निवारण करते हैं। अर्धचन्द्र का स्थान नेत्र है विन्दु का स्थान मस्तक और नाद का स्थान शिरश्चूड़ा है।

ओम् पर बालिद्वीप में अनेक ग्रन्थ हैं। इनमें से दो का प्रकाशन हमने किया है। एक का नाम 'बृहस्पतितत्व' और दूसरे का नाम 'गणपतितत्व'।

( चित्र ३ )

चित्र-३ । यह 'ओम्' के रूप सुमात्रा से हैं । इनको मंगल 'ओम्' कहते हैं । इनका प्रयोग मंगल के लिये शिला लेखों के प्रारंभ में किया गया है । सब से ऊपर का ओम् अमोघ पाश कीप्रसिद्ध मूर्ति की पीठ पर खुदा हुआ है । इसकी तिथि है शाके सं० १२६९ । ओम् का यही स्वरूप कलिंग देश के महाराज इन्द्रवर्मन् के ताम्रशासन में मिलता है । ओम् के दूसरे स्वरूप महाराज आदित्य वर्मन् के शिलालेख से हैं । इनकी तिथि शक १२७८ से शक १३०० तक है ।

चित्र ४—ऊपर के २ छोटे २ चित्र जावा से हैं । यह सोने की अंगूठियों पर बने हुये ओम् हैं । नीचे का बड़ा चित्र 'चण्डी—पनतरन नामक मन्दिर के रामायण के दृश्यों में से एक दृश्य है । इस के ऊपर पांच ओम् बने हैं ।

( चित्र ४ )

चित्र ५—यह चीन के सुंग वंश का अद्भुत कलामय पात्र है। इसके ऊपर के भाग में ग्रीवा पर कुण्डलीमय 'ओम्' विराजमान है।
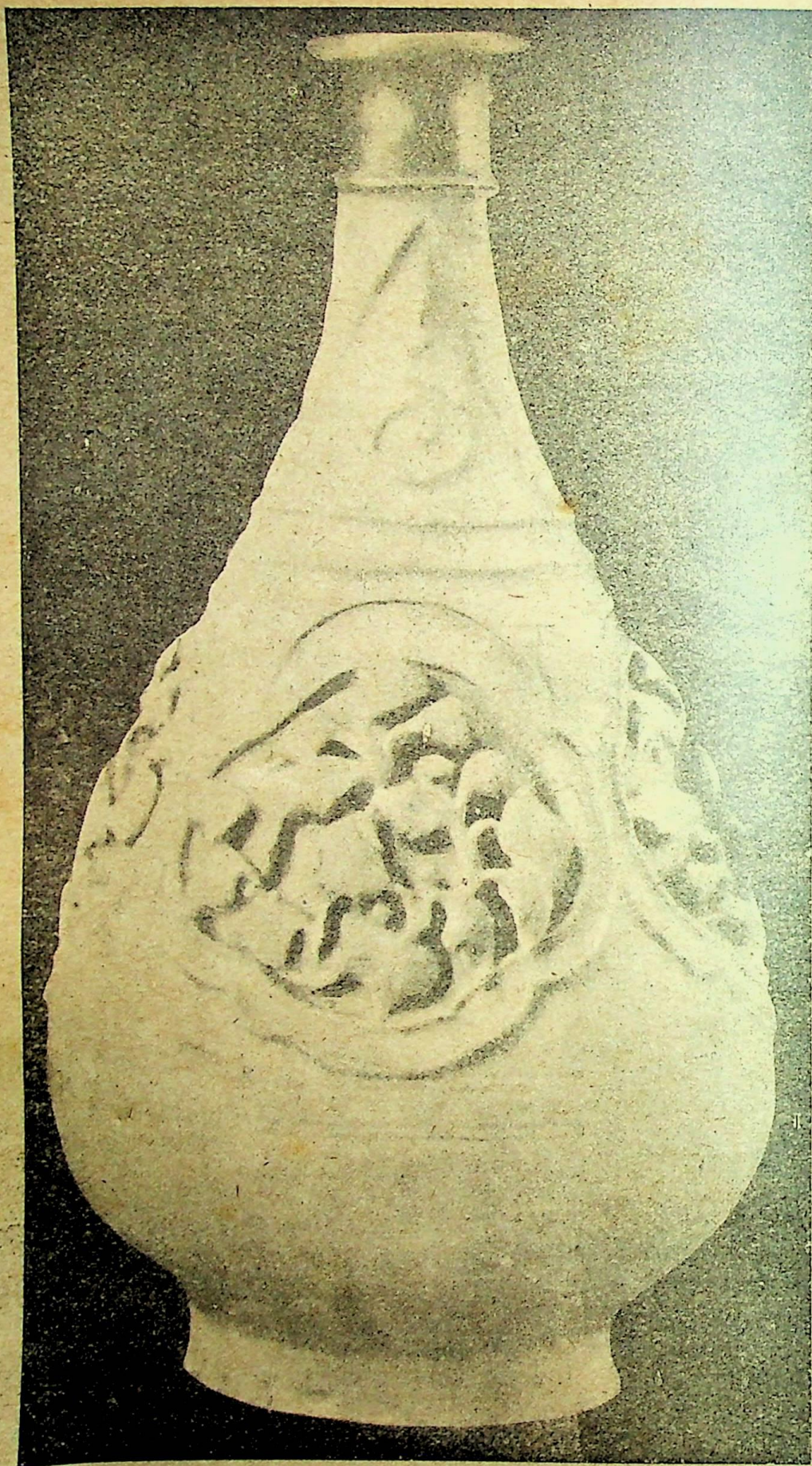
( चित्र ५ )

चित्र ६—भारतीय, धर्म दर्शन और कला इन तीनों का एशिया के कोने २ में प्रवेश हुआ। इस विषय का पूर्ण अध्ययन करने के लिये सहस्रों विद्वानों की आवश्यकता है। यदि हम किसी एक छोटे से छोटे देश को लेलें तो उस में भी कोई न कोई भारत की लुप्त विभूति विद्यमान् है। मन्चूरिया की पुरानी राजधानी मुक्दन् में हमने कुछ समय व्यतीत किया। यह समय जीवन भर विस्मृतन हो सकेगा। यहां हमने पहली बार चार भाषाओं में लिखे हुये गायत्री मन्त्र के दर्शन किये। यहां के धर्म के बौद्ध और तान्त्रिक होते हुये भी गायत्री का मिलना एक अचिन्त्य प्राप्ति थी। हम यहां चार भाषाओं में लिखे हुए इस गायत्री मन्त्र का चित्र उपस्थित करते हैं। चित्र में आठ पंक्तियां हैं। पहली और पांचवी पंक्ति मञ्जु लिपि में हैं। हम यहां मञ्जु शब्द का प्रयोग कर रहें है। 'मञ्चूरियन' का नहीं। चीन भाषा में भी देश जाति तथा भाषा का नाम मञ्जु है 'मञ्चूरिया' और 'मञ्चूरियन' नहीं। यहां की जनता अपने नाम का सम्बन्ध मञ्जुश्री देवता से जोड़ती है। हमारे साहित्य कों इतिहासज्ञों तथा भूगोलाध्यापकों को मञ्जु देश और मञ्जु भाषा और मञ्जु जाति इन्हीं शब्दों को सदा प्रयोग करना चाहिये। इनके प्रयोग से हमारे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध हमारे दृष्टि गोचर में सदा विद्यमान रहेंगे। एत द्विपरीत मञ्जूरिया और मञ्चूरियन नामों के प्रयोग से ये सम्बन्ध सर्वथा लुप्त हो जाते हैं। शताब्दियों का स्नेह अपरिचितता में परिवर्त्तित हो जाता है।

दूसरी पंक्ति चीनी की है, तीसरो पंक्ति मंगोल भाषा की है और चौथी भोट भाषा की। 'भोट' को अंग्रेजी में 'तिब्बत' कहते हैं। संस्कृत साहित्य में भोटशब्द भोटभाषा के 'बोद' का रूपान्तर है। इसी से 'भोटान्त' बना है। भोटान्त का हिन्दी में अन्तिम अक्षर लोप होकर 'भोटान' अथवा 'भूटान' रह गया है।

भोट लिपि पर ध्यान दीजिये। इसका निर्माण सातवीं शताब्दी से हुआ। यह देवनागरी और बंगला से बहुत मिलती है। एक दो घण्टे में इस लिपि का परिचय हो जाता है।

मञ्जु, चीनी, मंगोल और भोट चारों लिपियों में संस्कृतमय गायत्री मन्त्र लिखा है। जिन्होंने मन्त्र को लिखा वे संस्कृत भूल चुके थे। इसीलिये जो भी परम्परागत उच्चारण में भूलें होती गईं वे सब की सब इस में विद्यमान हैं। उसका संशोधन करने वाला कोई वैदिक विद्वान् इन देशों में नहीं पहुंचा। सैकड़ों वर्षों के पश्चात् केवल हमने ही तो अपने मित्र पुजारियों और पण्डितों को भव्य विशाल राजप्रसादवत सुशोभित और देदीप्यमान ३२५ वर्ष पुराने 'पीत मन्दिर' नामक देवालय में

मञ्जु, चीनी, मोंगोल और भोट लिपियों में गायत्री मन्त्र॥

唵不剌不斡娑。薩答都薩畢闍哩斡哩難。拔哩

無容拔希提納呵蔴。俞納剌但納鴉都。

(चित्र-६)

पूर्णिमा के सदा स्मरणीय प्रातर्वेला में गायत्री का शुद्ध उच्चारण और जीवन निशर्दक अर्थ का भक्ति पूर्वक भक्त तथा विद्वत् जनता को प्रवचन किया।

जो अशुद्ध रूप इस लेख में दिया है उस को हम नीचे लिखते हैं। चीनी पद्धति के अनुसार शब्द ऊपर से नीचे लिखे हैं। 'भ' और 'ध' को लिखने के लिये 'ब' और 'ह' तथा 'द' और 'ह' का प्रयोग किया गया है।

**ओम् भुर भुव स्व । स**
**ततु सवितुरि वन्नि**
**बुमिवहि तिन हे**
**त्यु । यु न प्रजुनयतु ।**

'भर्गो का रूप भ्रष्ट होकर 'बरिवु' बन गया। 'देवस्य' का मि बहि' बन गया। 'धीमहि' का तिनहे' बन गया। 'धियो' का 'त्यु' बन गया और 'प्रचोदयात्' का 'प्रजुनयतु' बन गया। शेष अपभ्रंश तो तुलना दृष्टि से साधारण हैं।

मंजु देश का समीपवर्ती शिविर देश है। शिबिर नाम भी पाठकों को स्मरण रखना चाहिए। अंग्रेजी में 'शिविर' को विकृत करके 'साईब्रीरिया' लिखा और पढा जाता है। शिविरदेश भारत धर्म कला और कहानियों का प्रदेश है। यहां की कला भारतीयों की कला है। इस कला का महत्व और भी बढ़ गया है। क्योंकि यह कला भारत में लुप्त हो गई है। वर्तमान भारतीय जीवन में कला का अभाव सा हो गया है। उस अभाव की पूर्ति के लिये शिबिर देश उपहार लिये खड़ा है। भारत चाहे तो इसको स्वीकार करे। अपने भूत के गौरव को जाने और अपने वर्तमान तथा भावी को कला के सौंदर्य से परिप्लावित करे।

चित्र ७। यह महाकाल का भीषण रूप है। महाकाल का एक २ केश अग्नि ज्वाला बन कर ऊर्ध्व दिशा में लहरा रहा है। महिष रूपी वाहन भी भीषणता का जीता जागता स्वरूप है। महाकाल यमान्तक और यमराज की शक्ति का हमारे पूर्वजों ने अविकल दर्शन किया था और जनता को भी कराया था। महाकाल की चण्डता जब तक मनुष्य के सामने नहीं आएगी उस समय तक वह अपने कर्तव्य के लिए सन्नद्ध न हो सकेगा।

( चित्र ६ )
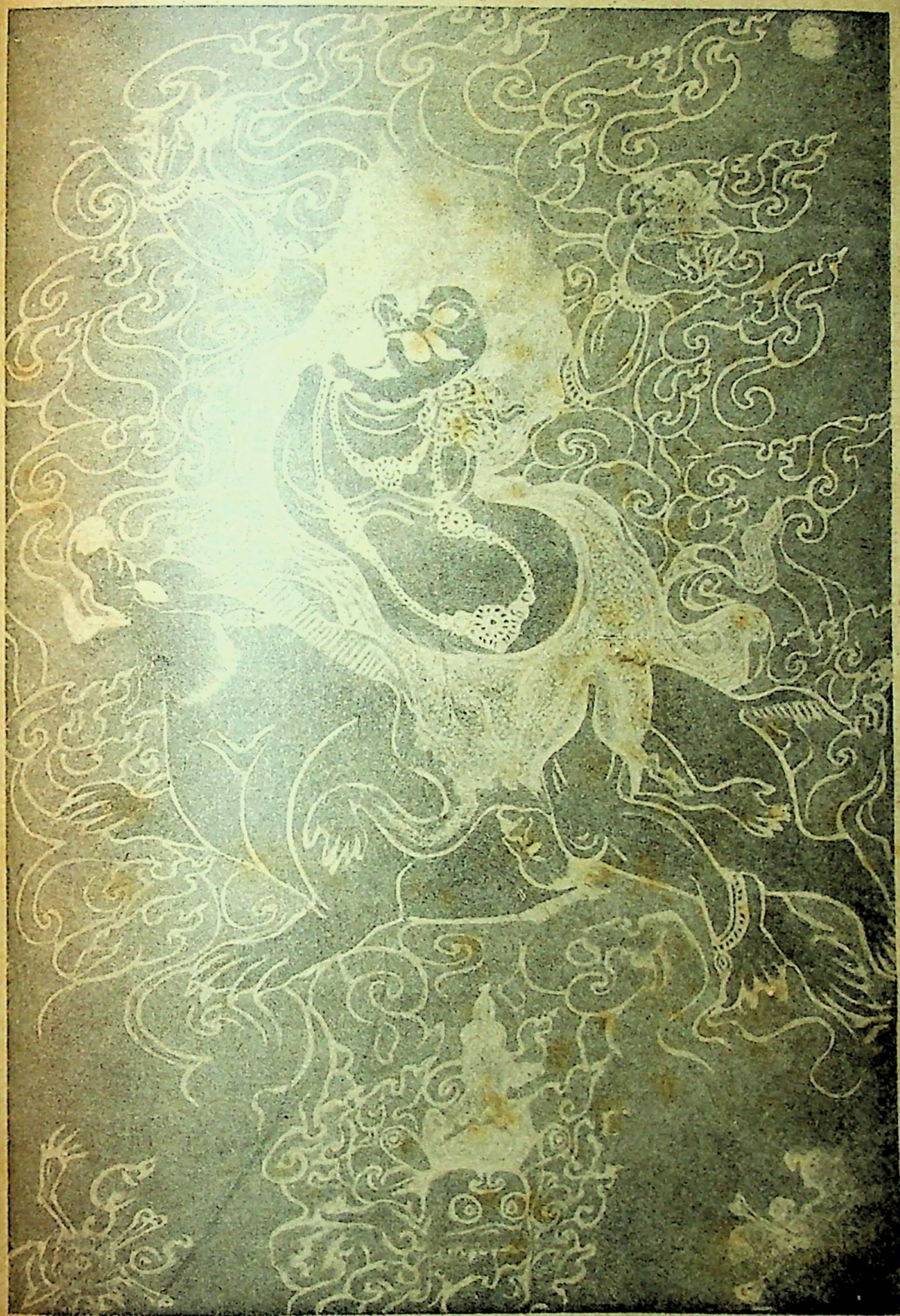
चित्र–८। धर्म के अतिरिक्त आयुर्वेद और ज्योतिष का भी एशिया में बहुत प्रचार हुआ है। एक और आध्यात्मिक शान्ति और शारीरिक रोगशमन भोटदेश से लेकर रूस तक भारतीय आयुर्वेद चलता रहा है। रूस के अन्तिम सम्राट् की चिकित्सा १६१७ तक अष्टांग हृदय नामक ग्रन्थ के निदान और योगों द्वारा होती थी। अष्टांगहृदय भारत के प्रमुख आयुर्वेद ग्रंथों में से है। जैसे चरक और सुश्रुत का प्रवेश अरबी भाषा और जीवन में हुआ वैसे ही अष्टांगहृदय का एशिया के मध्य और उत्तर प्रदेशों में। अष्टांगहृदय आज भी दो भाषाओं में मिलता है एक भोट और दूसरी मंगोल। यहां हम भोट के अष्टांगहृदय के प्रथम पृष्ठ के अर्ध भाग का चित्र देते हैं।
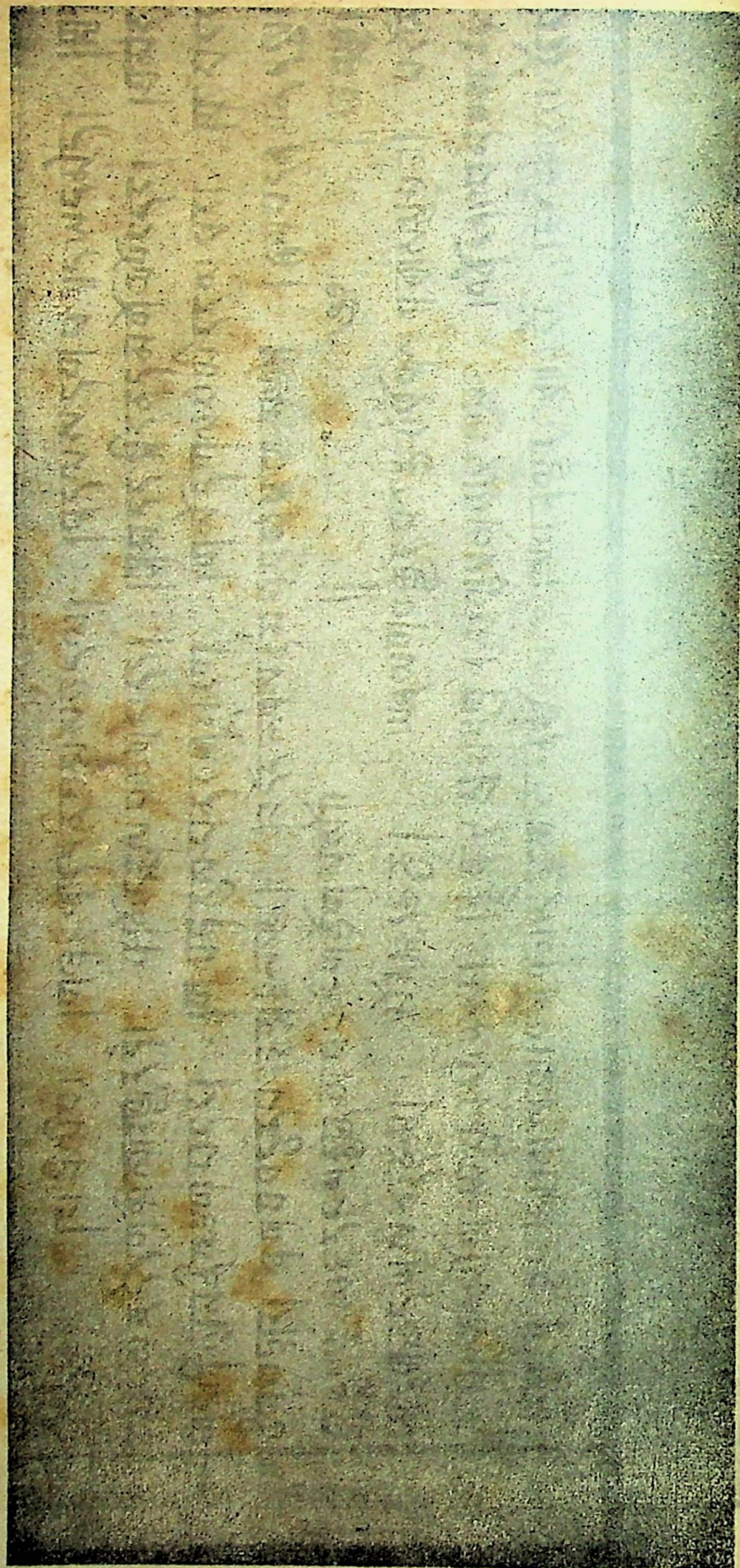
( चित्र ८ )

( चित्र ६ )

## चित्र ९ का उच्चारण व अर्थ

एर्थे उरिद् एनेद् खेग् उन् ओरोन् दुर आराजि बोजि नेरे थु निगेन् येखे ख़ाग़ान् बुलुगे। थेरे ख़ाग़ान् उ खोरियान् उ उलुस् उन् खेड खेद्। थुगुल् खारिगुलुन् नाग़ाद् खुइ दाग़ान्। निगेन् दोबु छाग़ थोलुग़ाइ देगेरे ग़ार्छु बुगुदेगेर उरुल्दुजु। आलि ग़ारुग़सान् आनु। मान् खु थेरे एदुर ए ख़ाग़ान् बोलुन् सागुग़ाद्। बुसु खेडखेद् आनु। सामिद्। थुशिमेद्। खिमा नार बोलुन् बायिखु बुलुगे। थेरे ख़ाग़ान् बोलुन् नाग़ाददुग़िछ खेड खेद् उन् देर्गेदे खुमुन् उजेरे इरेबेसु बेर। मोर्गुखु बा। सोगुदखु खिगेद्। योसुछिलान् खुन्दुलेखु योसुग़ार आमुन् एमिमेन् खेलेन् उ लु छिदाखु आजुगु। थेरे खेड खेन् उ सुर सुल्देमे येखे यित् थुला। ख़ाग़ान् लुग़ा निगेन् आदालि बुलुगे। थेमिमु याबुदाल इ इनु। उछाराजु उजेग्सेन् खुमुन्। थेरे उलुस इ इल्गा-ग्छि। आराजि बोजि ख़ाग़ान् दुर आमिलाद्-ख़ारसान् दुर। ख़ाग़ान् खेलेबेइ। निगेन् खोबे-गुन् एदुर बुरि खाग़ान् बोल्जु सागुखुला। थेगुन् इ बोदिसदु अ खेमेये। ओलान् खेउ खेद् बुरिभि आलि छोंग जालि थाइ आनु ख़ाग़ान् बोल्खुइ मि उजेबेसु। मोन् खु थेरे दोबुछाग़ थोलुग़ाइ मिन् शिलयाग़ान् बुइ जा खेमेबे। थेमिन् आथाला। थेरे येखे ख़ाग़ान् उ निगेन् आलबाथु

| | |
|---|---|
| एर्थे नुरिदु | = प्राचीन काल में |
| एनेद् खेम् | = भारत |
| उन् | = के |
| ओरोन् | = देश |
| दुर | = में |
| आराजि | = राजा |
| बोजि | = भोज |
| नेरेथु | = नामवाला (नेरे = नाम) |
| निगेन् | = एक |
| येखे | = महान |
| ख़ाग़ान् | = राजा |
| बुलुगे | = था |
| थेरे | = उस |
| ख़ाग़ान् उ | = राजा की |
| खोरियान् उ | = राज सभा के |
| उलुस–उन् | = जनों के |
| खेउ खेद् | = बच्चे (बहुवचन) |
| थुगुल | = बछड़े |
| खारि गुलुन् | = चराते हुए |
| नाग़ाद् खुइ दाग़ान् | = खेल के अनुसार |
| दोबु छाग् | = छोटे से |
| थोलुग़ाइ | = टीले |
| देगेरे | = पर |
| ग़ार्छु | = (सर्वप्रथम) पहुँचने (के लिए) |
| बुगुदेगेर | = सब के सब |
| उरुल्दुजु | = (सर्व प्रथम) दौड़कर (अर्थात् दौड़ते थे) |
| आलि | = जो |
| ग़ारुग़सान् | = पहुँचता, आगे निकलता |
| आनु | = उनमें से |
| मोन् खु | = वह ही |
| थेरे एदुरे | = उस दिन में |
| बोलुन् | = बन, बनकर |
| सागुग़ाद् | = बैठकर, बैठजाता, बैठता |
| बुसु | = अन्य |

सामिद् =सामन्त (बहुवचन)
थुशिमेद् =मन्त्री (बहुवचन)
खिशगतार =प्रगरक्षक-गण
बोलुन् बामिखु बुलुगे =बन जाते थे
थेरे =उन
नाग़ाददुग्छि =खेलने वाला
देर्गदे =पास
खुमुन् =पुरुष
उजेरे =मिलने के लिये
इरेग्मु बेर =जब आते
मोर्गुखु =प्रणाम करते
बा =और
सोगुद्खु =घुटनों के बल बैठते
खिगेद् =और
योसुछिलान् =विधिपूर्वक
खुन्दुलेखु =आदर करते
योसुगार =तदनुसार
आमुन् एमियेन् =भयभीत होकर
खेलेन् =बोल
उलु =न
छिदाखु =सकते
आजुगु =थे
थेरे =उस
खेडखेन् उ =बच्चे का
सुर =तेज
सुल्दे =ओज
येखेयिन् =अधिक (होने) के
थुला =कारण
खागान् लुगा =राजा के
निगेत् आदालि =एक समान, एकरूप
थेमिमु =ऐसे

माबुदाल इ =चरित को
इनु =उसके
उछाराजु =मिलकर
उजेग्सेन् =देखे हुए
खुमुन् =पुरुषों ने
उलुस् इ =देश के (इ-को)
इलगाग्छि =शासक शासन करने वाले)
खागान् दुर =राजा के पास
आयिलाद्खाग्सान् दुर =प्रतिवेदन करने पर
खेलेबेह =बोला
खोबेगुन् =लड़का
दुर बुरि =प्रतिदिन
बोल्जु =होकर
सागुखुला =यदि बैठे तो
थेगुन् इ =उसको
बोधिसदुग्र =बोधिसत्त्व
आोलान् =बहुत
बुरि यि =प्रत्येक को
आलि =जो
छोग =श्री
जालि थाइ =माया युक्त (थाह्=युक्त)
बोल्खुई यि =बनने को
उजें बेसु =यदि देखें
मोन्खु =उसी
योलुगाइ मिन् =टीले का
शिल्थागान् =परिणाम्
बुइ जा =निश्चित् है, है ही
खेमेबे =कहा इति
थेयिन् आथाला =ऐसा होने तक अर्थात् इस समय
आल्बाथु =प्रजाजन

चित्र ९। मंगोल और शिविर देश में भारतीय कहानियों प्रत्येक तम्बू में सुनाई जाती हैं। यात्रा के समय ऊंटों और घोड़ों की पीठ पर मातायें बच्चों को और बूढ़े युवकों को सुनाते हैं। इन कहानियां में सब से प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य की कथायें हैं। जो राजा भोज को काठ की पुतलियोंने सुनाईं। ये कहानियां भारत से गईं इस में कोई सन्देह नहीं। किन्तु आश्चर्य है कि इन कथाओं का जो स्वरूप मंगोल भाषा में विद्यमान है सर्वथा वही स्वरूप भारत से लुप्त हो गया प्रतीत होता है। आजकल इन कहानियोंको हम प्रकाशित कर रहे हैं। मंगोल भाषा मंगोल लिपि में। फिर मंगोल भाषा देवनागरी अक्षरों में। तत्पश्चात् एक २ शब्द का अनुवाद। और अन्त में अविकल हिन्दी अनुवाद।

साथ में हम इन कहानियों के पहले पृष्ठ का चित्र देते हैं। इन कहानियों का प्रसिद्ध नाम है 'अरजी–भोजी' अर्थात् 'राजा भोज'।

जिस पृष्ठ का चित्र हमने दिया है उसका हिन्दी अनुवाद भी देते हैं।

प्राचीनकाल में भारत देश में राजा भोज नाम वाले एक महान राजा थे। उस राजा की सभा के जनों के बच्चे बछड़े चराते हुये खेल के अनुसार एक छोटे टीले पर सर्व प्रथम पहुँचने के लिये सब के सब दौड़ लगाते। उनमें से जो आगे निकलता, वह ही उस दिन राजा बन बैठता। अन्य बच्चे सामन्त मन्त्री, और अंगरक्षक बन जाते थे। उन राजा बन कर खेलने वाले बच्चों के पास जब कोई मिलने आते तो प्रणाम करते, घुटने टेकते, विधिपूर्वक आदर करते और तदनुसार भयभीत होकर बोल न सकते थे। उस बालक के तेज और ओज के अधिक होने के कारण वह राजा के समान हो जाता। उसके ऐसे चरित को आंखों से देखने वाले लोगों ने उस देश के शासक राजा भोज से (प्रतिवेदन किया)। प्रतिवेदन करने पर राजा बोले—यदि एक ही लड़का प्रति दिन राजा बन बैठता तो मैं उसे बोधिसत्त्व कहता। परन्तु जब उन बच्चों में से प्रत्येक को ही श्री और माया युक्त बना देखता हूं तो निश्चित (यह) उसी छोटे से टीले का परिणाम है। इति।

चित्र १०—

यह चित्र मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी का है। श्री राम के आसन को हनुमान जी ने उठाया हुआ है। श्री रामचन्द्रजी की कहानी थायी कम्बुज और लाव देश में सुप्रसिद्ध है। मलाया में भी "हिकायत श्री राम" के नाम से रामायण की कथा का प्रचार है। इसी प्रकार जावा और बाली में रामायण का काव्य बहुत जन प्रिय है। इन सब देशों में रामायण की कथा का क्या स्वरूप बना इस पर हम विस्तृत अनुसन्धान कर रहे हैं। आगामी पांच छः वर्षो में ये अनुसन्धान प्रकाशित हो सकेगा।

( चित्र १० )

चित्र ११— यह चित्र कम्बुज देश का है। चित्र भैंसे के चमड़े पर बना है। हनुमान जी की ओजस्वी मुख मुद्रा तथा शक्तिशालिनी बाहु और छाती की पेशियां उनके पराक्रम की द्योतक हैं।

चित्र १२व१३-ये कविभाषा के दो चित्र श्रीमद् भगवद्गीता गर्भित भीष्म पर्व के एक ताल पत्र के दो पृष्ठ हैं। ये ताल पत्र हमको जावा के महागुरु पूर्व चरक ने आतिथ्योपहार में दिया था। इस तालपत्र का अभी तक किसी सम्पादक ने प्रयोग नहीं किया। इस में सम्पूर्ण भीष्म पर्व का संक्षेप है। गीता के उद्धृत श्लोकों में पर्याप्त पाठान्तर हैं किन्तु ये पाठान्तर इस प्रकार के नहीं कि विषय के प्रतिपादन में कोई विशेषता अथवा भिन्नता आये प्रथम तथा दूसरे अध्याय का संक्षेप पर्याप्त तथा अच्छा है और अध्याय बहुत संक्षिप्त कर दिये गये हैं। पन्द्रह सोलह और सत्तरह अध्याय हैं ही नहीं।

१९४७ की स्वतन्त्रता के पश्चात् बाली द्वीप में गीता का महत्व बढ़ गया है। १९४७ में जब प्रथम बार जावा में संसद् का अधिवेशन हुआ और प्रत्येक सदस्य ने अपने अपने धर्म ग्रन्थ पर हाथ रख कर शपथ ली तब बाली द्वीप के प्रतिनिधि ने भगवद् गीता को नमस्कार कर राष्ट्र के प्रति भक्ति और निष्ठा की प्रतिज्ञा की।

## चित्र संख्या १२-१३

**व्रु : ॥**

पंक्ति १

**यज्ञाशेषो शिवः शान्तः । मुच्यते सर्व्वकिल्विषेः । कुञ्जते त त्वघाम्पापः । ये चरन्त्यात्मकारणत् ॥**

पंक्ति २

यज्ञाशेष भिनुक्ति निर सं महापुरुष ङर-निर। मतंन्यन् तन् क्नें सर्व्वमल सिर। कुन-ङिक त्वङनङ केवल मिवा शरीर–

पंक्ति २

न्य जुग। येक सङप कपङ्ङु दे निक। लुम्कस मगवय देवभक्ति। कप्व पिनकङ्हुलुन्। न्यपन् तहन् क्व लिं सङार्य्य। कहम् पिसिः। अपन् हन ङ्हुलुन् सुमिद्धाक्न सप्रयोज्ञनन्तेरिक। इकंस्ङं किनार्य्यं जुग सिद्धाक्न मङ्के दे सङार्य्य। तन् सु-

पंक्ति ३

रुदेरिकिं रङक्रिया ॥

**श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः। परधर्म्मात् स्वनुष्ठितां ॥**

यद्यपित् विनागुण लिवर् निक स्वधर्म्म। न्दन् लृविः जुगय सङ्के परधर्म्म न् गिनवयकँन्। परधर्म्म ङरन्य। सि तन् धर्म्म निं क्षत्रिय ॥ म्ने तसॅन् सज्ञा हजि। लिवरवितन् मुवः त्क,

पंक्ति ४

प् निकिं धनञ्जय। हतञा रि परमेश्वर। यतन्यन् व्रुह पिनक ङ्हुलुन् ॥ धुमङ्क कप्व कह्यनुसङार्य्य। मवरह ङ्हुलुन् इ रकचन् यन् मङ्कम ॥

**बहुनि में व्यतितानी । जन्मनि च तव चार्जु न । न तानि वेझिसर्व्वानि । त त्वम् वेत्सि परन्तप ॥**

पंक्ति ५

पड भर जन्म निङ्हुलुन् लावन् कित । तन् लेन् मकङ्गा चत्वरि किता कलिः । सहोत्प्त जुग कित । इक त जन्म निङ्हुलुन् लावन् जन्मन्त । त्लस् अतीतकाल । तनेङँत् ङ्हुंलुद इ ल्विर् निक कबेः । मङ्कनातीत तनतुतुर् अतेरिक । तुहन् कुम्व त के-

पंक्ति ६

ङँति ङ्हुंलुन् ॥

**यदा यदा हि धर्म्मस्य । ग्लानिर्भवति भारत ॥**

यन् ल्विरग्रहङेल् त प्व सं ह्यं धर्म्मयुक्ति ॥

**अभ्युत्थानमधर्म्मस्य ॥**

इकड़ाधर्म्मकार्य्य । ल्विरङदँग यप्वन् मङ्कन ॥

**तथात्मानमुत्सृजाम्यहम् ॥**

इरिक त ङ्हुंलुनंजन्म मावकाश—

पंक्ति ७

रीर । निहन् पिः परमार्थन्य ॥

**परित्राणाय शाधूनां । विनाशाय दुरात्मानां । धर्म्मसंस्थापनार्थाय । सम्भवामि युगे युगे ॥**

कपरित्राणान् सं सज्जन महापुरुष । इलङ नि सर्व्वदुष्ट । पगँहनि धर्म्मकार्य्य । नाहन् दोनि हुलुन् म जन्माङ्कन् स—

पंक्ति ८

युग सयुग । कुजं फल निक ॥

**जन्म कर्म्म च मे दिव्य । एवां यो वेत्ति तत्त्वतःत्यक्ता देहं पुनर्जन्म । नैति मातिव सोऽर्जुनः ॥**

यन् हन त्वं कुमन्र हि जन्म निङ्हुंलुन् । परमार्था त देन्याङव्र हि । त्यक्त त यन्प शरीर । तन् ददि त य [ पुनर्जन्म ] ।

**यज्ञ शेषांशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व्वकि-**

ल्बिषैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये चरन्त्यात्मका-रणात् ॥

महापुरुष कहलाने वाला यज्ञशेष का भोग करता है । यही कारणहै कि वह सर्व्वमलों से मुक्त रहता है । परन्तु वह व्यक्ति जो अपने शरीर के लिये ही केवल खाता है, वह क्या पायेगा ? उद्यत हो जाओ और देवभक्ति करो मेर साथ, क्योंकि मैं तुम्हारे सब प्रयोजनों को सिद्ध कराऊंगा । हे आर्य्य पुरुष, किये जाने वाले कार्यों को करो। युद्ध से पीछे न हटो ।

श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्म्मात् स्वनुष्ठितात् ।

यद्यपि किसी का स्वधर्म्म विनागुण है तथापि ये श्रेष्ठ है परधर्म्म से यदि वह उसे करता है । परधर्म्म का अर्थ है कि वह क्षत्रिय का धर्म्म नहीं है ॥ आप की आज्ञा से, अब आप शीघ्रता कीजिये । मैं धनञ्जय आप पर-मेश्वर से पुनः एक बार प्रश्न करना चाहता हूं जिससे कि मैं जान सकूं ॥ हे आर्य्य, यदि तुम चाहते हो तो मैं तुम्हें इसका उपदेश दे सकता हूँ ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन । न तानि वेद्मि सर्व्वाणि न त्वं वेत्सि परन्तप ॥

मेरे और तुम्हारे जन्म समान है । हम दोनों के चार अङ्गों में कोई भेद नहीं है । तुम्हारी और मेरी उत्पत्ति भी समान है । मेरे और तुम्हारे जन्म, जो कि अतीत काल में हुये हैं उन सब के प्रकार मुझे स्मरण नहीं है । क्यों कि ऐसा यह अतीत मुझे स्मरण नहीं है । परन्तु इतना मैं जानता हूं कि–

यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

जब योग्य धर्म्म अग्राह्य और समाप्त होने लगता हैं ।

अभ्युत्थानमधर्म्मस्य

और जब अधर्म्म कार्य्य होने लगते हैं- ऐसी अवस्था में–

तथात्मानं सृजाम्यहम्

तब मैं शरीरधारी के रूप में जन्म लेता हूं । इसका परमार्थ निम्नलिखित है–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय दुष्कृतां-नाम्। धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

सज्जन महापुरुषों के परित्राण के लिये, सर्व्वदुष्टों का नाशकरने केलिये, धर्म्म कार्य्यों की स्थापना के लिये, सब युगों में मेरे जन्म लेने का यही उद्देश्य है। और उसका फल है—

जन्म कर्म्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोर्जुन ॥

जब व्यक्ति मेरे जन्म के विषय में जानता है, और परमार्थ में अर्थात् अच्छी प्रकार जानता है। शरीर छोड़ देने पर उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥

चित्र १४—ये चित्र कैस्पीयन सागर के उत्तर पश्चिमी तट पर स्थित युरोपीयन रूस के प्रसिद्ध नगर अस्त्राखान में हाथ से लिखे हुये पद्म पुराण का ७४ वां पन्ना है। थोड़ा सा यत्न करने पर अनुभवी पाठक इसको पढ़ सकेंगे।

चौथी पंक्ति में पद्म पुराणे कार्तिक महात्मने, पांचवी पंक्ति में उनतीसमों अध्यायः ॥२९॥ इति।

छठी पंक्ति में लिखितं आस्त्राखान मध्ये वैरागी सन्तदास।

आठवीं पंक्ति में संम्वत् १७–१८ रास ६८

नवीं पंक्ति में माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथि एकादशी गुरुवासरे इत्यादि

आस्त्राखान नगर में पुराणों का लिखा जाना एक बहुत महत्व की ऐतिहासिक घटना है।

भारतीय इतिहास धर्म और दर्शन-साहित्य और कला के विस्तार की अनन्त सामग्री हमने संग्रह की है। इस लेख और लेख के अन्तर्गत चित्रों से पाठकों को उसका कुछ ही दिग्दर्शन होसकेगा।

## चित्र संख्या १४ का अनुवाद

जी ।। जंइसीमति तं इसी कछु ठानी ।।
सहस्र वदन तिसु पारु न पायो ।
कंचतुकवजन भाषि सुनायो ।।३८।।
दोहडा ।।
कवकर--नंदकमहा ।।
मतज न भावे कोई ।।
गोविन्दचर्चा हमु करा ।।
चंडीवरुदीमोः माही ।।३९।।
इति श्री पद्मपुराणे कार्त्तिक महात्मने ।।
श्रीकृष्ण सत्यभामा संवादे २९ मो ।।
इति श्री कार्तिक महात्मन सम्पूर्ण समाप्त ।।
लिखतं ग्रास्त्रखान मध्ये ।।
वैरागी सन्तदास राधागडवासी भाडे का नर-मोहि ।।
द्वारा घमडयान ।।
सम्प्रदानी मावत श्री हर व्यासदेवजी सहाय ।।
संवत् १९ रांस ६८ सठ ग्रा ।।
माघ मासे कृष्णपक्षे ।।
तिथ एकादशी गुरुवासरे ।।
भुल चुक लिख्यो माफ ।।
नाहं तिष्ठामि बैकुंठे ।।
यो–मां हृदं–न च ।।
मद भक्ता यत्र गायन्ति ।।
तत्र तिष्ठामि नारद ।।
वैंशम्पायनोवाच ।।
श्री राधाकृष्ण जी

## प्राचीन और नवीन वेदभाष्यकारों की दृष्टि में

# वेदार्थ में यौगिक प्रक्रिया

[लेखिका—श्री श्रीमती देवी शास्त्री, साहित्यरत्न, वेदाचार्य]
ध० प० आचार्य विश्वश्रवा: व्यास

ऋषि की यौगिक प्रक्रिया के उपरान्त ही यह सपस्ट हुआ कि अग्नि वायु आदि परमात्मा नहीं परमात्मा के वाचक हैं। इसी व्याख्यान से प्राचीन भाष्यों की संगति लगी। इस सरणि को अपना अन्य मतों ने जान बचाने का यत्न किया। वेदाचार्या के लेख में पढ़िये। श्रीमती देवी भारत वर्ष में एकमात्र महिला हैं जिन्हों ने काशी की परीक्षाएं वेद विषय में उत्तीर्ण की हैं।—सम्पादक

जगत् गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वतो ने जिस समय दीक्षार्थ गुरुधाम में प्रवेश किया उस समय चारों वेद भारत में यज्ञों में उच्चारण करने मात्र के लिये समझे जाते थे और विदेशों में कहानियों के पोथे और गड़रियों के गीत। महर्षि ने गुरु से विद्या प्राप्त कर समाधि से ब्रह्म का साक्षात् कर एक डिण्डिम घोष किया।

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

वेद का निर्माण मनुष्य की प्रतिभा से परे है। यह भगवान् की कृति मानव मात्र के कल्याण के लिये है। देखो इसमें क्या लिखा है।" महर्षि ने वेदों पर भाष्य करना प्रारम्भ किया और देश और विदेश की आंखें खोल दीं। पण्डित घबरा उठे तत्कालीन विदेशी-स्कालर भी तिलमिला गये। कुछ सज्जन लोग गम्भीरता से विचार करने लगे और उन्होंने देखा कि महर्षि की धारणा सारभूत है अब तो उन्हें पिछले साहित्य में भी वेद का असली स्वरूप प्रकट होने लगा। पिछले पोथे भी फिर से खोल खोल कर देखे जाने लगे। दयानन्द की दी हुई दिव्य दृष्टि से जब देखा गया तो क्या पाया गया, क्या २ ढूंढा गया, क्या मिला, क्या हुआ। देखिये—

### १—स पूर्णत्वात् पुमान् नाम पौरुषे सूक्त ईरितः स एवाखिल-वेदार्थः

'भगवत्पादाचार्य आनन्द तीर्थ इनका समय १२५५ से १३५५ तक है। वे कहतेहैं कि पुरुष सूक्त में जिसका वर्णन है वह पुरुष शब्द ईश्वर का वाचक है। क्योंकि वह सब संसार में पूर्ण व्यापक है।

पुरुष शब्द का प्रयोग गौण रूप से मनुष्य में होता है क्योंकि वह शरीर मात्र में व्यापक

है। पर सर्वत्र व्यापक होने से वास्तव में पुरु+ष=पुरि+शय है।

वेद में अग्नि आदि पदों का अर्थ भी परमात्मा है सब वेदों में अग्नि आदि नामों से परमात्मा का वर्णन हैं उनका कथन इस प्रकार है।--

**अग्रणीत्वं यदाग्नित्वमित्यग्रे नाम तद् भवेत्।**
**एवमेवाह भगवान् निरुक्तिं बादरायणः ॥**

अर्थात्-अग्नि शब्द का अर्थ है :-सबसे पहले जिसको स्मरण किया जावे वह भगवान् ही हो सकता है अतः अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर है।

२-यही बात वेद-भाष्यकार आत्मानन्द कहता है जिसने ऋग्वेद के अस्य वामीय सूक्त पर भाष्य किया है।

**स एवाग्रणीत्वादग्निः।**

३-इसी सिद्धान्त का वर्णन पुष्कर कल्प में है।

**इन्द्रादि-शब्दा गुणयोगतो वा**
**व्युत्पत्तितो वापि परेशमाहुः ॥**
**विप्रास्तदेकं बहुधा वदन्ति**
**प्राज्ञास्तु नाना पि सदेकमाहुः ॥**

अर्थात्-वेद में आये इन्द्र आदि शब्द यौगिक प्रक्रिया के आधार पर ईश्वर के वाचक हैं।

४-यही बात दुर्गाचार्य कहता है।-

**सर्वाभिधानमात्मार्थमेवेति।**

अर्थात् सब वेद का अभिप्राय ईश्वर में है।

५-यह बात जयतीर्थ कहता है जिसका समय १३६० है।

**ऋगर्थश्च त्रिविधो भवति। एकस्तावत् प्रसिद्धाग्न्यादिरूपः, अपरस्तदन्तर्गतेश्वरलक्षणः अन्यो अध्यात्मरूपः तत् त्रितयपरं चेदं भाष्यम्।**

अर्थात्—ऋग्वेद के मन्त्रों के अर्थ प्रसिद्ध अग्नि वाचक आदि रूप से तीन प्रकार का है।

६-यही बात रावणभाष्य के बारे में सूर्य पण्डित कहता है।

**रावण भाष्ये त्वध्यात्मरीत्याभ्यन्तर सञ्ज्ञाय विषयो दर्शितः।**

अर्थात्—रावण के वेदभाष्य में अभ्यन्तर विषयक आत्मा आदि का वर्णन है।

७—यही बात भट्टभास्कर जो ११ वीं शताब्दी में हुआ था कहता है।

**अध्यात्ममधिदैवमधियज्ञमत्धकृत्य**
**त्रेधेमं मन्त्रं व्याचक्षते।**

अर्थात्-हंसः शुचिषत्० आदि मन्त्र की व्याख्या तीन प्रकार से है आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधियाज्ञिक।

८-यही बात स्कन्द कहता है।

**सर्वदर्शनेषु सर्वे मन्त्रा योजनीयाः**

अर्थात्-सब वेद मन्त्रों के अर्थ आध्यात्मिक आदि सब प्रकार का करना चाहिये।

९-यही बात आचार्य वररुचि कहता है।

**एवमितिहासपक्षे योजना निरुक्त पक्षे तु पुरुरवा मध्यमस्थानः।**

अर्थात्—जिन मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ किया जाता है नैरुक्त लोगों के यहां उन मन्त्रों का अर्थ ऐतिहासिक न होकर अन्य प्रकार से यौगिक प्रक्रिया के आधार पर विद्युत आदि भी होता है।

१०—यही बात यास्क ऋषि अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ निरुक्त में लिखते हैं।

**अर्थं वाचः पुष्पफलमाह । याज्ञदैवते पुष्पफले । देवताध्यात्मे वा ।**

अर्थात्—मन्त्र का अर्थ वेदवाणी का फूल और फल है अथवा आधियाजिक अर्थ फूल और आधिदैविक अर्थ फल। या यह कहो कि आधिदैविक अर्थ फूल आध्यात्मिक अर्थ फल। अभिप्राय यह है कि वेद मन्त्रों के अर्थ तीनों प्रकार के होते हैं।

ऋषि ने जब वेद की यौगिक प्रक्रिया का अर्थ दर्शाया तभी इस प्रकार के मन्तव्यों की संगति लगी। ऋषि से पहले तो अग्नि को ही परमात्मा मानते थे। अग्नि का अर्थ ईश्वर है, ऋषि की इस देन के उपरान्त इन प्रमाणों की संगति ठीक बैठ सकी।

ऋषि की प्रचारित इस यौगिक प्रक्रिया का प्रभाव यहां तक हो गया कि पौराणिक लोग पुराणों के अर्थ भी यौगिक-प्रक्रिया से करके पुराणों की रक्षा का सहारा ढूंढ रहे हैं।

अंग्रेजी के कुछ भारतीय विद्वान वैदिक देवताओं के अन्दर विज्ञान को देख रहे हैं। जिसका प्रमाण 'वैदिक गाड' नामक ग्रन्थ है। ऋषि की इस यौगिक प्रक्रिया का चमत्कार दूसरी भाषाओं पर भी पड़ा जिसने कुरान और बायबिल के अर्थ को बदलवा दिया, और बुद्धि संगत बनाने की चेष्टा प्रारम्भ हुई।

गुरुवर विरजानन्द से दीक्षित ऋषिवर दयानन्द के आन्दोलन ने—

मानव मात्र को हिला दिया।<br>
धरती को कंपा दिया।<br>
पन्थों के पोथों को बदल दिया।<br>
विदेशी स्कालरों के हृदय को दहला दिया॥<br>
बदल गई भले आदमियों की विचारधारा<br>
पलट गई विश्व की काया।<br>
शान्त हुई मतों की माया।

अभी तो सौ वर्ष ही हुए हैं। आगे आगे देखना होता है क्या? सब सत्य विद्याओं का पुस्तक वेद—

**पुनः समस्त विश्व का स्वीकृत धर्मग्रन्थ होगा।**

---

॥ऋषि लेखनी की करारी चोट विदेशियों पर लगी। उससे तिलमिला जो लाखों अरबों रुपया व्यय कर लाखों पृष्ठ ही नहीं वेद के खण्डन में हजारों पुस्तक प्रकाशित की हैं, उन का मुंह तोड उत्तर लिखे बिना आज के पठित समाज में वेद का सम्मान न बढ़ सकेगा—उनके प्रति हमारी उदासीनता पठित नवयुवकों को आर्य समाज से पृथक कर रही हैं।—सम्पादक राजेन्द्र

# दण्डी विरजानन्द तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन की मुख्य मुख्य तिथियां

गुरुवर विरजानन्द जी दण्डी और महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन की मुख्य मुख्य तिथियां हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं ये आर्य बन्धुओं के लिये अति सुरक्षित संग्राह्य लेख रहेगा और ऋषि तथा दण्डी जी के जीवन चरित्रों के अध्ययन में सहायक होगा। हमारी दृष्टिमें इस समय प्रो० भीमसेनजी शास्त्री एम० ए० इस विषय के विशेष अध्ययन करने वाले हैं अतः उनसे इसको तैयार कराया गया।

आचार्य विश्वश्रवाः 'व्यास'

## मुनि मूर्धन्य गुरुवर विरजानन्द दण्डी के जीवन की झांकी

सं० १८३५ (खी० १७७८) गङ्गापुर के निवासी नारायणदत्त के सूनु विरजानन्द का जन्म (नूर महल में)

[सं० १८३७ (खी० १७८०) रणजीतसिंह जन्म गुजरां वाले में ]

[ ,, १८४० (खी० १७८३) के लगभग दयानन्द के पिता कर्षन जी का जन्म]

,, १८४० (खी० १७८३) नारायणदत्त पुत्र का विद्या प्रारम्भ।

,, १८४२ (खी० १७८५) लगभग शीतला से नेत्र हीनता।

,, १८४३ (खी० १७८६) व सन्त विरजानन्द उपनयन।

,, १८४७ (खी० १७९०) विरजानन्द के माता पिता का स्वर्गवास।

,, १८४८ (खी० १७९१) विरजानन्द का गङ्गापुर त्याग।

[ ,, १८४९ (खी० १७९२) रणजीतसिंह राजा बना ]

,, १८५० (खी० १७९३) विरजानन्द हृषीकेश पहुँचे। गायत्री जप तीन वर्ष।

,, १८५३ (खी० १७९६) विरजानन्द हरिद्वार गये। संन्यास दीक्षा।

,, १८५६ (खी० १७९९) काशी को प्रयाण।

[ ,, १८५६ (खी० १७९९) रणजीतसिंह लाभपुर (लाहौर) का राजा बना।

,, १८५७-१८६८ (खी० १८००-१८१०) विरजानन्द का काशी वास।

[ ,, १८६० (खी० १८०३) अंग्रेजों का देहली व आगरा प्रान्त पर अधिकार ]

,, १८६५ (खी० १८०८) विनयसिंह अलवर नरेश का जन्म।
,, १८६८–७१ (खी० १८११–१४) गया निवास।
,, १८७१–७२ (खी० १८१४–१५) कलिकाता यात्रा।
,, १८७२–७८ (खी० १८१५–२१) कलिकाता निवास।
,, १८७८–८० (खी० १८२१–२३) भागीरथी परिक्रमा का पूर्णता (हरद्वार पहुँच कर) तथा सोरों यात्रा।
[ ,, १८७९ (खी० १८२२) कोटा (बूंदी) के हाड़ा राजपूतों का अंग्रेजों से मांग रोल (कोटा) में युद्ध।]
[सं० १८८१–फाल्गुन वदी १० शनि (१२-२-१८२५) को मूलशङ्कर (दयानन्द) का जन्म।]
,, १८८९ वैशाख व० (खी० १८३२ अप्रैल) अलवर गमन।
,, १८८९–९२ (खी० १८३२–३५) अलवर निवास।
,, १८९२–९३ (खी० १८३५–३६) भरतपुर मुरसान बेसवां निवास।
,, १८९३-१९०२ (खी० १८३६-४५) सोरों का द्वितीय निवास।
,, १९०२ (खी० १८४५) मथुरा गमन।
,, १९०२-१६ (खी० १८४५-५९) मथुरा निवास का अनार्ष ग्रन्थ युग।
,, १९१६-२५ (खी० १८५९-६८) मथुरा निवास का आर्ष ग्रन्थ युग।
,, १९१७ कार्तिक शु० २ बुध (१४-११-१८६० खी०) स्वामी दयानन्द का अध्ययनारम्भ।
,, १९१९ का अन्त (खी १८६३ मार्च) स्वामी दयानन्द की विद्या समाप्ति।
,, १९२५ आश्विन वदि १३ सोम (१४-९-१८६८) विरजानन्द निर्वाण।

# महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन की झांकी

सं० १८४० (खी० १८८३) के लगभग कर्षन जी (दयानन्द के पिता) का जन्म।
सं० १८६९ (खी० १८१२) कर्षन जी ने काकदड़ी युद्ध में भाग लिया।
सं० १८८१ फाल्गुन व० १०, शनि (१२-२-१८२५) मूलशङ्कर (दयानन्द) का टंकारा में जन्म।
सं० १८८३ (खी० १८२६) मूलशङ्कर का चूड़ा कर्म संभवतः सिद्धपुर में।
सं० १८८४ प्रारंभ (खी०१८२७) मूलशङ्कर की प्रथम अनुजा का जन्म (इसकी सं० १८९८ ग्रीष्म में मृत्यु)
सं० १८८६ वसन्त (खी० १८२९) मूलशङ्कर ने देवनागरी अक्षर पढ़ने प्रारम्भ किये।
,, ,, मध्य के लगभग मूलशङ्कर के मध्यम भ्राता का जन्म [इसकी विशूचिका से मृत्यु सं० १९०३ के पश्चात् शीघ्र ही]

,, १८८७ माघ व० १४ बुध ( १२-१-१८३१ ) मोरवी नरेश पृथ्वीराज ने कुवेरनाथ महादेव (कर्षण जी के बनाये शिव मन्दिर) को १२ बीघा भूमि भेंट की ।

सं० १८८९ वसन्त (ख्री० १८३२) मूलशङ्कर का उपनयन ।

,, ,, (उत्तरार्ध में) भगिनी प्रेमबाई का जन्म [ इसकी सन्तति टंकारा में विद्यमान है ]

सं० १८९० (ख्री० १८३४) मूलशङ्कर का पार्थिव पूजन प्रारम्भ ।

सं० १८९४ शिवरात्रि गुरु (२२-२-१८३८) बोध रात्रि कुवेरनाथ के मन्दिर में, तदनन्तर पार्थिव पूजन से छुटकारा ।

सं० १८९८ (ख्री० १८४१) ग्रीष्म, प्रथम अनुजा की मृत्यु ।

,, ,, ,, ,, कनिष्ठ भ्राता का जन्म । इसका विवाहोपरांत देहांत ।

,, १८९९ (ख्री० १८४२) कर्षन जी की भूमि पर पड़ौसी खेत वाले का अधिकार, मूलशङ्कर को खड्गहस्त देख कर वे भाग गये ।

,, १९०१ (ख्री० १८४४) श्री मूलशङ्कर के पितृव्य का देहांत ।

,, ,, कार्तिक के पश्चात् विवाह की चर्चा व उसका मूलजी द्वारा प्रयत्न पूर्वक टाला जाना ।

सं० १९०१ के अन्त के लगभग समीपस्थ ग्राम में अध्ययन प्रारम्भ ।

सं० १९०२ फाल्गुन बदि (ख्री० १८४६ फरवरी) में घर बुलाया जाना ।

सं० १९०३ चैत्र शुक्ल (ख्री० १८४६ अप्रैल) में टंकारा त्याग ।

सं० १९०३ वैशाख (ख्री० १८४६ मई) में सायला में नैष्ठिक ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य बने ।

,, ,, आषाढ से आश्विन (ख्री० १८४६ जून से सितम्बर) कोठ गाँगड़ में निवास ।

,, ,, आश्विन शुक्ला (ख्री० १८४६ सितम्बर) सिद्धपुर पहुंचे ।

सं० १९०३ कार्तिक शुक्लान्त (ख्री० १८४६ नवम्बर आरम्भ) में पिता द्वारा पकड़े गये ।

,, ,, मार्गशीर्ष-पौष (ख्री० १८४६ नवम्बर-दिसम्बर) बड़ौदा रहे ।

, ,, पौष पूर्णिमा (ख्री० १८४६ दिसंबरांत) से पूर्व चाणोद पहुँचे ।

सं० १९०५ आषाढ शु० (ख्री १८४८ जुलाई) संन्यास ग्रहण ।

,, ,, मार्गशीर्ष से सं० १९०८ तक तक व्यासतीर्थ व सीनोर में अध्ययन ।

सं० १९०८-१० (ख्री. १८५१-५३) चाणोद कन्याली में अध्ययन ।

[सं०१९०५-१० तक नर्मदा तट पर वेद व्याकरण व दर्शनों का तथा योग का अभ्यास]

,, १९१० (ख्री० १८५३) अहमदाबाद गये ।

,, १९११ (ख्री० १८५४) आबू पर्वत गये ।

,, ,, (ख्री० १८५४-५५) पुष्कर, जयपुर, अलवर, देहली, हरद्वार यात्रा ।

सं० १९१२ (ख्री० १८५५) हरद्वार (कुम्भ) हृषीकेश टिहरी, श्रीनगर, शिवपुरी (में चातुर्मास्य) तुङ्गनाथ, उखीमठ, जोशीमठ, केदारनाथ, बदरीनाथ यात्रा ।

सं० १९१२ (खी० १८५६) रामनगर, काशीपुर, द्रोणसागर, (शीत ऋतु निवास) मुरादाबाद, गढ़मुक्तेश्वर, हरद्वार, (अति वृद्ध स्वामी पूर्णानन्द से पढ़ाने की प्रार्थना), फरुखाबाद यात्रा।

सं० १९१३ (खी० १८५६) कन्नौज, कानपुर, प्रयाग, विन्ध्याचल, काशी, चण्डालगढ़ यात्रा, नर्मदा स्रोत दर्शन।

सं० १९१४–१७ (खी० १८५७–६०) भारत का विस्तृत पर्यटन। काशी में कुछ काल अध्ययन।

सं० १९१७ कार्तिक शु० २ बुध (१४-११-१८६० खी०) श्री विरजानन्द पाद पद्ममें मथुरा पहुँचे।

सं० १९१९ अन्त (खी० १८६३ मार्च) मथुरा में अध्ययन समाप्त।

,, १९१९ चैत्र बदि से सं० १९२१ पौष शुक्ल तक (खी० १८६३ मार्च–१८६५ जनवरी) आगरा निवास, स्वाध्याय (मनन-योगाभ्यास), विशेष रूप से नित्य उपदेश व अध्ययन भी।

सं० १९२१ माघ कृ० १२—सं० १९२२ वैशाख शु० १२ (२५-१-१८६५-७-५-१८६५) ग्वालियर में (वैष्णवों और भागवत पुराण का प्रबल खण्डन)।

सं० १९२२ कार्तिक-चैत्र कृ०५ (१८६५ अक्टूबर–१८६६ मार्च ६) जयपुर पंडित मंडल का व्याकरण में पराजय, वैष्णवों का खण्डन।

,, १९२३ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा ( १८६६ जून ) अजमेर में पादरी ग्रे रोब्सन व शूलब्रेड से शास्त्रार्थ।

अजमेर में कर्नल ब्रुक से गोवध बन्दी पर बातचीत।

सं० १९२३ फाल्गुन शु० १-१९२४–वैशाख ( १८६७ मार्च–१ अप्रैल हरद्वार कुंभ के मेले पर पाखण्ड खण्डन पताका आरोपण कर धुआंधार खण्डन। स्वा० विशुद्धानन्द जो से वाद।

सं० १९२४ आषाढ़ शुक्ला (१८६७ जुलाई) रामघाट में कृष्णानन्द से शास्त्रार्थ।

सं० १९२४ भाद्रपद ( १८६७ अगस्त) कर्णवास में अम्बादत्त से शास्त्रार्थ

,, ,, मार्गशीर्ष ( १८६७ नवम्बर) कर्णवास में हीरा वल्लभ से शास्त्रार्थ।

सं० १९२५ चैत्र शुक्ला ( १८६८ अप्रैल) सोरों में पण्डित अंगद शास्त्री से शास्त्रार्थ।

सं० १९२५ ज्येष्ठ (१८६८ मई) या कुछ पश्चात् रावकर्णसिंह बरौलीका खड्ग प्रहार कर्णवासमें

[सं० १९२५ आश्विन व० १३ सोम १४-९-१८६८ मथुरा में विरजानन्द निर्वाण।]

सं० १९२५ पौष (१८६८ दिसम्बर) या कुछ अनन्तर फरुखाबाद में श्री गोपाल से शास्त्रार्थ और काशी की व्यवस्था।

सं० १९२६ आषाढ़ ( १८६९ जून या जुलाई ) कन्नौज में पं० हरिशङ्कर से शास्त्रार्थ।

„ „ श्रावण कृ० ७ शनि (३१-७-१८६९) कानपुर में हलधर ओझा से पुनः शास्त्रार्थ। इसमें अंगरेज मध्यस्थ।

सं० १९२६ कार्तिक शु० १२ भौम (१६-११-१८६९) प्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ।

सं० १९२९ फाल्गुन व० १ शनि (२२-२-१८७३) संस्कृत व्याख्यान का भाषानुवाद सुनाने में महेशचन्द्र न्यायरत्न ने गोलमाल किया।

„ „ चैत्र कृ० ९ रवि (२३-३-१८७३) पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न से कलकत्ते में शास्त्रार्थ।

„ १९३० चैत्र शु० ११ भौम (८-४-१८७३) हुगली में पं० ताराचरण से शास्त्रार्थ।

सं० १९३१ प्रथम आषाढ़ कृ० (१८७४ जून) प्रथम हिन्दी व्याख्यान काशी में।

सं० १९३१ प्रथम आषाढ़ कृष्णा १३ शुक्र (१२-६-१८७४) सत्यार्थप्रकाश लेखन प्रारम्भ काशी में।

सं० १९३२ चैत्र शु० ५ शनि (१०-४-१८७५) आर्यसमाज स्थापित मुम्बई में।

„ „ ज्येष्ठ (१८७५ जून) बम्बई में पं० कमल नयनाचार्य से शास्त्रार्थ।

„ „ „ „ „ काशी में सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित।

„ „ आषाढ़ कृ० ९ रवि (२७-६-१८७५) पं० रामलाल से बम्बई में शास्त्रार्थ।

„ १९३३ मार्ग शु० (१८७६ नवम्बर) मुरादाबाद में पादरी पार्कर से शास्त्रार्थ।

„ „ माघ कृ० (१८७७ जनवरी) देहली में सर्वधर्म नेताओं का सम्मेलन।

„ १९३४ चैत्र शु० ६ भौम (२०-३-१८७७) चाँदापुर गमन, पादरी स्काट व मौलवी मुहम्मद कासिम से शास्त्रार्थ।

„ „ द्वितीया ज्येष्ठ शु० १४ रवि (२४-६-१८७७) आर्यसमाज लाभपुर (लाहौर) स्थापना।

„ „ आश्विन कृ० २ सोम (२४-९-१८७७) जलन्धर में मौलवी अहमदहसन से शास्त्रार्थ।

„ „ फाल्गुन (१९-२-१८७८) गुजरांवाला में ईसाई पादरियों से शास्त्रार्थ।

थियासोफीकल सोसाइटी स्थापित आर्यसमाज की शाखा बनाई गई।

[सं० १९३५ वैशाख (१८७८मई) अमरीका में।]

„ „ मार्ग० शु० ४ गुरु (२८-११-१८७८) अजमेर में पादरी ग्रे व हस्बेन्ड से शास्त्रार्थ।

„ „ फाल्गुन कृ० ११ सोम (१७-२-१८७९) हरिद्वार कुम्भ पर प्रचारार्थ पहुँचे।

सं० १९३६ वैशाख शु० १० गुरु (११-५-१८७९) सहारनपुर में कर्नल अलकाट व मेडम ब्लैवट्स्की से मिले।

„ „ भाद्र शु० ८ सोम (२५-८-१८७९) बरेली में पादरी स्काट से शास्त्रार्थ।

„ „ माघ शु० २ गुरु (१२-२-१८८०) वैदिक यन्त्रालय स्थापित :

„ १९३७ श्रावण शु० ११ सोम (१६-८-१८८०) प्रथम स्वीकार पत्र मेरठ में रजिस्टर्ड।

„ १९३८ आषाढ़ शु० २ भौम (२८-६-१८८१) ब्यावर में पादरी शूलब्रेड से शास्त्रार्थ।

„ १९३९ चैत्र शु० ९ भौम (२८-३-१८८२) थियोसोफिकल सोसाइटी से सम्बन्ध विच्छेद।

[शेष पृष्ठ ६०३ पर]

# परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम 'ओम्' क्यों ?

[ लेखक—श्री डा० सत्यकाम भारद्वाज, नई दिल्ली ]

द्वापर के अन्तिम चरण और कलि के प्रवेश होने तक वैदिक सनातन शिक्षा पद्धति का ह्रास हो गया था और धीरे-धीरे वेद विद्या तथा वैदिक परिभाषाकी अनभिज्ञता इस आर्यावर्त्त में भी व्यापक हो गई थी। वेद के मंत्रों में विहित अनेकों देवता ही लोगों के इष्ट आराध्य देवता बन गये। वेद अनेक देवता-वाद (Polytheism) के ग्रन्थ कहलाने लगे। पांच सहस्र वर्षों तक वेदों की विद्या का ह्रास होता गया। एक भी व्यक्ति इस भारत ने उत्पन्न नहीं किया जो इतने लम्बे काल की धुन्धली रुढ़ियों से ऊपर उठकर, वेद के वास्तविक प्रकाश को देख सकता। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि वेद के प्रकाश को यदि किसी ने "देखा" एक चक्षुहीन, क्षीण, मथुरा के किसी सांकड़े चबारे में बैठे, एक अज्ञात योगी, वेदपरायण दण्डी स्वामी विरजानन्द ने देखा। चूंकि स्वयं प्रज्ञाचक्षु थे और देश में घूम घूमकर वेद विरुद्ध विचारों से लोहा नहीं ले सकते थे, अतः अध्यापन कार्य में ही अपने परिश्रम को सीमित कर, इस आशा में कि प्रभु की कृपा से कभी तो सुयोग्य शिष्य मिल जावेगा, बूढ़े हो गये और वेदों की इतनी गर्ह्य दुर्गति और अपमान को देख २ अपने आप में घुलते रहे।

कहां मथुरा कहां गुजरात काठियावाड़। इस काठियावाड़ में एक मूलशंकर नामी बालक के शुद्ध हृदय में ब्रह्मजिज्ञासा की जोत जगी। जो शीघ्र ज्वाला के रूप में जाज्वल्यमान हो गई। फिर क्या था, उसके कारण न घर में शाँति न मन में आनन्द। परिणाम स्वरूप, वह घर की सब सुख सामग्री को ठोकर मार, चोरी घर से निकल भागा। द्वार द्वार भीख मांग, मन्दिर तथा आश्रमों में ब्रह्मनिष्ठों की खोज करते घूमता रहा। वैराग्य और बढ़ा, संन्यास ली और दयानन्द सरस्वती बना। मध्य तथा दक्षिण भारत में भटक सच्चे मार्ग तथा सच्चे शिव की खोज वर्षों करते रहे, पर जिज्ञासा की तृष्णा तृप्त न हुई। आयु भी लगभग ३५ वर्ष की हो गई। तब उन्हें उत्तर भारत खण्ड की मथुरा नगरी में व्याकरण के भानु, वेदों के प्रकाण्ड पण्डित, योगी दिव्यचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द की ख्याति का पता लगा, और यह निश्चय उन्हें हुआ कि वही जिज्ञासा क्षुधा तथा पिपासा को शान्त करसकते हैं। फिर क्या था, दयानन्द स्वामी, परब्रह्म जिज्ञासु ने मथुरा पहुँच गुरु के चरण पकड़े और ब्रह्म विद्या की याचना की। थोड़े ही काल में, अपने इस शिष्य की विलक्षण बुद्धि, जिज्ञासा तथा ब्रह्मचर्य को पहिचान लिया। देने वाले ने जो कुछ भी अपने पास त्रिकाल का संचित ज्ञान भंडार था उदार चित्त से दिया और लेने वाले जिज्ञासा के भूखे ने लम्बे हाथ बढ़ा कर लिया। दोनों ही विभोर हो गये। देने वाले को चिर-

प्रतीक्षित पात्र प्राप्त हुआ लेने वाले को अमृत पान मिला। दोनों ने ही अपने को धन्य माना। प्रज्वलित अग्नि में जिस प्रकार सूखी समिधा के मेल होते ही वह समिधा भी स्वयं प्रज्वलित हो जाती है। (यही भाव है जब शिष्य समित्पाणि गुरु से शिक्षा लेने जाते थे), ठीक ब्रह्मज्ञान के तेज से प्रदीप्त विरजानन्द में समित्पाणि सरस्वती दयानन्द के समावेश होते ही दयानन्द भी दीप्त हो गये। दीप्त दीप से दूसरा दीप दयानन्द दीप्त हुआ। दीप्त ही नहीं प्रदीप्त हुआ।

विदावेला में विरजानन्द ने अपने चिरकाल के दबे दुःख को दयानन्द को दिखाया। उस दुःख की दवा, दयानन्द से दक्षिणा में मांगी। कहां दण्डी जी का पाठन काल में दण्ड ताड़न तथा क्रोध, उनका कठोर तथा शुष्क वा प्रेम हीन स्वभाव जो चहुँ ओर विख्यात था, कहां आज दयानन्द से विदाई लेते उन की वही वज्र हृदय, नवनीत से भी नरम हो पिघल पड़ा। आज वह दिन था जिस दिन की वह प्रतीक्षा करते करते अति वृद्ध (८१ वर्ष की आयु थी) हो गये थे। यह समय था जब वह अपने हृदय के अंतराल में चिरकाल से दबाये दुःखों विचारों वा भावों को किसी के आगे व्यक्त कर सकते थे। उन्होंने अपने रुंधे हुये गले से अपने दयानन्द को सम्बोधन कर कहा "हे वत्स" मेरे लिये तो बाल्य काल से ही चक्षुहीन होने के कारण, संसार में सब प्रकार का प्राकृतिक अंधेरा सारी आयु रहा, परन्तु इसे मैंने बड़े धैर्य और शौर्य से सहन किया। परन्तु इस देदीप्यमान संसार में चक्षुवालों के लिये भी आध्यात्मिक अंधेरा छा रहा है। यह आर्यावर्त भी, जो कभी संसार में जगद्गुरु था, आज स्वयं अंधकार में डूब रहा है। आध्यात्मिक विद्या तथा प्रकाश का चहुँ ओर अभाव हो रहा है। अंधों के समान लोग अनेक मत मतान्तरों में भटक रहे हैं। अपने अपने मन माने देवी देवताओं में जकड़े पड़े है। वास्तविक मार्ग से विमुख हो कुपथों में भटक रहे हैं। इसका केवल कारण यह है कि चिरकाल से अर्चिचित तैलहीन वेद प्रदीप धीरे धीरे बुझता जा रहा है। जब से यह ब्रह्म ज्योति संसार में मन्द पड़ी है संसार ठोकरें खाकर दुःखी है। जिस समय इस वरदा वेदमाता का संसार में स्तवन होता था, संसार में धन धान्य सुख सम्पति तथा वैभव का राज्य था और संसारी सुखों से तप्त, ब्रह्मवर्चसी लोग ब्रह्मलोक को जाते थे। इस लिये हे वत्स। मेरी गुरुदक्षिणा यही है कि तुम अपने तप तेज, तथा विद्याबल से वेद तथा वैदिक शिक्षा वा ज्ञान को संसार में पुनः उद्दीप्त करो और वेद को पुनः प्रतिष्ठावान् करो। जो वेद विहित है वही सत्य है जो आर्ष है वही मान्य है शेष सब मनुष्यकृत त्याज्य है। प्रभु तुम्हें बल और शक्ति दे तुम्हारी सारो शिक्षा सफल हो"।

सद्गुरु के सच्चे हार्दिक उद्गार तथा भावनाओं पूर्ण वचनों ने ब्रह्मनिष्ठ शिष्य के हृदय पट पर गहरा प्रभाव डाला। उसने अनुभव किया कि गुरु की सारी शिक्षा का गुह्यतम भेद आज प्राप्त हुआ है। सद्गुरु के चरणों का गाढ़ आलिंगन कर, गम्भीर भाव से गुरु की मांगी गुरु दक्षिणा को देने का आश्वासन दिया और गुरु से आशीर्वाद उसको निभाने के लिये मांगा। गुरु ने नतमस्तक शिष्य के शिर पर

अपना हाथ फेरते हुये भगवान से इस ब्रह्मचारी, तेजस्वी, विद्वान्, दृढ प्रतिज्ञ शिष्य के शुभ संकल्प की पूर्ति के लिये कामना की और अंत को शिष्य को आलिंगन कर कहा "दयानन्द जी ! प्रभु आप का कल्याण करे, आपकी जीवन यात्रा सफल हो"।

महर्षि दयानन्द, अपने ब्रह्मचर्य तेज, विद्या, त्याग, तथा योगादि महा अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो, रुढिवादी, अभिमानी विद्वान् तथा शक्तिशाली अनेकों महारथी पण्डितों से लोहा लेने के लिये अकेले सेनानी के समान युद्ध में उतर पड़े।

महर्षि के जीवन पर जब हम सिंहावलोकन करते हैं तो उनके जीवन में दो बातें व्यक्त होती हैं। गुरु विरजानन्द जी से विदाई लेकर, उनका पहिला बहुत समय प्रचलित रुढ़ियों के खण्डन में निकला और पिछला काल मण्डन तथा वेद के मनन तथा प्रचार और भाष्य में व्यतीत हुआ। धराशायी तथा विस्मृत वेद को इस संसार में उठाने तथा प्रतिष्ठावान् बनाने का सारा श्रेय महर्षि दयानन्द को है यह निर्विवाद है। वेद विरुद्ध प्रचलित अनकों देवी देवताओं की उपासना तथा पूजा के खण्डन में उनको बड़ा बल व्यतीत करना पड़ा। उन्होन देश में घूम घूमकर सिद्ध किया कि "यह जितने विभिन्न नामों वाले देवी देवताओं की पूजा तुम कर रहे हो, यह सब एक ही देवों के देव महादेव सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का ही नाम है, यही वैदिक विधान है यही प्राचीन महर्षियों का आदेश है"। उन्होंने जब अपने महाकाव्य "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना की तो उन्होंने सबसे पहिले समुल्लास में विस्तार से १०० देवी देवताओं के नामों को व्याकरण तथा निरुक्तियों द्वारा सिद्ध किया कि यह सब नाम एक ही परमात्मा के वाचक हैं और इसी काव्य के आदि वाक्य में यह लिखा कि सब नाम प्रभु के है पर उसका सर्वोत्तम नाम 'ओम' है जिसके लिए उन्होंने अनेकों प्रमाण वेद तथा वैदिक वाङमय से दिये।

सारांश यह है कि वेद, उपनिषादादि सब

---

[पृष्ठ ६०० का शेष]

सं० १९३९ प्रथम श्रावण शु० १० भौम (२५-७-१८८२) मेवाड़ पहुंचे। महाराणा सज्जनसिंह शिष्य बने।

,, ,, भाद्र कृ० १४ सोम (११-९-१८८२) उदयपुर में मौलाना अब्दुर्रहमान से शास्त्रार्थ।

,, ,, फाल्गुन कृ० ५ ( २७-२-१८८३ ) उदयपुर में द्वितीय स्वीकार पत्र की रजिस्ट्री।

सं० १९४० ज्येष्ठ कृ० १० गुरू (३१-५-१८८३) जोधपुर पहुँचे।

,, ,, आश्विन कृ० १० बुध (२६-९-१८८३) महर्षि को विष दिया गया।

,, ,, कीर्तिक कृ० ६ रवि (२१-१०-१८८३) आबू पहुँचे।

,, ,, कार्तिक कृ० १२ शनि (२७-१०-१८८३) अजमेर पहुँचे।

,, ,, कार्तिक क० ३० भौम (३०-१-१८८३) सायं ६ बजे निर्वाण।

ग्रंथ तथा महर्षि दयानन्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम "ओम्" ही स्वीकार करते हैं। प्रश्न उत्पन्न होता है कि न्यायकारी, दयालु सर्वशक्तिमान् आदि अनेकों नामों के तो कुछ अर्थ हैं और प्रभु के कुछ गुणों का वर्णन करते हैं परन्तु "ओम्" का कोई शाब्दिक अर्थ नहीं तो भी इसको सबने सर्वोत्तम नाम क्यों माना? माण्डूक्योपनिषत्कार ऋषि ने तथा महर्षि दयानन्द ने व्याकरणादि द्वारा ओं की अकार उकार मकार के मेल से 'ओम्' सिद्ध किया और 'अ' से विराट अग्नि, तथा विश्व, तथा 'उ' से हिरण्यगर्भ, वायु तेजस को और 'म्' से ईश्वर आदित्य तथा प्राज्ञ का वाचक वा ग्राहक कहा। यह सब ठीक है पर यह व्याकरणादि पण्डितों की समझ में सहजतया आ सकता है पर इसे उदाहरणों द्वारा आसानी से भी समझा जा सकता है। यही यहां का विषय है।

यूं तो परमात्मा के इतने नाम वा विभूतियें है जिनको पृथक् पृथक् लिखने बैठे तो एक अच्छी आकार की पुस्तक ही लिखी जा सकती है। पर ऋषि ने इन सब के विषय में संक्षेप में यूं वर्णन किया है।

**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति, यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमिति एतत्**

(कठ १-२-१५)

अर्थात् जिस पद का मनन सब वेद करते वा कराते हैं, जिस के लिये सब प्रकार के तपश्चरण करने को कहा जाता है वा जिस को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते है उस पद को मैं तुम्हें संग्रहरूप (Concisely) कहता हूं वह पद है "ओम्" ऋषि का कहने का अभिप्राय यह है कि उस प्रभु के गुण वा विभूतियों का वर्णन वा कथन करते थक जाता है पर उस के समूचे स्वरूप का वर्णन यथासम्भव यह "ओम्" पद ही है जो कर सकता है। अब विचार करना हैं कि यह किस प्रकार है?

"ओम्" का शब्दार्थ कुछ भी नहीं (अवरक्षणे०० के भाव को पाठक आगे पढ़ें) यह तो एक संग्रप रूप (Symblic) नाम है। जैसे हम गणित शास्त्र में अंकों (१,२,३,४...) वा बीज गणित में क् ख् ग् (x y, z, a, b, c,) के संकेत वा चिन्हों से बड़ी बड़ी समस्याओं को सुलझा लेते हैं, इसी प्रकार 'ओम्' के संयुक्ति अक्षरों का कोई अपना अर्थ न होते हुये, इसके पीछे कुछ सिद्धान्त वा अवस्थाओं की कल्पना की हुई है। जिस प्रकार (१×७) २ गुर के पीछे एक बड़ा भारी पैथागोरस का गणित तथा वैज्ञानिक सिद्धान्त अन्तर्हित है और इन गुरो (Formulae) द्वारा बड़े वैज्ञानिक वा ज्योतिष के सिद्धान्त व्यक्त किये जाते हैं इसी प्रकार वेद ने तथा ऋषियों ने "ओम्" रूपी गुर से इस विश्व वा ब्रह्म तथा परमात्मा के स्वरूप वा अवस्थाओं (Phases) का प्रदर्शन किया हैं। इस में लगभग (Almost) ब्रह्म का पूरा पूरा स्वरूप आ जाता है जैसे कहा है "ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपाख्यानम्" (माण्डूक्य १) अर्थात् यह जो कुछ भी है और अक्षर अविनाशी ब्रह्म वा परमात्मा की व्याख्या यह "ओम्", निकटतम रूप में (Almost) कर देता है सो इन वचनों से यह स्पष्ट है कि ऋषि लोग प्रभु की निकटतम महिमा 'ओम्' पद से मानते हैं। अब विचार करना है यह क्यों कर'

यदि कोई शिल्पी (Engineer), वा स्थपति (Architect) वा कलाकार (artist) किसी यन्त्र, भवन, का कला वा वस्तु का निर्माण करना चाहता है तो विचार किया जावे तो उस की चार अवस्थायें होती हैं। प्रथम अवस्था तो वह है जिस में वह अन्य लोगों के समान है जब अभी उसने बनाने का सोचा ही नहीं। उस के मुख मण्डल पर यह नहीं लिखा होता कि यह शिल्पी है वा अध्यापक, चिकित्सक वा व्यापारी इत्यादि। वा यूं कहा जासकता है कि जब तक वह किसी कला वा यंन्त्रादि को बनाना आरम्भ नहीं करता उसका कोई लक्षण वा चिन्ह ही नहीं होता जिससे वह पहिचाना जाय। एक प्रकार से वह 'अमात्र' है यह उस की पहिली अवस्था है। जब वह शिल्पी वा स्थपति वा कलाकार किसी नई वस्तु का निर्माण करना चाहता है तो इस से पूर्व कि वह बनाने लग पड़े वह एकान्त स्थान में शांत हो सोचता वा विचार करता है। वह न हिलता, न बोलता, वह तन्मय होकर निस्तब्ध हुआ २ बड़े गहरे विचारों में बैठकर अपने सारे ज्ञान तथा अनुभव को एक ओर लगाता है उन्हें भी हिलने या विचलित नहीं होने देता। इस अवस्था में मन तथा उसकी बुद्धि का ही काम है, केवल उस के ज्ञान तथा प्रज्ञान की ही यह अवस्था है। वह इतना तन्मय होता है कि दूसरे देखने वाले भ्रम करते हैं कि स्यात् यह 'सुषुप्त' है। यह उसकी दूसरी अवस्था है इसे हम पारिभाषिक शब्दों में कहते हैं, सुषु तस्थान प्रज्ञानघन एवीभूत (माण्डूक्य ५.) और उसका अपना नाम है 'प्राज्ञ'

उस शिल्पी की तीसरी अवस्था वह है जब वह यह पूरा विचार (plan or design) कर लेता है कि उसने क्या और किस प्रकार बनाना है। अब वह उस कला, वस्तु वा भवन के बनाने तथा बनवाने में जुट जाता है। इस अवस्था में सुषुप्ति नहीं रहती अब तो गर्मी और तेजी चाहिए कि काम और वस्तु तय्यार हो जावे। इस अवस्था में उसकी दक्षता तीव्रता तथा गर्मी काम करती है"। इसी अवस्था में जब कभी हम काम करनेवाले शिल्पकार को देखते हैं और जब वह चतुराई तेजी से काम करता है हम उसकी बड़ाई करते हैं। इस अवस्था में तेज ही प्रधान है, इस लिए इस अवस्था को 'तैजस' नाम दिया गया है और उस शिल्पकार को भी 'तैजस' कहा है। यह अभी वह अवस्था है जिसमें अभी न तो वस्तु "बनगई है" ऐसा कह सकतेहैं न यह ही कह सकते हैं कि 'कुछ भी नहीं बनी'। इस अवस्था में बनने वाली वस्तु के अवयव ही बन रहे हैं, वह अभी टुकड़ों में ही बनी है। इसलिये इस अवस्था में बनने वाली वस्तु अभी सूक्ष्म अवस्था में ही होती है। इसे ही शास्त्र में 'प्रविविक्त' अर्थात् सूक्ष्म कहा है और शिल्पकार को 'प्रविविक्तभुक्' अर्थात् सूक्ष्म वा टुकड़ों का ही भागी कहा है। इस अवस्था में वह अपने ज्ञान को उन्नत करता है इसीलिये उपनिषत् में कहा **"उत्कर्षति हवै ज्ञानसंततिं"** अर्थात् अपने ज्ञान को बढाने वा उन्नत करने में उत्कर्ष वा कोशिश करता है। इस अवस्था में वह उसे संसार के आगे नहीं लाता अपने अन्दर प्रयोगशाला में ही रखकर काम करता है। संसार के लिये वह अभी सो सा रहा है, स्वप्नावस्था में है। पर सुषुप्ति मे नहीं जो कुछ कर

भी न रहा हो। स्वप्नावस्था में मनुष्य सूक्ष्म रूप में सब कुछ करता है। वह बोलता घूमता यात्रादि भी करता है पर सूक्ष्म रूपमें, पर संसार के लिए वह सो रहा है। यह बनाने की उस शिल्पी की अवस्था उसकी तीसरी अवस्था है।

उस शिल्पी की चौथी अवस्था है जब उसने अपनी वस्तु कला वा भवन को पूर्णरूप से, उसके अंग प्रत्यंग आदि सहित सुसज्जित कर लिया है। और अब वह संसार के आगे उसे प्रस्तुत करता है। वह कलाकार उस यंत्र के अंग २ को स्वयं चलाता है। अब उस का ध्यान वा ज्ञान दुनिया को दिखाने में है। उसकी बुद्धि कला से हट कर बाहिर की ओर है, उसका सम्बन्ध बाहिर से है। इस अवस्था को शास्त्र ने "**बहिष्प्रज्ञ**" कहा है। वह सब कर के दिखाता, व्यवहार करता, पूरा जाग्रत है इसी कारण इसे "जागरितस्थान" कहा है। क्योंकि वह उस कला पर आरूढ़ हो उसके सब अंग २ को चलाने वाला है इसलिए उसे "वैश्वानर" कहा है। वह उस कला के अंग २ में मानो व्यापक हो कर उन्हें चलाता है।

इस प्रकार शिल्पी की चार अवस्थायें हैं। प्रथम वह जब उसने किसी कला वा यंत्रादि को अभी बनाने का भी संकल्प नहीं किया। इस अवस्था में वह अपने में मस्त है, उसका कोई भी व्यक्त लक्षण नहीं अतः वह 'अमात्र' है। दूसरी अवस्था उसके ज्ञान और मनन वा plan करने की है। इस अवस्था में उसका ज्ञान ही काम करता है। इसलिये वह 'प्राज्ञ' है। तीसरी अवस्था में वह बड़ी दक्षता और तेज़ी से उसे बनाने में लगा हुआ है अतः वह 'तैजस' कहाता है। और अंतिम चौथी अवस्था में वह अपनी कला वा यंत्र को पूर्ण कर उसे व्यक्त करता है। और उसे व्यवहार में लाता है। यह उसकी जाग्रत अवस्था है और उसको चलाने वाला उस सम्पूर्ण यंत्र पर आरूढ़ हो उस पर आधिपत्य जमा, उसे चलाने वाला 'वैश्वानर' कहलाता है।

अब परमात्मा सब शिल्पिओं का भी शिल्पी वा कलाकार इस विश्वरूपी कला के बनाने वाला है। उसने किस प्रकार आदि से अंत तक इस विश्व की रचना की और उसे कैसे चला रहा है, ऐसे इतने गुणों वाले तथा शक्ति वाले को कैसे समझा जावे और उसको किस नाम से वर्णन किया जाय, इसको ऋषियों ने इस प्रकार समझाया है :—

**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदितिसर्वं ओंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। माण्डूक्य अ० १।**

इसमें यह समझाया है कि यह सब जगत् अविनाशी "ओम्" है और यह 'ओम्' शब्द इसका निकटतम व्याख्यान करता है। यह, जिससे भूतकाल बना था वा वर्त्तमान बना हुआ है और भविष्य बनेगा वह सब ओंकार ही है। और इन तीनों कालों से न बन्धने वाला जो दूसरा तत्व है वह भी ओंकार ही है। इस मन्त्र में इस विश्व को 'ओम्' कहा है और इसके बनाने वा चलाने वाला भी तत्व ओंकार ही है। इसमें कला तथा कलाकार का सम्पुट करके 'ओम्' नाम दिया है। कलाकार तथा उसकी कला का एकीकरण कर दिया है। जैसे शरीर और

आत्मा दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तब ही व्यवहार करते हैं। इस भाव को अगले मंत्र में अधिक स्पष्ट किया है :—

"सर्वंह्येतद् ब्रह्मात्मा ब्रह्म सो ऽयमात्मा चतुष्पात्" (माण्डूक्य २)

अर्थात् यह सब कुछ जो विश्व है वह ब्रह्म है अर्थात् बहुत बड़ा है और उसका आत्मा भी ब्रह्म है। आत्मा का अर्थ सदा चलाने वाला (अत् सतत गमने)। यह स्पष्ट है कि इस मन्त्र में ऋषि दो तत्वों को, जगत् और उसके चलाने वाले उसके आत्मा को ब्रह्म और 'ओम्' कहकर वर्णन करता है। गीता (१८। ६१) में भी इसी भाव को "·········भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानिमायया" के शब्दों में व्यक्त किया है अर्थात् ईश्वर अपनी शक्ति से इस जगत् रूपी यंत्र पर चढ कर इसे चला रहा है। मोटर को चलाने वाला तथा मोटर जैसे अपने आपको मोटर के अंगों से जोड कर उसके साथ एक हो जाता है इसी प्रकार यह विश्व जगत् और इसका संचालक दोनों ही एक ब्रह्म रूप कहे गये हैं। आगे कहा है कि इस विश्व का आत्मा 'चतुष्पात्' है अर्थात उसके चार चरण वा अवस्थायें वा phases हैं। जैसे ऊपर कारीगर की चार अवस्थायें ही बता आये हैं वही चार अवस्थायें वा पद इस विश्व के आत्मा की भी कही गई हैं। ८वें मंत्र में यह कहा है "सोऽयमात्माध्यक्षमोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति ।।८।। कि यदि इस ओंकार को अक्षर वा उसकी मात्राओं (टुकड़ों) द्वारा समझावें तो वह 'अकार', 'उकार' और 'मकार' है। ऋषि इस विश्व के आत्मा अर्थात परमात्मा को जिसे ओंकार का नाम देता है और उसे चार पदों में वर्णन करता है और समझता है कि इन ४ मात्राओं में ही उसका सम्पूर्ण वर्णन हो सकता है।

ऋषि प्रथम पद वा phase को लेता है जिसमें प्रभु इस सर्वांग पूर्ण समृद्ध दृश्यमान तथा व्यवहार करते जगत् में अधिष्ठित वा established रूप में है। वह इस जाग्रत जगत के एक एक अंग को चला रहा है। इसीलिये वह वैश्वानर अर्थात् विश्व को चलाने वाला नर (नृनये) के नाम से कहा गया है। इस आदिम अवस्था वा (प्राप्नोति) व्यापक अवस्था को "अ" की मात्रा दी गई है। वा इस सारे चराचर विराट् स्वरुप जगत् के लिये 'अ' मात्रा symbol निश्चित की।

दूसरी अवस्था प्रभु की वह है जिसमें यह विश्व अभी बना नहीं अभी सूक्षममें, वा इसके सूक्ष्म तत्व बने हैं और इसमें प्रभु का उत्कृष्ट तप तथा तेज काम करता है। ऋग्वेद में भी कहा है "तपसोऽध्यजायत"। वह अवस्था कारण जगत और स्थल जगत के बीच की अवस्था है। अतः इस 'उत्कर्षात्" तथा "उभयत्वात्" के लक्षणों से वर्णन किया है। इस उत्कर्ष और उभयत्व के कारण इसे "उ" की मात्रा के अन्तर्गत किया। और प्रभु को 'तेजस' कहा।

तीसरी अवस्था वा phase वह है जब प्रभु ने अभी न सूक्ष्म न स्थूल जगत् बनाना प्रारम्भ ही नहीं किया। केवल अपने स्वभाविक ज्ञान से ईक्षण ही किया। "सऐक्षत् बहुस्यां प्रजायेति·····"। इस अवस्था में तो केवल मानस सृष्टि का ही ईक्षण हुआ, जैसे शिल्पी

बनाने से पहिले केवल वस्तु या भवन की मानस सृष्टि वा design ही करता है। इस "मितेः", मापतोल की अवस्था में केवल ज्ञान अज्ञान ही प्रधान है। इसलिए प्रभु को इस अवस्था में 'सर्वज्ञ'(मा. उ. १। ६) कहा और इस माप तोल वा मानस सृष्टि को 'म' की मात्रा देकर चिह्नित किया।

अन्त की चौथी अवस्था वा phase को ऋषियों ने १२वें मंत्र में 'अमात्रश्चतुर्थो" पाद कहा। 'ओम्' के मकार को जो नीचे हल किया जाता है वह हल ही "अमात्र" रूप है। यह कारीगर का काम करने से पहिले का अपना रूप है। इस अमात्र रूप को ऋषि ७वें तथा १२वें मन्त्र में इन सुन्दर शब्दों में वर्णन करता हैं—

"नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥

अर्थात् उसके लिये न कुछ भी भीतर है, न बाहिर है न बीच का है, न पूर्णरूप से उसको जान ही सकता है, वह अदृष्ट है, व्यवहार में लाया नहीं जा सकता, न पकड़ा जा सकता है, न उसका कोई चिह्न है न लक्षण है, न पूर्णरूपसे उसकाचिंतन होसकताहै। वह अवर्णनीय है। (याज्ञवल्क्य को "नेतिनेति")। वह एक आत्मा की सत्ता के रूप में है। जो आत्मा द्वारा ही प्रतीत हो सकता है। उसमें इस जगत का सारा प्रपञ्च शांत जो जाता है। वह शांत-शिव (कल्याणकारी) है उस के समान दूसरा कोई पदार्थ नहीं। ऐसा आत्मा ही चौथी अवस्था है यही उसका अमात्र रूप (१२ मं) माना गया है।

सारांश यह है कि वैसे तो प्रभु को हम उसके विभिन्न गुणों वा पहलुओं के कारण कई नाम से पुकारते हैं पर उन सब नामों में कोई भी ऐसा नाम नहीं जो उसे सम्पूर्ण रूपसे वा निकटतम रूप में वर्णन करे। इसलिये उस प्रभु को पूर्ण रूप से अनुभव करने के लिये, उसकी इस विश्व रूपी विभूतियों और उसके बनाये जगत के बनने के चार पहलुओं का चिंतन तथा मनन ऋषियों ने किया और उनके द्वारा उसके विराट स्वरूप को अनुभव करने का मार्ग बताया। कला से कलाकार के गुणों की अनुभूति होती है। यही भाव है। कला के बनने के ४ पहलु हैं और उन्हें अ, उ, म, तथा ् की मात्राओं से चिन्हित किया है और इनके संग्रह से 'ओम्' पद बनाया। 'ओम' का कोई अपना अर्थ नहीं। यद्यपि अव् रक्षणे आदि धातु से ओम् की व्युत्पत्ति कही भी जाती है अर्थात् ओम् रक्षक है पर इस अर्थ में 'ओम्' पद को सीमित कर हम उसकी विशालता और सर्वोत्तमता को उसमें से छीन लेते हैं। योगदर्शन में महर्षि पातञ्जलि जी भी उस प्रभु का नाम बताते हुए कहते हैं "तस्यवाचकः प्रणव." अर्थात् उसका ठीक वर्णन करने वाला शब्द 'ओम्' ही है और उस ओम् का वास्तविक जाप (तज्जपस्तदर्थभावन)उस ओम् की इन चारों मात्राओं के अन्तर्गत जो भाव वा ज्ञान है उन के अर्थों को जानना ही है तब ही उसको वास्तविक स्वरूप का पता लग सकता है और इस विश्व की रचना इसकी गति विधि के ज्ञात

# महर्षि दयानन्द—आर्य समाज—और हमारा कर्त्तव्य

[ लेखक—वेदश्रवाः विद्यार्थी बी० एस-सी०, प्रचार मन्त्री अखिल भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् ]

दियासलाई की एक बत्ती दीपक जलाकर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाती है, अथवा स्वार्थी मानव ही अपना स्वार्थ पूरा करने के पश्चात् लापरवाही से उसको नष्ट कर देता है। दीपक विश्व को प्रकाश दिखाता है और तब तक दिखाता है जब तक कि उसके कर्ण धार उस में पर्याप्त मात्रा में तेल डालते रहते हैं, परन्तु जहां उसके कर्णधारों का ध्यान अन्धकार की ओर भटक जाता है तब दीपक का प्रकाश पर्याप्त तेल की कमी के कारण कुछ धीमा पढ़ जाता है। इसी प्रकार जब एक बार दीपक सारे विश्व को प्रकाश दिखाकर पुनः उसी स्थान पर आ जाता है जहां से वह चला था और वहां वह नष्ट हुई बत्ती मानव से मूक भाषा में कह रही होतीहै—"हे मानव! अब विचार कर कि तू कितनी बार अन्धकार की ओर पथभ्रष्ट हुआ। उसी समय उस दीपक के कर्णधार यदि वे सुन लेते हैं, तो न केवल वे यह विचार करते है कि वे कितनी बार अन्धकार की ओर पथभ्रष्ट हुये, परन्तु अकस्मात् ही उन्हें उस बत्ती जलाने वाले का भी स्मरण हो जाता है।

आज से १०० वर्ष पूर्व एक महान् मुनि विरजानन्द ने इस दियासलाई की बत्ती रूपी महर्षि दयानन्द की हृदयाग्नि को प्रज्वलित किया था। महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का अमर दीप जलाया और विश्व को सत्य का प्रकाश दिखाया। आज हम विश्व को सत्य का प्रकाश दिखाकर १०० वर्ष बाद पुनः उसी स्थान पर आ खड़े हुए हैं, जहाँ से चले थे,

---

और सौन्दर्य को अनुभव कर इस के रचयिता की दयालुता विशालता को अनुभव वा साक्षात् कर उस आनन्द कानन सच्चिदानन्द से आनन्द प्राप्तकर विभोर हो सकता है। इसी भाव को वेद इन शब्दों में कहते हैं :—ओ३म् क्रतोस्मर (यजु ४०।१५) अर्थात् ओम् की क्रियाओं वा उसकी गतिविधि को जानकर तू भी स्मरण कर वा उसका अनुसरण कर तब ही हुतात्मा होकर आनन्द प्राप्त कर सकेगा॥

❀

महर्षि दयानन्द की आत्मा मूक भाषा में हम से कह रही है कि आर्यो ! विचार करो कि तुम कितनी बार अन्धकार की ओर पथभ्रष्ट हुये ।

आज हम एक विशाल पैमाने पर महर्षि दयानन्द की दीक्षा शताब्दी मना रहे हैं । इस का एक बहुत बड़ा लाभ यह भी है कि इस दिन लगभग सारे भारत वर्ष के आर्य मिल बैठेंगे और इतनी बड़ी संख्या में मिलेंगे जिसकी कल्पना करना भी कठिन है और फिर निकट भविष्य में ऐसे किसी विराट् सम्मेलन की आशा भी नहीं । हम इस समारोह में प्रसन्न और प्रफुल्ल तो होंगे ही और अपने गुरु को श्रद्धांजलि भी अर्पित करेंगे,परन्तु मेरे विचार से आवश्यकता इस बात की है कि हम महर्षि को यज्ञाग्नि को अमर बनाये रक्खें । महर्षि दयानन्द की समाधि पर केवल फूल चढ़ाना इतना पर्याप्त नहीं जितना कि उनके द्वारा प्रज्ज्वलित दीपक के प्रकाश को अमर बनाये रखना है । कहीं ऐसा न हो कि दीपक कुछ धीमा पड़ जावे, इस के लिये हमें पर्याप्त मात्रा में तेल डालना होगा उस दीपक में । ये समारोह तो केवल इस लिये होते हैं कि कहीं हम उस बत्तो को भी भूल न जावें जिसने यह दीपक जलाया था क्योंकि हम उस महान् की कृतज्ञता से किसीप्रकार भी मुक्त होने में समर्थ नहीं हैं । दुष्टों ने दीपक बुझा दिया था और हम सब अन्धकार में भटक रहे थे, अतः उस दीपक को फिर से जलाकर अन्धकार के पथ से हटाकर पुनः प्रकाश के पथ पर लाने वाले महर्षि दयानन्द के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते ।

आर्यों के सम्मुख आज एक कठिन समस्या है । अब वह जमाना लद गया जब आर्यसमाज की प्रतिष्ठा महर्षि दयानन्द के कारण थी और जब वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर आर्य समाज के महत्व को आंका जाता था । आर्य जगत् के बुजुर्गो और प्यारे आर्यकुमार साथियो ! आज एक २ आर्य के चरित्र से आर्य समाज का चरित्र बनेगा । जीवन के हर क्षेत्र में हमें कसौटी पर कसा जावेगा । और उससे कुन्दन बनकर निकलना होगा । आज संसार हमारे और आप के माध्यम द्वारा आर्य समाज को और आर्य समाज के माध्यम द्वारा प्रतिनिधि सभाओं को देखेगा । हम सत्य का उपदेश देते हैं तो हमें स्वयं भी सत्य बोलना होगा, हम विश्व को सदाचार की शिक्षा देते हैं तो हमें स्वयं भी सदाचारी बनना होगा, यदि हम संसार को छल–कपट, गालीगलोच, भय और क्रोध से दूर रहने का उपदेश करते हैं तो हमें स्वयं भी इनसे दूर रहना होगा । आज संसार हमारी यह दलील सुनने को कदापि तैयार नहीं है कि महर्षि दयानन्द सत्यवादी , धर्मात्मा और शांत स्वभाव के थे, इस लिये कोई दूसरा भी इन बातों को इसी लिए मानने को तैयार हो जावे । मेरा आंखों देखा अनुभव है' लोग स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं–" तुम क्या हो ? जो तुम हो वही आर्य समाज है ।"

आर्य जगत् के उपदेशकों को भी अपना दायित्व भली भांति समझना होगा, क्योंकि वे ही आर्य जगत् के प्रतिनिधि हैं जो साधारण जनता तक पहुंचते हैं । उनका कार्य केवल मंच पर खड़े होकर भाषण देना ही नहीं, उन्हें अपने उपदेशों को अपने व्यावहारिक जीवन पर चरितार्थ करना होगा । आज से लगभग ४ वर्ष पूर्व जब मेरी अवस्था १२ वर्ष की थी,

मैं एकबार पूज्य पिताजी के साथ एक आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर गया। वहां कुछ और लोग भी आये थे जो किसी आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक थे। सायंकाल शौच सन्ध्या इत्यादि से निवृत्त होकर जब लौटकर आ रहे थे, तो मार्ग में बातों ही बातों में वे किसी को मां बहिन की गाली भी देने लगे। मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने कहा "पंडित जी! आपको यह शोभा नहीं देता" इस पर दूसरे साहब बोले—"बच्चों के सामने ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये," अर्थात् पीछे कर लेनी चाहिये। मेरे इस उदाहरण से कोई गलतफहमी में न पड़े। निश्चय ही मैंने ऐसे उपदेशक भी देखे हैं, जिन का त्याग देखकर श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। मनुष्य मात्र में कमजोरी होती है, यह ठीक है परन्तु यदि हम संसार को अपने पीछे ले चलना चाहते हैं तो हमें इन कमजोरियों को निश्चय ही दूर करना होगा।

आज आर्य जगत् के उपदेशकों और नेताओं को ही अपने जीवन को व्यावहारिक नहीं बनाना है अपितु आर्य जगत् के एक एक बच्चे को अपना जीवन एक आदर्श जीवन बनाना है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें एक आदर्श व्यक्ति बनकर पग रखना है, यदि हम मजदूर हैं तो मजदूरों में, सरकारी कर्मचारी हैं तो अपने विभागमें और यदिविद्यार्थी है तो विद्यार्थियों में, तात्पर्य यह कि प्रत्येक स्थान पर हमें आर्यसमाजकी प्रतिष्ठा कायम रखनी है। चींटी दीवार पर चढ़ती तो धीरे धीरे है, परन्तु एक दम गिर पड़ती है, मकान बनाने में महीनों लग जाते हैं, परन्तु कुछ ही घन्टों में तोड़ा जा सकता है ठीक इसी प्रकार आर्यसमाज की और आर्य समाजियों की प्रतिष्ठा बनाने में ही बहुत वर्ष लगे हैं और अभी लगेंगे, परन्तु कुछ ही समय में सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो सकती है। आप सारे जीवन तपस्या करते रहें और एक क्षण में अपना चरित्र बिगाड़ लें तो संसार यह सोचने को भी तैयार नहीं है कि आप कभी तपस्वी भी हो सकते थे। पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है, आकाश में नहीं। पृथ्वी पर पड़े रहने में कोई शक्ति नहीं लगानी पड़ती, उठने और चलने के लिये कुछ शक्ति लगानी पड़ती है। जब हम आकाश मार्ग से हवाई जहाज पर जाते हैं तो कुछ (Horse Power) शक्ति लगानी पड़ती है और जब मानव को चांद की सैर का शौक चकराया है तो इसमें भी निश्चय ही शक्ति खर्च करनी पड़ेगी। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि न केवल पृथ्वी से ऊपर उठने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है परन्तु प्रत्येक बुराई और निम्न स्तर से ऊपर उठने के लिये हमें कुछ शक्ति लगानी पड़ती है। प्रत्येक छोटी वस्तु में आकर्षकण होता है, और हमें उससे संघर्ष करना पड़ता है यदि हम ऊपर उठना चाहते हैं। हवाई जहाज और राकेट में तो हम यान्त्रिक शक्ति का भी उपयोग कर लेते हैं, परन्तु स्वयं अपने आपको ऊपर उठाने के लिये हमें अपने हृदय और मस्तिष्क की शक्ति को काम में लाना होगा। तथ्य है कि नीचे गिरने के लिये किसी शक्ति की आवश्यकता नहीं।

दुर्भाग्य से आज हम उस संसार और समाज के अङ्ग हैं जो किसी को स्वस्थ, सम्पन्न और ऊंचा उठता हुआ नहीं देख सकता। जो मानव को किसी भी दशा में देखकर सुखी और

सन्तुष्ट नहीं रह सकता। मेरा अपना व्यक्तिगत अनुभव यह है कि यदि आप संसार में कुछ काम कर रहे हों, और संसार में कुछ कर जाना चाहते हों, तो न केवल आपको संसार और समाज से युद्ध करना पड़ेगा परंतु अपने परिवार वालों से भी अनिवार्य रूप से खूब संघर्ष करना पड़ेगा। स्पष्ट है कि यदि आप अपने देश, धर्म और जनता के लिये कुछ करना चाहते हों तो परिवार के लिये कुछ नहीं कर सकते और सम्भव है कि उनकी इच्छाओं पर भी आपको पानी फेरना पड़े।

आज संसार तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, यदि हम उसके साथ समय रहते कदम से कदम मिलाकर आगे न बढ़े तो पिछड़ जावेंगे और फिर सदा ही पिछड़े रह जावेंगे। अतः हमें कुछ रूढ़िवादी विचारों को भी छोड़ना पड़ेगा—उदाहरणार्थ यदि हम कह दें कि जो धोती कुर्ता नहीं पहनता अथवा एक गज लम्बी चोटी नहीं रखता, वह आर्य समाजी नहीं नास्तिक है। इस प्रकार के विचारों से हम आर्य समाज की उन्नति कदापि नहीं कर सकते। हमारा क्षेत्र संकुचित हो जावेगा।❀ आर्यसमाजका सिद्धांत तो 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का है, क्या हम विदेशियों से यह आशा कर सकतेहैं कि वे मेज-कुर्सीपर बैठकर हवन न करें (जैसा कि वे करते हैं) अथवा धोती कुर्ता पहिनें? इसी प्रकार विद्यार्थीयों और विशेषकर विज्ञान के विद्यार्थियों से तो आशा कदापि नहीं की जा सकती कि वे पैन्ट बिलकुल न पहिनें। मैं मानता हूँ और हृदय से अनुभव भी करता हूँ कि धोती कुर्त्ता भारतीय संस्कृति का द्योतक है। परन्तु क्या केवल इसलिये कि आप धोती कुर्त्ता पहिनते हैं, हम कहदें कि उसे न पहिनने वाला देश और संस्कृति से प्रेम नहीं कर सकता। मेरी तो यह समझ में ही नहीं आता कि वेशभूषा से विचारों में भी कोई अन्तर आ सकता है। मैंने तो अपनी आंखों से धोती कुर्त्ता पहिने हुये लोगों को भी दुष्कर्म करते और पैन्ट पहिने हुए लोगों को भी देश और धर्म के लिए मरते देखा हैं। जो हृदय से भारतीय संस्कृति का पुजारी है, क्या वेश-भूषा के परिवर्तन से उसके विचार बदल सकते हैं? अतः मैं तो अपने बुजुर्गों से यह ही निवेदन करूंगा कि यदि आर्य समाज के क्षेत्र को व्यापक बनाना है और आर्य कुमारों व विद्यार्थियों को आर्य समाज में लाना है तो उनकी वेश भूषा को नहीं विचारों को बदलना होगा। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि वेश भूषा तो विचारों के बदलने के बाद स्वयं ही बदल जावेगी। आज वास्तविक स्थिति यह है कि आर्य जगत् में विद्वानों की कदर नहीं और यही कारण है कि आर्य विद्वान् अपनी सन्तानों को हार्दिक दुःख के साथ संस्कृत छुडवाकर अंग्रेजी पढाते हैं। यद्यपि

---

❀ इसी अङ्क में ऋषि दयानन्द का सदाचार का लेख मुद्रित है उस में पृष्ठ ४९२ पर ऋषि की भाषा इस विचार के प्रतिकूल है। ऋषि लिखते हैं—

"अपना आचार छोड़ कर दूसरे का लेने जावेंगे तो अपनी हस्ती ही दुनिया में न रहेगी। अथवा जिस देश का रिवाज अपनावेंगे उसी देश में अपने को मिल जाना होगा इत्यादि—संपादक

मैं आज सारे देश को चेतावनी दे देना चाहता हूं कि यदि विद्वानों की भारत जैसे महत्त्वपूर्ण देश में यह उपेक्षावृत्ति जारी रही तो एक दिन भारत विद्वानों से शून्य हो जावेगा और इस का सर्वाधिक उत्तरदायित्व आर्य जगत् पर होगा, परन्तु फिर भी मैं आज आर्य विद्वानों और आर्य जगत् से पूछना चाहता हूँ कि क्या इन परिस्थितियों में उन्हें अपनी सन्तान पर दोषारोपण करने और नास्तिक कहने का अधिकार है? आर्यो की सन्तान आर्य समाज की विचार धारा और सिद्धान्तों से अवगत होती कैसे हो? इस दिशा में आर्य कुमार सभायें विगत ५० वर्षों से कार्य कर रही हैं, उन्हें भी कोई सहयोग नहीं देता. और सहयोग क्या अपने बच्चों को सप्ताहिक सत्सङ्ग में जाने भी नहीं देते। आर्य जगत् को चाहिये कि वह अपनी सन्तानों को सच्चे अर्थों में आर्य बनाये, उनकी विचार धारा को दृढ करे और तभी आर्य समाज वास्तविक मानों में आगे बढ़ सकेगा।

पिछले दिनों आर्य समाज के सम्मुख एक नया और गम्भीर प्रश्न आया है और वह है अनुशसान का। मुझे आर्य समाज की किसी भी (Party politics) से कोई मतलब नहीं और न ही मैं रखना चाहता हूँ, परन्तु जब मैं सोचता हूँ कि आखिर इसका परिणाम क्या होगा तो मैं कांप उठता हूँ। आर्य जगत् का दुर्भाग्य है कि भारत के समाचार पत्रों में एक समाचार पत्र एक आर्यसमाजी सज्जन का भी है और यदि मैं यह कहूं कि इन सारी बातों के लिये वह स्वयं ही उत्तरदायी है तो सम्भवतः गलत न हो। वास्तवमें हुआ यहहै कि जो लोग लगातार तीन वर्ष तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारी रहे थे उन्हें किन्हीं कारणों वश आर्य जनता ने अपने विश्वास से मुक्त कर दिया। मुझे इस बात से कोई मतलब नहीं कि वे कारण सही थे अथवा नहीं। और तब से उन लोगों ने उक्त समाचार पत्र की शरण ले रखी है। उक्त समाचार पत्र भी इन लोगों को खूब उकसाता है और फिर स्वयं ही आये दिन आर्य समाज में दलबन्दी का रोना रहता है किसी ने क्या खूब कहा है—

अकल—फुहड़िया के तीन काम—हगे बटोरे डारन जाय। समाचार पत्र सुझाव देता है कि नये और पुराने अधिकारी मिल बैठे और उन्हें भी अधिकारी बनाया जाये। मुझे प्रसन्नता होती यदि वह ये शब्द तीन चार वर्ष पहले कहते खैर! मैं उसे अधिक महत्व प्रदान करना नहीं चाहता। और सुनिये, दो चार लोगों ने मिलकर पंजाब में एक नई सभा का निर्माण किया है, क्यों? इस वर्ष वे पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान अथवा मन्त्री नहीं बन सके और न अन्तरंग सभा में कुछ लोग आये। और मजे की बात यह है कि उस नई सभा में जितने व्यक्ति उपस्थित थे उससे दुगने कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित हुए। ये सब के सब ऐसे हैं जो सार्वदेशिक सभा या पंजाब सभा के निर्वाचन में हार गये थे और कुछ भले व्यक्तियों के नाम अपने मन से लिख लिये और उनको पता भी नहीं। पंजाब और देहली का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जनता है अतः आर्य जगत् में इस सभा के सम्मान का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और पंजाब के आर्य समाजियों में इसकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज से अधिक

नहीं परन्तु पदलोलुपता की चरम सीमा इससे अधिक नहीं हो सकती कि केवल पद लेने के लिए एक अलग ढाई ईंटकी मस्जिद का निर्माण किया जावे। मैं तो सारी बातों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस प्रकार के व्यक्ति यदि अशिक्षित नहीं तो अशिक्षितों के प्रतिनिधि तो अवश्य है। कुछ भी हो, परन्तु आर्य जगत् के सम्मुख तो अनुशासन का प्रश्न है और यह प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। देश में आर्य समाज ही एक ऐसी संस्था थी जो एक दिन सारे विश्व को एकता और अनुशासन के लिये आवाहन कर सकती थी, यदि उसका ही अनुशासन छिन्न भिन्न हो गया तो किस प्रकार वह दूसरों को शिक्षा देने की अधिकारणी बन सकती है।

आज यह एक दो प्रश्न ही नहीं, परन्तु आर्य जगत् के सम्मुख सैकड़ों प्रश्न हैं जो आर्य समाज के भविष्य से गहरा सम्बन्ध रखते हैं। ये सारे प्रश्न समालोचना और विवाद के नहीं, आर्य समाज के जीवन और मरण के प्रश्न हैं। आज हमें एक एक बच्चे का नैतिक और चारित्रिक स्तर ऊंचा उठानाहै, हमें अपने जीवन को व्यावहारिक और आदर्श बनाना है जिससे संसार हमारी ओर संकेत कर उदाहरण देकर कहे कि देखो! ये हैं आर्य और उनके बच्चे। अन्त में मैं विशेष तौर से मथुरा जानेवाले आर्यों और दीक्षा शताब्दी के कर्णधारों से अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहना चाहता हूँ कि "आर्यो! यदि महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रज्वलित दीपक के प्रकाश को अमर बनाये रखना है तो किसी के बहकावे में न आकर Party Politics से दूर रहकर अपने अन्दर Sportsman spirit की कमी को हम पूरा करें और यदि साहस हो तो केवल मेला ही न देखते रहें, परन्तु एक दिन मिलकर बैठे और अपनी त्रुटियों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शपथ लेकर उनको दूर करने का हृदयसे व्रत लें, साथ ही साथ उन तत्वों का भी पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दें जो फूट पड़वाने के लिये उत्तरदायी हैं। यदि हम आर्य समाज को एक जीवित और जागृत संस्था के रूप में देखना चाहते हैं तो जहां एक ओर हमें अपनी संख्या बढ़ानी होगी वहां निश्चय ही दूसरी ओर हमें ऐसे तत्वों को निकाल बाहर करना होगा जो हमारे संगठन को नष्ट-भ्रष्ट करने पर उतारू हैं। और ऐसा करने में हमें कोई संकोच भी महसूस नहीं करना चाहिये चाहे वह हमारा कितना भी प्रियजन क्यों न हो, क्योंकि हमें सदा व्यक्तिगत स्वार्थों की अपेक्षा वैदिक धर्म और आर्य समाज के स्वार्थों को सर्वोपरि रखना चाहिये। कहा भी गया है—

**त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।**

अर्थात् यदि कुल की मान मर्यादा और प्रतिष्ठा का प्रश्न हो तो उस व्यक्ति को निकाल देना चाहिये और यदि एक कुल के कारण सारे ग्राम की प्रतिष्ठा का प्रश्न हो तो उस कुल को भी छोड़ देना चाहिये। अत: हमें नि:संकोच कुछ ऐसे गिने चुने लोगों को अपने संगठन से सर्वथा पृथक् कर देना चाहिए जो आर्यसमाजकी प्रतिष्ठा और अनुशासन केलिये खतरा है। मुझे आशा है कि आर्य जगत् इन बातों पर विचार करेगा। अन्त में मैं मुनि विरजानन्द दण्डी और महर्षि दयानन्द सरस्वती को पुन:अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करताहूँ कि वह आर्यजगत् को इस योग्य करे कि वह अपनी त्रुटियों पर विचार करे और उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

# अपनों से अपनी बात

सम्बद्ध व्यक्ति जो उत्तर देंगे वह भी सार्वदेशिक में प्रकाशित किया जायेगा। --सम्पादक

## पं० अलगूराय शास्त्री जी से—

श्री पं० अलगूराय जी शास्त्री एक देश भक्त राजनीतिक कार्यकर्ता हैं। आर्य समाज के साथ उनकी सहानुभूति रही चाहे उसमें सक्रिय भाग उन्होंने कभी नहीं लिया। कांग्रेस की प्रगतियोंमें उन का जीवन बीता है। जैसा उन्होंने स्वयं अपने लिखे 'ऋग्वेद रहस्य' नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है :—

**महात्मा गांधी के द्वारा चलाये गये आंदोलनों में सदा भाग लिया। दयानन्द के ढंग विचार का सदा सन्मान मेरे मन में रहा है यद्यपि उनके चलाये आन्दोलनों में उस प्रकार का भाग नहीं लिया।**

(अलगूराय शास्त्री)

परन्तु कुछ समय से पं० अलगूराय जी शास्त्री आर्य समाज के नेता के रूप में सम्मुख उपस्थित किये जा रहे हैं। सार्वदेशिक सभा के प्रतिष्ठित सदस्य बनाये जाकर उपप्रधान बनाये गये और गत वर्ष सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद के लिये भी वे खड़े किये गये थे। इत्यादि।

आर्य समाज के सर्व प्रमुख पद के लिये जो खड़ा हो उसके लिये यह आवश्यक है कि ऋषि के सिद्धान्तों को मानता हो। पर हमने श्री शास्त्री जी का बनाया ऋग्वेद रहस्य पढ़ा तो पता चला कि शास्त्री जी आर्य समाज के सिद्धान्तों को नहीं मानते हैं। कुछ का दिग्दर्शन हम यहां कराते हैं :-

१—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पुराणों के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

प्रश्न—अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी हैं व्यास वचन का प्रमाण अवश्य मानना चाहिये····।

उत्तर—जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते ····वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते।······भला इन महा-झूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई। इन भागवतादि पुराणों के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये वा जन्मते समय मर क्यों न गये क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।

(सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास)

परन्तु पं० अलगूराय जी शास्त्री अपने ऋग्वेद रहस्य में लिखते हैं :—

**पुराणों की रचना महामुनि व्यास ने की है। ये बादरी आचार्य के पुत्र थे इन्होंने महाभारत पुराण एवं वेदान्त सूत्रों की रचना की है। ब्राह्म, पद्म, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मात्स्य, गरुड ये १८ पुराण हैं।**

(अलगूराय शास्त्री का ऋग्वेद रहस्य पृ० ६)

(२) महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी सत्यार्थ-प्रकाश में वेदान्त दर्शन के सम्बन्ध में लिखते हैं कि :—

प्रश्न--व्यास जी ने जो शारीरिक सूत्र बनाये हैं उनमें जीव ब्रह्म की एकता दीखती है···

उत्तर—इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का

नहीं किन्तु इनका यथार्थ अर्थ यह है कि ··

सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास

ऋषि वेदान्त दर्शन को प्रामाणिक ग्रन्थ मानते थे और वे वेदान्त में जीव ब्रह्म की एकता बताई है इसको नहीं मानते। वे समझते थे कि मूर्खों ने वेदान्त सूत्रों के गलत अर्थ करके वेदान्त दर्शन को बदनाम किया है।

परन्तु पं० अलगूराय शास्त्री लिखते हैं :—

**वेदान्त दर्शन में जीव तथा ईश्वर की एकता का प्रतिपादन पाया जाता है" इसे अद्वैतवाद भी कहते हैं दर्शन का यह अपूर्व ग्रन्थ है।**

( अलगूराय शास्त्री का ऋग्वेद रहस्य पृ० १ )

३-महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ब्रह्मको जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण नहीं मानते थे अर्थात् ऋषि का सिद्धान्त है कि जगत्का उपादान कारण प्रकृत और निमित्त कारण ब्रह्म है। पर नवीन वेदान्ती कहते हैं कि ब्रह्म ही जगत का बनाने वाला और ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है अर्थात् ब्रह्म स्वयं जगत् बन गया। ऋषि तो इस मूर्खता की बात का खण्डन करते हैं जैसा सत्यार्थप्रकाश में आता है कि—

'प्रश्न' नवीन वेदान्ती लोग केवल ईश्वर को जगत का अभिन्न निमित्तोपादानकारण मानते हैं।

'उत्तर' जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादानकारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी अवस्थान्तर युक्त विकारी हो जावे और उपादान कारण के गुण कर्म स्वभाव कार्यमें भी आते हैं।

( सत्यार्थ० ८ समुल्लास )

परन्तु पं० अलगूराय शास्त्री लिखते हैं कि :—

**वेदान्त दर्शन के प्रथमाध्याय के प्रथम पाद में उन वेदान्त वचनों का उल्लेख है जिनसे स्पष्ट ब्रह्म जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण जान पड़ता है।**

(अलगूराय शास्त्री का ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ १२)

ऐसा प्रतीत होता है कि पं० अलगूराय शास्त्री अपने आपको ऋषि से अधिक दर्शनों का विद्वान मानते हैं।

४—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी छहों दर्शनों में परस्पर विरोध नहीं मानते। ऋषि के सत्यार्थ प्रकाश में आता है कि :—

'प्रश्न' जैसा सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रों में भी है। जैसा सृष्टि विषय में छः शास्त्रों का विरोध है।

'उत्तर' प्रथम तो बिना सांख्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं।

( सत्यार्थ० ३ समुल्लास )

परन्तु अलगूराय शास्त्री लिखते हैं कि :—

**वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय के प्रथम पाद में सांख्य योग वैशेषिक आदि दर्शनों के मान्य सिद्धांतों का खण्डन किया गया है।**

(अलगूराय का ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ १२)

**चौथे पाद में अजा आदि शब्दों को लेकर उनके अर्थों पर विचार किया गया है कि ये शब्द ब्रह्म अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। सांख्य में बताई गई प्रकृति या जड़ शक्ति के अर्थ में नहीं।**

( ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ १२ )

५—महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने पाणिनिकृत शिक्षा जो सूत्र रूप है उसको कठिनता से प्राप्त करके छापा और इस बात का खण्डन किया कि जो लोग "अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा" को पाणिनिकृत शिक्षा मानते है यह भूल है। और अष्टाध्याय का आरम्भ "अथ शब्दानुशासनम्" से मानते हैं अर्थात् यह प्रथम सूत्र है। ऋषि लिखते हैं कि :—

प्रथम पाणिनि मुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्र रूप है ··· अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका

परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो जो ग्रन्थ नीचे लिखेंगे वह वह जाल ग्रन्थ समझना चाहिये। शिक्षा में "अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा"।

परन्तु पं० अलगूराय शास्त्री लिखते हैं :--

महामुनि पाणिनि ने "अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि" कहकर पांच खण्डों में इसकी रचना की है...

"वृद्धिरादैच" आदि सूत्रों से आरम्भ करके अष्टाध्यायी नामक व्याकरणशास्त्र महामुनि पाणिनि ने ही रचा।

( ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ ५, ६ )

ऐसा प्रतीत होता है कि पं० अलगूराय शास्त्री जी ने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा नहीं या वे स्वामी जी को प्रामाणिक नहीं मानते।

६--महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी छः शास्त्रों को वेद का उपांग मानते हैं जैसे ऋषि ने लिखा है कि :--

"मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपांग"

( सत्यार्थ० ३ समुल्लास )

परन्तु पं० अलगूराय शास्त्री लिखते हैं कि :--

उपाङ्ग चार हैं। (१) पुराण (२) न्याय (३) मीमांसा (४) धर्मशास्त्र...

कोई २ न्याय वैशेषिक सांख्य योग तथा मीमांसा वेदांत को ही उपाङ्ग कहते हैं।

(ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ ८ १४ )

आश्चर्य है कि पं० अलगूराय शास्त्री जी वेदों के उपाङ्गों में पुराण को गिनना तो ठीक समझते हैं और ऋषि दयानन्द ने छः शास्त्रों को उपाङ्ग माना है उसको किस तिरस्कार दृष्टि से लिखते हैं कि कोई कोई ऐसा मानते हैं ऋषि को लिख दिया कोई कोई और पुराणों को उपाङ्ग मानना प्रमाणिक समझ लिया।

७--महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी चारों वेदों को समान रूप से अनादि मानते हैं। और उन वेदों में अभिचार कर्म देवतासिद्ध आदि ऋषि नहीं मानते।

परन्तु पं० अलगूराय शास्त्री लिखते हैं :--

ऋग्वेद की ऋचाएं ही पृथक् संगृहीत होकर साम कराती हैं।

( ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ १८ )

अथर्ववेद यजुर्वेद के ही अन्तर्गत है।

( ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ ८ )

अथर्ववेद केवल शांति पुष्टि अभिचार आदि कर्मों के प्रतिपादन में काम आने वाला वेद है।

( ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ २४ )

ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय में पुराना ग्रन्थ है। (ऋग्वेद रहस्य पृष्ठ २)

ऋग्वेद की ऋचाएं ही सामवेद में संगृहीत हो गई है सामवेद कोई पृथक वेद नहीं यह योरोप का विचार है अथर्ववेद यजुर्वेद के अन्तर्गत है यह भी गप्पमात्र है। ऋग्वेद पुराना है क्या यह नहीं कहा जा सकता था कि चारों वेद पुराने हैं क्या वेदों की उत्पत्ति में भी ऋग्वेद के कुछ काल बाद अन्य वेद उत्पन्न हुए।

ये हमने केवल कुछ ही पृष्ठोंकी लीला दिखाई है। पं० अलगूराय शास्त्री जी का यह ग्रन्थ ७०० पृष्ठ का है।

अच्छा यही था कि पं० अलगूराय शास्त्री जैसे देशभक्त कांग्रेस के कार्यकर्ता हैं और उन्हें कुछ आर्यसमाज से सहानुभूति है बस इससे आगे उन्हें आयसमाज में न बढ़ाया जावे। इसमें ही शास्त्री जी की प्रतिष्ठा है अन्यथा इतना सिद्धांत विरोधी क्या आर्यसमाज के नेता पद पर या उत्तरदायित्व पद पर स्थापित किया जा सकता है अन्यथा क्या संसार कहेगा कि आर्यसमाज का नेता और इतना ऋषि सिद्धांत विरोधी। जरा आंखें खोलकर उनके समर्थक देखें।

—आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री

# रामायण महाभारत काल में

# * वेद वेदाङ्ग की पढ़ाई *

सब चाहते हैं भारत में राम-राज्य हो। राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम, हनुमान और भीष्म भारतीयों के आदर्श हैं, आराध्य हैं, उनके पद-चिह्नों पर चलकर भारत का कल्याण होगा। इन महापुरुषों ने क्या पढ़ी पढ़ाई थी ?

देखिये राम—

वेद-वेदाङ्ग तत्त्वज्ञोधनुर्वेदे च निष्ठितः।
सर्व शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञः ॥

बाल्मीकीय प्रथमः सर्गः- १४ श्लोक

ऋग्-यजुः-साम-अथर्व-शिक्षा-व्याकरण-निरुक्त-छन्दः- ज्योतिष तथा न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा धनुर्वेद को राम नें पढ़ा था।

देखिये कृष्ण—

वेद-वेदाङ्ग-विज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा।

सभा.प. ३८.३६

चारों वेदों और छहों अङ्गों को भलीभांति पढ़ा था।

भीष्म देखिये—

वेदानधिजगे साङ्गान् वसिष्ठादेष वीर्यवान्।

महा.भा. अदि. १०० अध्याय

वसिष्ठ गुरु से ६ अङ्गों सहित चारों वेदों को भीष्म ने पढ़ा।

देखिये पाञ्च पाण्डव.—

मृते पितरि ते वीराः वनादेत्य स्वमन्दिरम।
न चिरादेव विद्वांसो वेदे धनुषि चाभवन् ॥

माता पिता के मरने पर, वन से घर आकर शीघ्र ही वेदों और धनुर्वेद में वे निपुण हो गये।

देखिये हनुमान—

नानृग्वेदविनीतस्य, नायजुर्वेदधारिणः
नासामवेदविदुषः, शक्यमेव प्रभाषितुम्

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन श्रुतम्।

किष्किन्धा ४-२८

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद को जिसने नहीं पढ़ा है। वह इस प्रकार नहीं बोल सकता। निश्चित ही हनुमान् जी ने सम्पूर्ण व्याकरण खूब पढ़ा है।

रामायण महाभारत की जनता—

नाषडंगविद् अत्रास्ति।

रामायण अयोध्या० ६-१५

प्रजा में कोई ऐसा नहीं, जो शिक्षा, व्याकरण, कल्प निरुक्त-छन्द, ज्योतिष को न पढ़ा हो। (यह स्कूल की पढ़ाई थी)।

"ततो वेद-विदस्तात सदस्याः सर्व एव तम्"

आदिपर्व ५६—२७

सब ही सदस्य वेद के जानकार हैं।

६ अङ्ग, ६ उपाङ्ग, ४ वेद, ४ उपवेद का पढ़ना ही आर्ष पाठ विधि है। इसी पाठ विधि के पढ़ने पढ़ाने का उपदेश ऋषि दयानन्द ने अपने तीनों अमर ग्रन्थों सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, भाष्यभूमिका में किया है—

## संस्कृत पढ़ो

१. "मैं प्रत्येक बालक बालिका की शिक्षा अधूरी मानता हूं यदि उसे संस्कृत नहीं आती, मैं संस्कृत न पढ़ सका इसका मुझे पछतावा है।
महात्मा गान्धी

२. "संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति का कोई अस्तित्व नहीं, तथा संस्कृति के अभाव में भारत का आत्म-स्वरूप स्थिर न रहेगा। अतः मैं संस्कृति का प्रचार हृदय से चाहता हूं। संस्कृत में ही वह गूढ शक्ति निहित है जो कि भारत को एक सूत्र में बान्ध सकती हैं।"—
पं जवाहर लाल नेहरू

३. हमारी संस्कृति और सभ्यता का स्रोत संस्कृत से निकला है और जारी है।—
डा. राजेन्द्र प्रसाद

४. "राष्ट्र की आत्मा इसी (संस्कृत) भाषा में है।" मौ. आजाद

५. "हमारी पैतृक सम्पत्तियों में सब से बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृत भाषा है।"
महामना मालवीय जी

६. "संस्कृत भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् में भारत की आत्मा थी, है, और रहेगी।"—
पं गोविन्द वल्लभपन्त

७. संस्कृत संसार में उसी प्रकार अद्वितीय है जिस प्रकार उसका वाङ्मय।—
श्री हनुमन्तैया

८. "संस्कृत एक मृत तथा गई गुजरी भाषा नहीं हैं।"— श्री. क. म. मुन्शी

—आचार्य गजेन्द्रनाथ



## क्षमा याचना

विशेषांक के लिये प्राप्त शेष लेखों को पाठक अगले अंक में पढ़ें जो दीक्षा शताब्दि के विशेषांक का परिशिष्टांक होगा। शताब्दि कार्य की शीघ्रता के कारण हम सब लेखों का मुद्रण नहीं कर सके। —सम्पादक आचार्य विश्वश्रवाः 'व्यास'

॥ ओ३म् ॥

कार्यालय
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान,
नई दिल्ली-१

# आर्य पर्वों की सूची

## १६६०

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली आर्य समाजों की सूचना के लिए प्रति वर्ष स्वीकृत आर्य पर्वों की सूची प्रकाशित करती है। इस वर्ष की सूची निम्न प्रकार है :—

| क्र० सं० | नाम पर्व | सौर तिथि | चन्द्र तिथि | अंग्रेजी दिन | दिन |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | मकर संक्रान्ति | १-१०-२०१६ | माघ कृष्ण १ | १४-१-६० | बृहस्पतिवार |
| २ | बसन्त पंचमी | १६-१०-२०१६ | माघ शुक्ल ५ | १-२-६० | सोमवार |
| ३ | सीताष्टमी | ६-११-२०१६ | फाल्गुण कृष्ण ८ | २०-२-६० | शनिवार |
| ४ | दयानन्द बोधोत्सव | १४-११-२०१६ | ,, ,, १४ | २५-२-६० | बृहस्पतिवार |
| ५ | लेखराम वीर तृतीया | १८-११-२०१६ | ,, शुक्ल ३ | २६-२-६० | सोमवार |
| ६ | बसन्त नवसस्येष्टि | ३०-११-२०१६ | ,, ,, १५ | १२-३-६० | शनिवार |
| ७ | सम्वत्सरोत्सव आर्यसमाज स्थापना दिवस | १६-१२-२०१६ | चैत्र शु० १ सं. २०१७ | २८-३-६० | सोमवार |
| ८ | राम नवमी | २४-१२-२०१६ | चैत्र ,, ६ | ५-४-६० | मंगलवार |
| ६ | हरतृतीया | ११-४-२०१७ | श्रावण., ३ | २६-७-६० | मंगलवार |
| १० | श्रावणी उपाकर्म, सत्याग्रह बलिदान दिवस | २३-५-२०१७ | श्रावण शु० १५ | ७-८-६० | रविवार |
| ११ | कृष्णाष्टमी | ३०-४-२०१७ | भाद्रपद कृ० ८ | १४-८-६० | शनिवार |
| १२ | विजय दशमी | १५-६-२०१७ | आश्विनशु०१० | ३०-६-६० | शुक्रवार |
| १३ | ऋषि निर्वाणोत्सव दीपावली | ४-७-२०१७ | कार्तिक कृष्ण ३० | २०-१०-६० | बृहस्पतिवार |
| १४ | श्रद्धानन्द बलिदान दिवस | ६-६-२०१७ | | २३-१२-६० | शुक्रवार |

इन पर्वों को उत्साहपूर्वक ससमारोह मनाकर इन्हें आर्य समाज के प्रसार और वैदिक धर्म के प्रचार का महान् साधन बनाना चाहिये।

रघुवीरसिंह शास्त्री
सभा मन्त्री

# आर्य की शताब्दि पर प्रतिज्ञा

मैं सच्चिदानन्द प्रभु को सर्वव्यापक अपने समक्ष विद्यमान समझ कर प्रतिज्ञा करता हूं कि स्वयं वेदों को पढ़ूंगा, और अपनी सन्तानों को वेद पढ़ाऊंगा वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं इसको सिद्ध और पुष्ट करने के लिये ६ अङ्ग, ६ उपाङ्ग ब्राह्मण ग्रन्थ और चार उपवेद सहित वेद पढ़ाने वाली संस्थाओं की ही धन-मन तन सब प्रकार की सहायता करूंगा।

ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के नाम पर चलने वाली संस्थाओं में योगी दयानन्द की धारणाओं एवं सिद्धांतों की पुष्टि के लिये उपर्युक्त आर्ष-पाठ-विधि का प्रवेश कराऊंगा।

जिन संस्थाओं, विद्यालयों, कालिजों, गुरुओं में यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं होती उनसे सर्वथा हाथ खैंच लूंगा। वे सरकार की योजना पूरी करती हैं सरकार उन्हें चलाये। मैं अपना समय और धन उनमें नष्ट नहीं करूंगा। मैं झूठे यश और पद के लोभ में नहीं फंसूंगा।

मैं सच्चा ऋषि का अनुयायी आर्य हूं। ऋषि प्रदर्शित ही मेरा आचार विचार होगा। अपनी कमियों को दूर करूंगा और सच्चा आर्य बनूंगा। ऋषि ही मेरा मार्ग प्रदर्शक है। इधर उधर के भटके विचार नहीं।

"भगवान् मेरी भावना पूर्ण करें !"

हस्ताक्षर ______________________________

पता : ______________________________

* वेदार्थ जानने के लिये अर्थ योजना सहित व्याकरण अष्टाध्यायी, धातु पाठ, उणादिगण गणपाठ और महाभाष्य। शिक्षा, कला निघन्टु, छन्द, ज्योतिष—ये वेदों के छः अंग। मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र तथा ऐतरेय, शतपथ, साम, और गोपथ, ये चार ब्राह्मण तो पढ़ ले पढ़े।" (महर्षि दयानन्द—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका)

## महर्षि के योगसाधन के स्थान—

१. शैला नगरी,
२. कोटगांगड़,
३. सिद्धपुर,
४. चेतनमठ (वटोदर)
५. चाणोद कर्णाली,
६. व्यासाश्रम,
७. छिनूर या सिनोर,
८. दुग्धेश्वर मन्दिर, (अहमदाबाद)
९. आबू पर्वत,
१०. अर्बुदा भवानीगिरि शृङ्ग
११. उत्तराखण्ड,
१२. हिमालय,
१३. हरद्वार,
१४. चण्डी का जंगल,
१५. हृषीकेश,
१६. टिहरी श्रीनगर,
१७. देव प्रयाग,
१८. रुद्रप्रयाग,
१९. केदार घाट,
२०. तुङ्गनाथ,
२१. ओखीमठ,
२२. ज्योतिर्मठ,
२३. अलखनन्दा,
२४. वसुधारा,
२५. गौरीकुण्ड,
२६. भीमगुफा,
२७. केदारनाथ
२८. त्रियुगी नारायण,
२९. बद्रीनारायण,
३०. सत्पथ,
३१. नर्मदा नदी का स्रोत
३२. गङ्गोत्री,
३३. उत्तरकाशी,
३४. गंगापार चील के जंगल का जल प्रपात,
३५. धराली की गुफा,
३६. भटवाड़ी का ऊंचा जंगल,
३७. मल्लाचट्टी का मार्ग
३८. बूढ़े केदार

आदि आदि

## महर्षि के विद्यागुरु—

पिता, पितृव्य, कृष्णशास्त्री (नर्मदा), रामनिरञ्जन शास्त्री (काशी), परमानन्द, पूर्णानन्द सरस्वती, (संन्यास तथा विद्यागुरु) विरजानन्द दण्डी आदि।

## महर्षि के योगगुरु—

योगानन्द, ज्वालानन्दपुरी, शिवानन्दगिरि, भवानीगिरि आदि।

शीतऋतु में सेवन योग्य
बहुमूल्य औषधियां
१—च्यवनप्राश
शक्ति वर्धक टानिक है। जुकाम गले का बैठना, खांसी फेफड़े की दुर्बलता तथा जीर्ण ज्वर में उपयोगी है।
२—सिद्ध मकरध्वज
आयुर्वेद का अमूल्य रस है। यह शरीर की निर्बलता को दूर कर शक्ति व स्फूर्ति प्रदान करता है।
३—बादाम पाक
यह उत्तम बुद्धिवर्धक स्वादिष्ट पाक है। दूध से सेवन करें।
४—गुरुकुल कांगड़ी चाय
खांसी जुकाम, ठंड लगना और थकावट में सेवन करें।
५—द्राक्षासव
पुरानी खांसी, अरुचि, कब्ज, थकावट निर्बलता में उपयोगी है।
६—चन्द्र प्रभा वटी
नवयुवकों के विशेष रोग तथा बवासीर, पथरी, भगन्दर, कमी खून में यह गोलियां शीघ्र आराम करती हैं।
गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी हरिद्वार
शाखा कार्यालय—३८४६ लोहे वाली गली चावड़ी बाजार दिल्ली।
स्टाकिस्ट:—
१. इन्द्रप्रस्थ आयुर्वैदिक स्टोर्स ३६६ चांदनी चौक, २. बृजलाल चड्ढा मेन बाजार निकट खन्ना टाकीज, ३. भीमसेन शास्त्री लाजपतराय मार्केट दीवानहाल चांदनी चौक, ४. मैडीकल स्टोर्स शंकर मार्केट कनाटप्लेस, ५. हिमालय मेडीकल स्टोर्स बैंक स्ट्रीट करौलबाग दिल्ली।

# वैदिक साहित्य सदन द्वारा प्रकाशित साहित्य

छप गई ! छप गई ! छप गई !

पूज्यपाद स्वामी आत्मानन्दजी द्वारा लिखित

**मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प मूल्य ३।)**

छपकर तैयार पुस्तक की लगातार माँग को देखते हुए पुस्तक का नवीन संस्करण छपाया गया है। आर्य जनों से प्रार्थना है कि अपनी प्रति शीघ्र मंगावें ताकि बाद में न मिलने पर पश्चाताप न हो।

लेखक की अन्य पुस्तकें

(१) वैदिक गीता मूल्य ३)
(२) संध्या अष्टांगयोग ,, ॥)
(३) कन्या ब्रह्मचर्य ,, ≡)
(४) आदर्श ब्रह्मचारी ।)

पं० जगत कुमार शास्त्री द्वारा लिखित

**दृष्टान्त मञ्जरी २)**

अपने विषय में अद्वितीय पुस्तक है। दृष्टांत सम्बन्धी आप जितनी पुस्तक देखेंगे उनमें में मन घडन्त झूठे उदाहरण पायेंगे पर आदरणीय पण्डित जी ने महापुरुषों के जीवन की सच्ची घटना को इस रूप में पाठकों के संमुख रखा है कि वह आनन्द विभोर हो उठता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह उन से बातें कर रहा हो।

लेखक की अन्य पुस्तकें

श्रुति सुधा ≡)
महर्षि विरजानन्द जी का जीवन चरित्र१॥)

**लेखक स्वर्गीय स्वा० वेदानन्दजी**

दिसम्बर मास में हम स्वामी विरजानन्द जी को श्रद्धाञ्जली भेंट करने अर्थ महान उत्सव मथुरा नगरी में मना रहे है। स्वामीजी के प्रति सब से बड़ी श्रद्धाञ्जलि इन के जीवन से स्फूर्ति प्राप्त करनी होगी। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने न केवल स्वामीजी के जीवन चरित्र का वर्णन किया है अपितु, स्वामी जी के मार्ग की कठिनाईयां परिस्थिति आदि पर भी प्रकाश डाला है। प्रत्येक आर्य जन का कर्तव्य है कि वह प्रस्तुत पुस्तक खरीदे तथा अधिक से अधिक प्रचार करें।

**लेखक की अन्य पुस्तकें**

(१) संस्कृतांकुर १॥)
(२) हम संस्कृत क्यों पढ़ें ॥)
(३) संस्कृत कथा मञ्जरी ।-)
(४) बलिदान १२)

लेखक—आ० भगवान देव' बलिदान, पुस्तक, सचमुच आप को पिछली एक शताब्दी के क्रान्तिकारियों से परिचित ही नहीं सम्बन्धित कराने में समर्थ है। पुस्तक का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि क्रान्तिकारी आर्यसमाज के कितने समीप थे।

**लेखक की अन्य पुस्तकें**

(१) ब्रह्मचर्य साधन भाग, १-२ ।-) भाग-३, ≡), भाग-४ १) भाग-५ ।=), ७-८ ॥) भाग ६, ।।=) ब्रह्मचर्यामृत =)।।, व्यायाम का महत्व ≡), पापों की जड शराब =)।।, रामराज्य ≡), स्वप्नदोष चिकित्सा =)।।, तथा नेत्र रक्षा ≡)।

**हमारा अन्य प्रकाशन**

**लेखक स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी**

विदेशों में एक साल २।)
पंजाब की भाषा और लिपि ≡)

**विभिन्न पुस्तकें**

सदाचार पञ्जिका (शारदा देवी) ॥)
क्या हम आर्य हैं ? ६ नै पै०

**पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती**

वैदिक धर्म परिचय ॥=)
छात्रोपयोगी विचार माला ॥=)
संस्कृत वाङ्मय का परिचय ॥)
ब्रह्मचर्य शतक (आ०मेधाव्रत) ॥-)
दयानन्द और गांधी (पं० धर्मदेवजी) २)

पूर्ण विवरण के लिये सूचि पत्र मंगायें

**आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम, देहली-६**

श्री मद्यानन्द दीक्षा शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष में

# आर्य जनता को साहित्य प्रचार का विशेष सुअवसर

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने साहित्य-प्रचार कार्य को सुगम बनाने की दृष्टि से आगामी दयानन्द दीक्षा शताब्दी के सुअवसर पर अपने प्रकाशनों पर आर्य जनता को निम्न प्रकार विशेष रियायत देने का निश्चय किया है। समस्त आर्य हिन्दू जनता विशेषत: आर्य समाजों और उनकी संस्थाओं को पर्याप्त साहित्य मगांकर इस अवसर से पूरा २ लाभ उठाने का यत्न करना चाहिये। यह रियायत महर्षिबोधोत्सव तक रहेगी।

## निम्न प्रकाशन नेट मूल्य पर दिये जायेंगे

(१) कर्त्तव्य दर्पण सजिल्द ॥≋)
(२) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका १॥।≈)
(३) सत्यार्थप्रकाश बढ़िया ३॥।)
(४) वैदिक ज्योति ५।)
(५) सिंधी सत्यार्थप्रकाश १≋)
(६) कन्नड़ सत्यार्थप्रकाश ३।)
(७) मराठी सत्यार्थप्रकाश १।≈)

## निम्न साहित्य पर निम्न प्रकार कमीशन दिया जायगा :—

१०) तक २०% कमीशन
१०) से २५) तक २५% ,,
२५) से अधिक ३३⅓% ,,

(१) यमपितृ परिचय (पं० प्रियरत्न आर्ष) २)
(२) आर्य डाइरेक्टरी १।)
(३) सार्वदेशिक सभा का सत्ताईस वर्षीय कार्य विवरण अ० २)
(४) स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार (पं० धर्मदेव जी वि० वा०) १।)
(५) आर्य समाज के महाधन (स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी) २॥)
(६) आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण(पं०इन्द्रजी) ।=)
(७) आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या (अनुवादक पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक) ।)
(८) आर्य मन्दिर चित्र (सार्व०सभा द्वारा स्वीकृत) ।)
(९) वैदिक ज्योतिष शास्त्र(पं०प्रियरत्नजी आर्ष) १॥)
(१०) वैदिक राष्ट्रीयता (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।)
(११) मातृत्व की ओर (रघुनाथ प्रसाद पाठक) १।)
(१२) हमारी राष्ट्रभाषा (पं०धर्मदेवजी वि० वा०) ।-)
(१३) स्वराज्य दर्शन स०(पं०लक्ष्मीदत्तजीदीक्षित) १)
(१४) राजधर्म (महर्षि दयानन्द सरस्वती) ॥)
(१५) योग रहस्य (श्री नारायण स्वामी जी) १।)
(१६) मृत्यु और परलोक ,, १)
(१७) विद्यार्थी जीवन रहस्य ,, ॥=)
(१८) प्राणायाम विधि ,, =)
(१९) उपनिषदें:—

ईश ।-) केन ॥) कठ ॥) प्रश्न ।=)
मुण्डक ।≡) माण्डूक्य ।) ऐतरेय ।) तैत्तिरीय १)

(२०) बृहदारण्यकोपनिषद् ३)
(२१) आर्यजीवनगृहस्थधर्म (पं०रघुनाथप्रसादपाठक) ।-)
(२२) कथामाला ,, ॥)
(२३) सन्तति निग्रह ,, १।)
(२४) नैतिक जीवन स० ,, २॥)
(२५) नया संसार ,, ≡)
(२६) इजहारे हकीकत उर्दू ॥-)
(२७) वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप ,, १॥)
(२८) धर्म और उसकी आवश्यकता ,, १)
(२९) भूमिका प्रकाश (पं० द्विजेन्द्रनाथजी शास्त्री) १।)
(३०) एशिया का वैनिस (स्वा० सदानन्द जी) ॥)
(३१) वेदों में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां (पं० प्रियरत्न जी आर्ष) ॥)
(३२) बृहद विमानशास्त्र (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) १०)
(३३) छान्दोग्योपनिषद् ,, ३)
(३४) पञ्चमहायज्ञविधिभाष्यम् (पृष्ठ ५००) ५)
( सन्ध्या पद्धति मीमांसा )
लेखक आचार्य विश्वश्रवा व्यास
(३५) आर्योदयकाव्यम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध, १॥), १॥)
(३६) हमारे घर (श्री निरंजनलाल जी गौतम ॥=)
(३७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर १॥)
(३८) भजन भास्कर १॥।)
(३९) मुक्ति से पुनरावृत्ति (पं०गंगाप्रसाद उपाध्याय ।=)
(४०) वैदिक ईश वन्दना (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।=)॥
(४१) वैदिक योगामृत ,, ॥=)
(४२) सनातन शुद्धिशास्त्र (गोविन्द प्रसाद शास्त्री) २)
(४३) आर्य वीर दल सैनिक (श्री ओम्प्रकाश त्यागी)॥)
(४४) आत्म कथा श्री नारायण स्वामी जी २।)
(४५) वैदिक संस्कृति (पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय) १।)
(४६) वैदिक वन्दन (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ५॥)
(४७) दार्शनिक आध्यात्मिक तत्व ,, १॥)

(१) आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग ४)
,, ,, द्वितीय भाग ५)
(२) वेद की इयत्ता (श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी) १।।)
(३) दयानन्द दिग्दर्शन (श्री स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।।।)
(४) इंजील के परस्पर विरोधी वचन ।=)
( पं० रामचन्द्र जी देहलवी)
(५) भक्ति कुसुमांजलि (पं० धर्मदेव वि० वा० ।।)
(६) सत्यार्थप्रकाश (वैदिक यंत्रालय प्रकाशन) २।)
(७) भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक
(श्री राजेन्द्र जी) ।।)
(८) आर्य समाज और साम्प्रदायिकता ।–)
( श्री ओम्प्रकाश त्यागी )

(९) वेदान्त दर्शनम् स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ३)
(१०) संस्कार महत्व
(पं० मदनमोहन विद्यासागर जी) ।।।)
(११) जनकल्याण का मूलमन्त्र ,, ।।)
(१२) वेदों की अन्तःसाक्षी का महत्व ,, ।।=)
(१३) आर्य घोष ।।)
(१४) आर्य स्तोत्र ,, ।।)
(१५) स्वाध्याय संदोह (स्वा० वेदानन्द तीर्थ) ४)
(१६) वैदिक ज्योति (आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री) ७)
(१७) सनातन धर्म और आर्य समाज
( पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ) ।=)

## ENGLISH PUBLICATIONS

1. Introduction to the Commentary on Vedas 2/8/
2. Kenopanishat (Translation by Pt. Ganga Prasad ji, M. A. -/4/-
3. Kathopanishat (Pt. Ganga Prasad M.A. Rtd. Chief Judge) 1/4/-
4. Aryasamaj & International Aryan League (Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M.A.) -/1/-
5. Voice of Arya Varta (T. L. Vasvani) -/2/-
6. Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-
7. Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-
8. Vedic Culture (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M.A.) 3/8/
9. Aryasamaj & Theosophical Society (Shiam Sunder Lal) -/3/-
12. A Case of Satyarth Prakash in Sind (S. Chandra) 1/8/-
13. In Defence of Satyarth Prakash (Prof. Sudhakar M. A) -/
14. Universality of Satyarth Prakash -/1/-
15. Tributes to Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt. Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/-
16. Political Science (Mahrishi Dayanand Saraswati) -/8/-
17. Elementary Teachings of Hindusim -/8/- (Ganga Prasad Upadhyaya M.A)
18. Life after Death ,, 1/4/-
19. Philosophy of Dayanand ,, 10/-
20. Agnihotra (Dr. Satya Prakash) 2 8-
21. Daily Prayer of An Arya -/8/-
22. The Constitution of Arya Samaj 20 n.P.
23. Light of Truth 7 8 0

नोट--(१) आर्डर के साथ २५ प्रतिशत चौथाई धन अगाऊ रूपमें भेजें।
(२) अपना पूरा पता डाकखाने तथा स्टेशन के नाम सहित साफ २ लिखें।
(३) विदेश से यथासम्भव धन पोस्टल आर्डर द्वारा आना चाहिए।

# आर्य समाज का इतिहास

## सचित्र प्रथम और द्वितीय भाग

इस सभा द्वारा श्रीयुत पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत आर्य समाज के इतिहास का प्रथम और द्वितीय भाग छप कर बिकने लगे हैं। इतिहास की भूमिका आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान तथा पंजाब सरकार के भूतपूर्व शिक्षामन्त्री श्रीयुत डा० गोकुलचन्द जी नारंग, एम० ए० पी० एच० डी० ने लिखी है। ग्रन्थ सजिल्द हैं और $\frac{१८ \times २२}{८}$ के आकार पर हैं। कागज व छपाई उत्कृष्ट है। स्थान २ पर लाइन ब्लाक दिये गये हैं।

महर्षि की जन्म तिथि, आर्य समाज स्थापना तिथि, महर्षि की मृत्यु कैसे हुई इत्यादि विवादास्पद विषयों पर परिशिष्ट रूप में मूल्यवान सामग्री दी गई है।

प्रारम्भ से सन् १९०० ई० तक के इतिहास में आर्य समाज की स्थापना से पहले की धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति, महर्षि दयानन्द का आगमन, आर्य समाज की स्थापना, प्रचार युग, अन्य मतों से संघर्ष, संगठन का विस्तार, संस्था युग का आरम्भ आदि विषयों का समावेश है। शैली बड़ी रोचक और चित्ताकर्षक है।

इन ग्रन्थों की सामग्री के एकत्र करने, बढ़िया से बढ़िया रूप में इनको छपाने में तथा चित्रादि के देने में सभा का बहुत व्यय हुआ है। अतः इस राशि की शीघ्र से शीघ्र प्राप्ति आवश्यक है।

सभा ने यह विशाल आयोजन प्रदेशीय सभाओं, आर्य समाजों, आर्य नर नारियों के सहयोग के भरोसे बहुत खटकने वाले अभाव की पूर्त्यर्थ किया है। अतः प्रत्येक आर्य समाज और आर्य नर नारी को इस ग्रन्थ को शीघ्र से शीघ्र अपना कर अपने सहयोग का क्रियात्मक परिचय देना चाहिये।

प्रत्येक आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज तथा आर्य संस्था के पुस्तकालय में अनिवार्य रूप से ये ग्रन्थ रहने चाहियें। यह विषय इच्छा या पसन्द का नहीं है अपितु एक स्थायी रूप से रहने वाले ग्रन्थ के संग्रह करने का है जिससे वर्तमान ही नहीं आने वाली सन्तति को भी लाभ उठाने का अवसर मिल सके।

प्रथम भाग का मूल्य ४) और द्वितीय भाग का ५) रख दिया गया है। इन दोनों भागों के ५ सेट एक साथ मंगाने पर ३३⅓ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। पुस्तकों का आर्डर भेजते समय डाकखाने और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम स्पष्ट शब्दों में लिखा होना चाहिये।

कृपया आर्डर भेजने में शीघ्रता करें।

रघुवीरसिंह शास्त्री
सभा मन्त्री

## इस बार छोटे-छोटे ट्रैक्टों पर निम्न प्रकार विशेष रियायत दी जायेगी —

| ट्रैक्ट | मूल्य प्रति | सैकड़ा |
|---|---|---|
| १. आर्यसमाज के मन्तव्य | )०६ प्रति | ४) |
| २. शंकासमाधान | )०३ ,, | २)५० |
| ३. पूजा किसकी | )०३ ,, | २) |
| ४. आर्यसमाज | )०३ ,, | २) |
| ५. भारत का एक ऋषि | )०६ ,, | ४) |
| ६. ऋग्वेद में देवृकामा या देवकामा | )०६ ,, | ४) |
| ७. गो करुणानिधि | )०६ ,, | ३)५० |
| ८. गोहत्या क्यों ? | )१२ ,, | ८) |
| ९ चमड़े के लिये गोवध | )१८ ,, | १२) |
| १०. पंचमहायज्ञविधि | )२० ,, | १५) |
| ११, सन्ध्यापद्धति | )१२ ,, | ६) |
| १२. मांसाहार घोर पाप | )१२ ,, | ८) |
| १३. आर्य शब्द का महत्व | )०९ ,, | ६)५० |
| १४. दशनियम व्याख्या | )०९ ,, | ६)५० |
| १५. तीर्थ और मोक्ष | )०९ ,, | ६)५० |
| १६. ग्रहण और दान | )०९ ,, | ६)५० |
| १७. भारतवर्ष में जाति भेद | )०९ ,, | ६)५० |
| १८. भारत में ईसाई षड़यन्त्र | )२५ ,, | १८) |
| १९. ईसाईयों से सौ प्रश्न | )१२ ,, | १०) |
| २०. स्वतन्त्रता खतरे में | )०३ ,, | २) |
| २१. वैदिक राष्ट्र धर्म | )२० ,, | १२) |
| २२ प्रजापालन | )०५ ,, | ३) |
| २३. नारायण स्वामीजी की संक्षिप्त जीवनी | )०६ ,, | ४) |
| २४. सिनेमा मनोरंजन या सर्वनाश | )१२ ,, | ६) |
| २५, सत्यार्थप्रकाश की रक्षा में | )०६ ,, | ४) |
| २६. मुर्दों को क्यों जलाना चाहिए | )०९ ,, | ६)५० |
| २७. आर्यसमाजों के सा स. का कार्यक्रम | )०६ ,, | ४) |
| २८. आर्य समाज के नियमोपनियम | )०९ ,, | ६)५० |

---

### विमान विज्ञान पर प्राचीनकाल का महान ग्रन्थ

## महर्षि भारद्वाज प्रणीत

# बृहद् विमान शास्त्र

(मूल संस्कृत और आर्य भाषानुवाद सहित)

आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान सन्यासी श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज ने बड़े परिश्रम से प्राचीन काल के इस महान् ग्रन्थ को हस्तलिखित प्रति से लिखकर और आर्य भाषा में भाष्य करके तैयार किया है। इस ग्रन्थ में वर्णित वायुयान विद्या को देखकर आज का वायुयान शास्त्री आश्चर्य चकित हैं।

सभा ने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित करने में कई हजार रुपया व्यय किया है।

यह ग्रन्थ आर्य समाज के पुस्तकालयों, सार्वजनिक पुस्तकालयों, कालेज और स्कूलों की लायब्रेरियों में अवश्य रखने योग्य है। प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी को इसकी एक प्रति का आर्डर आज ही भेजना चाहिये। इस विराट ग्रन्थ का मूल्य १०) है। परन्तु दयानन्द दीक्षा शताब्दी के उपलक्ष्य में यह ग्रन्थ (नैट) ७।।) में मिलेगा।

**सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन नई दिल्ली-१**